वनौषधि-चन्द्रोदय

(दूसरा भाग)

('क से को' तक की औषधियां)

लेखक—

श्री चंद्रराज भण्डारी 'विशारद'

प्रकाशक—

ज्ञान-मंदिर

भानपुरा (इन्दौर-स्टेट)

प्रथम संस्करण

मूल्य

पूरा सेट १० भाग का
साधारण संस्करण ३०)
साधारण सजिल्द ३५)
राज संस्करण ४०)

एक भाग का
साधारण संस्करण ३)
साधारण संस्करण सजिल्द ३॥)
राज संस्करण ५)

प्रकाशक—
चन्द्रराज भण्डारी, कृष्णलाल गुप्त
भँवरलाल सोनी, बलराम रतनावत
संचालक—
ज्ञान मन्दिर,
भानपुरा (इन्दौर-स्टेट)

सूचना—

वनौषधि-चन्द्रोदय का तीसरा भाग बड़ी सजधज और शान के साथ छपना शुरु हो गया है, जो कि बहुत शीघ्र ही ग्राहकों की सेवा में पहुँचेगा।

निवेदक—
प्रकाशक

मुद्रक—
भँवरलाल सोनी
ज्ञान मन्दिर प्रेस
भानपुरा
(इन्दौर-स्टेट)

माननीय संरक्षक

१—लेफ्टिनेंट कर्नल हिज हाइनेस महाराव श्री सर उम्मेदसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० बी० ई० कोटा।

२—लेफ्टिनेन्ट हिज हाइनेस महाराजा श्री कृष्ण कुमारसिंहजी बहादुर, भावनगर।

३—लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिज़ हाइनेस महाराजा जाम साहब श्री सर दिग्विजयसिंहजी बहादुर के० सी० एस० आई०, नवानगर।

४—लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिज़ हाइनेस महाराजा लोकेन्द्र सर गोविन्दसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई०, के० सी० एस० आई०, दतिया।

५—लेफ्टिनेन्ट हिज़ हाइनेस महाराज राना श्री राजेन्द्रसिंहजी बहादुर, झालावाड़।

६—कैप्टन हिज़ हाइनेस महाराजा महेन्द्र सर यादवेन्द्रसिंहजी बहादुर के० सी० एस० आई०, के० सी० आई० ई०, पन्ना।

७—श्रीमान् रा० ब० देवीसिंहजी, दीवान राजगढ़ स्टेट।

८—राय बहादुर सेठ हीरालालजी कासलीवाल, इन्दौर।

९—कुँवर बुधसिंहजी बापना S/O दीवान बहादुर सेठ केसरीसिंहजी बापना, कोटा।

विशेष धन्यवाद

इस ग्रंथ के प्रकाशन में हम लोगों को श्रीमान् लेफ्टिनेंट हिज हाइनेस महाराज राना राजेन्द्र-सिंहजी बहादुर झालावाड़ ने और हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमान् महाराज कुमार डाक्टर रघुबीरसिंहजी एम० ए० पी० एच० डी० सीतामऊ ने अत्यन्त महत्व पूर्ण सहायताएं प्रदान की हैं जिसके लिये हम आपके बहुत आभारी हैं और कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद देना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

कोटा के सुप्रसिद्ध दी० ब० सेठ केशरीसिंहजी बापना के सुपुत्र कुँवर बुधसिंहजी बापना ने भी इसमें बहुत सहानुभूति बतलाई है। अतः उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

निवेदक

लेखक और प्रकाशक

स्मृति

स्व० सेठ कमलापतजी सिंहानिया कानपुर
की स्मृति में

विषय-सूची

(१)

हिन्दी नाम

विषय-सूची

(२)

संस्कृत नाम

विषय-सूची

(३)

बंगाली नाम

विषय-सूची

(४)

गुजराती नाम

विषय-सूची

मराठी नाम

(५)

विषय-सूची

अरबी नाम

(६)

INDEX

Latin Names

विषय-सूची

[नं० ८]

(रोगानुक्रम से)

इस विषय-सूची में इस ग्रंथ में आई हुई औषधिया जिन २ रोगों पर काम करती हैं, उनमें से कुछ खास २ रोगों के नाम, औषधियों के नाम और पृष्ठांक सहित दिये जारहे हैं। सब रोगों के नाम इसमें नहीं आसके, इसलिए उनका विवरण ग्रंथ के अन्दर ही देखना चाहिये। जिन रोगों के अन्दर जो औषधियां विशेष प्रभावशाली और चमत्कारिक हैं, उनपर पाठकों की जानकारी के लिये ऐसे फूल * लगा दिये गये हैं :—

ज्वर

अतिसार

जलोदर

बवासीर

मंदाग्नि

प्लीहा और यकृत सम्बन्धी रोग

उदरशूल व उदर रोग

हिचकी

हैज़ा

सुज़ाक

उपदंश

प्रमेह

नपुंसकता और बाजीकरण

पथरी और मूत्राघात

प्रदर रोग

बंध्यत्व

प्रसव व आर्तव सम्बंधी बीमारियां

क्षय

दाद, खाज, खुजली और चर्मरोग

खांसी और दमा

हृदयरोग

कंठमाल

स्नायुरोग या वातव्याधि (लकवा, संधिवात, सुन्नवात, जोड़ों की अकड़न वगैरह)

गठिया

उन्माद, हिस्टिरिया व माली खोलिया

मृगी

आमवात

सर्प और बिच्छू का विष

पागल कुत्ते का विष

सूजन

अर्बुद

कुष्ट

मस्तक शूल, आधाशीशी

नेत्ररोग

कर्णरोग

दंतरोग

कृमि रोग

नारू

कारबंकल फोड़े का रोग

नासूर

रक्त विकार

निमोनिया

पाण्डु, कामला और पीलिया

चेचक

जुकाम

अण्डवृद्धि

घाव पूरक

नकसीर

संग्रहणी

मुखरोग

वीर्य्य सम्बन्धी रोग

स्थावर विष

वनौषधि-चन्द्रोदय

(दूसरा भाग)

वनौषधि-चन्द्रोदय

(दूसरा भाग)

—— :※: ——

ककड़ी

नाम—

संस्कृत—कर्कटी, बृहत्फला, हस्तीदन्तफला, पीनसा, मूत्रला मूत्रफला, इत्यादि। *हिन्दी*—ककड़ी। *बंगाली*—काकुड़। *मराठी*—काकड़ी। *गुजराती*—काकडी। *फारसी*—खियाज़र्द। *तामील*—कक्करीकीया। *अरबी*—क़िस्साकदम। *लेटिन*—Cucumis Utilissimus कूकूमिस यूटिलिसिमस।

ककड़ी की लतायें लम्बी होती हैं। इसके फूल पीले होते हैं। इसके फल लम्बे, कोमल, और सफेद रंग के होते हैं। जब यह छोटी होती है, तब बहुत कोमल और रूएँदार होती है और जब पूरी बढ़ जाती है तो २-२॥ फीट लम्बी हो जाती है। यह वस्तु भारतवर्ष के सब हिस्सों में पैदा होती है।

ककड़ी की कई जातियां होती हैं। ग्रीष्मऋतु में पैदा होनेवाली ककड़ी, वर्षाऋतु में पैदा होने वाली ककड़ी, बालम ककड़ी, पनवाड़ी में पैदा होनेवाली ककड़ी, अरण्य ककड़ी, चीना ककड़ी इत्यादि इसकी कई प्रकार की जातियां होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ककड़ी मधुर, रुचिकारक, रूखी, शीतल, तृप्तिकारक, मूत्र-वर्धक, मल रोधक, वातकारक, और पित्त-नाशक होती है।

कच्ची ककड़ी शीतल, रूखी, मलरोधक, मधुर, भारी, रुचिकारक और पित्त को दूर करनेवाली होती है। पकी हुई ककड़ी गरम, अग्निवर्धक और पित्त-कारक होती है॥

राज निघंटु के मतानुसार ककड़ी पित्तनाशक, शीतल, मूत्ररोगनाशक, मधुर, रुचिकारक, सताप और मूर्च्छा को दूर करने वाली, तृप्तिजनक और अधिक सेवन करने से बात को कुपित करने वाली होती है।

दूसरे प्रकार की ककड़ी मधुर, शीतल, रुचिकारक, हलकी और मूत्र-जनक होती है। इसका छिलका कड़ुआ, पाचक, अग्निदीपक, ग्राही और मूत्रावरोध, पथरी व सुजाक में लाभ पहुंचानेवाला होता है।

तीसरी तरह की ककड़ी, रुचिकारक, मधुर, वातवर्धक, मूत्र जनक, भारी, कफकारी, दाहनाशक तथा वमन, पित्त, भ्रम, मूत्रकृच्छ्र, और पथरी को दूर करनेवाली होती है।

जंगली ककड़ी—गरम, कडु, भेदक, पाक में कड़वी तथा कफ, कृमि, पित्त, कंडु, और ज्वर को दूर करनेवाली होती है।

कड़वी ककड़ी—रस और पाक में कड़वी, तिक्त, मलमूत्र जनक, वमन कारक, मूत्रकृच्छ्र-हारक तथा आध्मान और अष्ठीला को दूर करती है।

चीना ककड़ी—शीतल, मधुर, रुचिकारक, भारी, कफकारी, वातवर्धक, तृप्तिजनक, हृदय को हितकारी. पित्त-रोग नाशक तथा दाह और शोष को हरनेवाली है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार सब प्रकार की ककड़ी भारी, कठिनता से पचनेवाली, वात-रक्त को पैदा करनेवाली और मन्दाग्निजनक हैं। वर्षा और शरदऋतु में पैदा होनेवाली ककड़ी हितकारक नहीं है अतः उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। हेमन्तऋतु में पैदा होनेवाली ककड़ी रुचिकारक, पित्त-नाशक और भक्षण करने योग्य होती है। अतः यह उपयोगी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर में सर्द और तर है। यह सब्जी प्यास को बुझानेवाली, पित्त की हरारत और सोजिश को मिटानेवाली तथा जिगर को तसल्ली देनेवाली है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़कर निकाल देती है। पेशाब की रुकावट को दूर करती है। इस का फल चर्बी बढानेवाला, मूत्रल, विरेचक और ज्वर निवारक होता है। इसके बीज ठडे, मूत्रल, विरेचक और ज्वर निवारक होते हैं। ये रक्त वर्द्धक प्यास बुझानेवाले और सौन्दर्यवर्धक है। इनको पीसकर चेहरे पर मलने से चेहरे का रग निखर जाता है। जिसके पेशाब का बनना बन्द हो गया है उसे ७॥ माशा बीजो को पानी में पीसकर और छानकर पिलाने से ज्यादा पेशाब आता है।

जिगर और मेदे की सूजन और हरारत भी इनके प्रयोग से दूर होती है। जवाखार के साथ इन बीजों को पीस छानकर पीने से पेशाब साफ होता है और शक्कर का आना मिटता है। पथरी वालों को भी इनका उपयोग लाभदायक होता है। मूत्र कष्ट या बार २ मूत्र आने की बीमारी में भी इनका उपयोग लाभदायक हैं।

राक्सवर्ग के मतानुसार इसके सूखे हुए बीजों का चूर्ण एक तेज मूत्रल पदार्थ माना जाता हैं। ये मूत्र मार्ग से पथरी को हटा देने मे भी गुणकारी माने जाते हैं।

उपयोग—

मूत्रावरोध—जिसके पेशाब का बनना बन्द होगया हो, उसको ककड़ी के ७॥ माशे बीजों को पानी में पीस छानकर कुछ नमक डालकर पिलाने से मूत्र अधिक आने लगता है।

मूत्रदाह—इसके बीज को पानीमें घोटकर यवक्षार के साथ पिलाने से मूत्र की जलनमिटती है।।

पथरी—इसके बीजों को मिश्री के साथ घोट कर पिलाने से पथरी में बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु शान्तिदायक और मूत्र वर्द्धक है।

ककहिया

वर्णन—ककहिया अति बला का ही एक दूसरा नाम है। इसका वर्णन इस ग्रंथ के प्रथम भाग में पृष्ठ ५० पर दिया गया है।

ककरोंदा

नाम—

संस्कृत—कुकुरद्रुः, कुकुन्दरः, ताम्रचूडः, सूक्ष्मपत्र,। हिन्दी—कुकरोंदा, जङ्गलीमूली,। मारवाड़ी—कर्कड्न्दो। गुजराती—कोकरंदा, कलारी, चाचड़मारी, पोलो कपूरयो। मराठी—कुकुरबन्द, कुकुन्दर। बंगाली—कुकुरशोंका। पंजाबी—कुकुरोंदा। तेलगी—अड़वो मुलगी। द्राविड़ी—नारककरंड़े। अरबी—कोमाफितूस। फारसी—करबसेरूमो। लेटिन—Blumea Lacera ब्लूमिया लेसिरा

वर्ग—सहदेव्यादि।

वर्णन—

इस औषधि का वृक्ष १ से २ हाथ तक ऊंचा रहता है। यह पौधा झाड़ीनुमा होता है और इसमें कपूर के समान तीव्र गंध आती है। इसके पत्ते मोटे, रूएंदार और चिकने होते हैं। इसके फूल पीले रंग के तथा बीज छोटे और कोनेदार होते हैं। इस पौधे की कई जातियां होती है, जिनको लेटिन मे ब्लूमिया-लेसिरा, ब्लूमिया बालसेमीफेरा, ब्लूमिया डेन्सीफ्लोरा, ब्लूमिया ग्रेंडिस इत्यादि नामो से पहिचाना जाता है। इस औषधि की ये सब जातियां हिमालय में नेपाल से सिकिम तक, और दक्षिणी पठार के पश्चिमी भागों में १७०० से लगाकर २५०० फूट की ऊंचाई तक पैदा होती हैं। इस औषधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अन्दर से बहुत बड़ी तादाद में कपूर प्राप्त किया जा सकता है। मेसन का मत है कि ब्लूमिया बेलसेमीफेरा अकेले बरमा में इतना पैदा होता है कि उससे निकाले हुए कपूर से आधे संसार की कपूर की मांग पूरी की जा सकती है। इसका विशेष वर्णन कपूर के प्रकरण मे किया गया है वहां पर देखना चाहिये।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति चरपरी, कड़वी, ज्वरनाशक, गरम और बधिर विकार, वायुनलियों के प्रदाह तथा कफ, दाह और तृषा को दूर करने वाली है। इसकी कच्ची जड़ को मुख

में रखने से मुँह के रोग दूर होते हैं। इसके पत्तों का रस कृमिनाशक औषधि के तौर से काम में लिया जाता है। इस रस को आख में डालने से नेत्र रोग में भी लाभ होता है। इसी प्रकार इस रस को कालीमिरच के साथ देने से खूनी बवासीर में भी लाभ पहुँचाता हैं। यह रस ज्वर निवारक, सकोचक और मूत्रल होता है। इसके पत्तों को पीसकर फोड़े फुन्सी पर बाधने से बड़ा लाभ होता है। बूटी प्रचार वैद्यक में लिखा है कि इस औषधि के योग से सहस्त्र पुटी अभ्रक बनाई जाती है।

इसकी दूसरी जाति जिसको ब्लूमिया बेलसेमिफेरा कहते हैं। उसका गरम काढ़ा एक उत्तम निद्राकारक, कफनिस्सारक, और पसीना लाने वाला पदार्थ माना जाता है। यह अग्निवर्धक, आक्षेप निवारक, ऋतुश्रावनियामक और कृमिनाशक है। फिलिपाइन द्वीप समूह में यह औषधि आमवात और सिर दर्द पर बफारा देने के काम में ली जाती है। ऐसा कहा जाता है कि जब स्त्रियां प्रौढ़ वय की हो जाती हैं और उन्हें सन्तानो पैदा करने की तृष्णा नहीं रहती तब मासिक-धर्म के दिनो में प्रतिदिन सवेरे शाम कुकरौंदे का रस ५ तोला, शकर, २॥ तोला, गोपीचन्दन का चूर्ण ३ रत्ती डालकर पिलाने से मासिक धर्म का आना बन्द हो जाता है। अगर एक दफे के प्रयोग से सफलता प्राप्त न हो तो लगातार २। ३ महीने तक मासिक-धर्म के समय इस प्रयोग को जारी रखा जाता हैं।

यूनानीमत—यूनानीमत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह औषधि कई यूनानी हकीमों के मत से जलोदर रोग मे लाभ पहुँचाती है और सूजन को मिटाती है। बवासीर के अन्दर काली मिरच के साथ इसका सेवन करने से खूनी और बादी दोनो ही बवासीर में लाभ पहुँचता है। बङ्गाल के अन्दर नाक मे एक प्रकार की बीमारी होती है जिसे आहू कहते हैं और जिससे सर भारी और गर्दन, मसाने तथा कमर में दर्द रहा करता है। इस बीमारी में कुकरौंदे का रस नाक में टपकाने से बड़ा लाभ होता है। काली मिरच के साथ इसकी गोलिया बाधकर अतिसार के रोगियों को देने से बड़ा लाभ होता है। पागल कुत्ते के जहर पर भी यह औषधि मुफीद साबित हुई है। इसकी जड़ को १ तोले की मात्रा में पीसकर दूध के साथ देने से पागल कुत्ते का जहर उल्टी के रास्ते निकलकर दूर हो जाता है। हकीम शरीफखा लिखते हैं कि अगर कुकरौंदे के पत्ते का रस तीन २ बून्द दोनो कानो में टपकाया जाय तो जूड़ी बुखार का आना रुक जाता है। इसके पत्तों के रस को आखों में टपकाने से आखों का दुखना आराम हो जाता है। यूनानी हकीमो के मतानुसार इसकी खास बात यह हैं कि इसके रस में अगर फौलाद का बुरादा तर करके धूप में रख दिया जाय तो वह फौलाद का बुरादा चूने की तरह हो जाता हैं।

अनुभूत चिकित्सा सागर के लेखक लिखते है कि ककरौंदे के पत्ते के स्वरस को पिलाने से बच्चों के पेट के कीडे मर जाते हैं। इसको मिश्री के साथ घोटकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। इसके पत्तों पर घी चुपड़कर गाठ पर बांधने से गाठ बिखर जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु पसीना लाने वाली, पेट का आफरा दूर करने वाली और कफ निस्सारक है। इसमें काफी मात्रा में कपूर पाया जाता है।

बनावटें—

रक्तार्श और रक्तातिसार नाशक औषधि—इस औषधि में रक्त को स्तम्भन करने का और जलन को दूर करने का आश्चर्य-जनक गुण रहा हुआ है। इसलिये जिसको रक्तातिसार, बवासीर, रक्त-प्रदर, या रक्तपित्त की वजह से मुँह, नाक, गुदा अथवा योनि के द्वारा भयंकर रक्तश्राव होता हो, उसको प्रति दिन सवेरे शाम १ तोला कुकरोंदे का रस पीने से २-४ दिन में धारा प्रवाही रक्तश्राव भी बन्द हो जाता है और रोगी की क्षीण शक्ति पुनः जागृत होने लगती है।

अर्श कुठार—रसांजन (रसोत) ८ तोला, हरड़ ४ तोला, सोनागेरू २ तोला और काली मिरच १ तोला इन सब औषधियों के चूर्ण को पीले फूल वाले ककरोंदे के रस में १४ दिन तक खरल करना चाहिये। फिर उसकी २-३ रत्ती की गोलिया बनाकर प्रतिदिन सवेरे शाम और दोपहर को पानी के साथ पीसकर एक २ गोली पीना चाहिये। पथ्य में केवल मूँग का यूष, गेहूँ की रोटी और घी का सेवन करना चाहिये। इस औषधि से सब प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। *(जंगलनी जड़ी बूँटी)*

एक पुटी अभ्रक भस्म—बेर की अन्तर छाल को ५ सेर लेकर आधा मन पानी में उबालना चाहिये। जब ५ सेर पानी शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। फिर काली जाति का बढ़िया वज्राभ्रक लेकर उसे कोयले की अग्नि में खूब लाल करके इस काढ़े में बुझाना चाहिये। इस प्रकार ७ बार अभ्रक को लाल कर २ के उस क्वाथ में बुझाने से वह धान्याभ्रक की अपेक्षा भी अधिक शुद्ध हो जाता है।

इस प्रकार शुद्ध किये हुए अभ्रक को कूट कर उसका बारीक चूर्ण करना चाहिये। फिर उसको खरल में डाल कर काली डण्डी वाले कुकरोंदे के रस में ३ दिन तक घोटना चाहिये। जिससे उसकी चमक जाती रहेगी। उसके बाद उसकी टिकड़िया बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। फिर भाग को कुकरोंदे के रस में बारीक पीसकर उन टिकडियों पर उसका देशी कागज जितना मोटा लेप कर देना चाहिये। इस लेप के सूखने पर मट्टी के एक सरावले में आकडे का पत्ता बिछाकर उन टिकडियों को उस पत्ते पर रख कर दूसरा आंकडे का पत्ता उन पर धर देना चाहिये। फिर एक दूसरा सरावला उस सरावले पर रख कर बिना कपड मिट्टी किये ही फूँक देना चाहिये। जब अग्नि ठण्डी हो जाय, तब उसमें से अभ्रक की टिकडी निकाल लेनी चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये, इस क्रिया में अभ्रक की टिकड़ी २ तोले से अधिक वजन की न हो।

जङ्गल की जडी-बूटी के लेखक लिखते हैं कि इस विधि से एकही पुट में अभ्रक की लाल रंग की निश्चन्द्र भस्म तैयार होती है और यह भस्म सहस्त्रपुटी अभ्रक बराबर गुणकारी होने से उसीके समान अनुपानो से हर एक रोग के ऊपर दी जाती है।

यह खयाल रखना चाहिये कि अगर किसी कारण से उपरोक्त भस्म में चमक का अंश बाकी रह जाय तो उसे इसी प्रकार फिर पुट देकर निश्चन्द्र बना लेना चाहिये।

कंकोड़ा

नाम—

संस्कृत—कर्कोटकी, पीतपुष्पी, महाजाली, मनोज्ञा, मनस्विनी, आदि। हिन्दी—कंकोडा, खिकोंडा, मालकरेला, घोसालफल, गोलकंद्र। बङ्गाली—काकरोल। मराठी—कांँटली, कर्टोली। वंझा कर्टोली। गुजराती—कंटोली। तेलगू—अगोरकर। तामील—इगारवल्ली। अरबी—ककाडो। पञ्जाबी—धारकरेला, किरारा। लेटिन—Momordica Dioica (Roxburg)।

वर्णन—

कंकोड़े की वेल प्रायः झाडी और खेत की बाडों के ऊपर फैलती है। इसका फल गोल, धतूरे की तरह होता है। जिसके ऊपर बारीक २ काटे सरीखे रोएँ होते हैं। इसके पत्ते ककडी के पत्तों की तरह होते हैं। इसका फल कच्ची हालत में हरा और पकने पर लाल पड जाता है। इसकी एक जाति और होती है, जिसको वांझ कंकोडा कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार कंकोडा रुचिकारक, कडवा, अग्निदीपक, तिक्त, गरम तथा वात, कफ, विष और पित्त का नाश करने वाला होता है। इसके फल मधुर, लघु, पचने में कटु, अग्नि-प्रदीपक तथा गुल्म, शूल, पित्त, त्रिदोष, कफ, कुष्ट, खाँसी, प्रमेह, श्वास, ज्वर, अरुचि और हृदय की पीडा को दूर करने वाले होते हैं। इसके पत्ते रुचि कारक, वीर्य वर्धक, त्रिदोष नाशक तथा कृमि ज्वर, क्षय, श्वास, खासी, हिचकी और बवासीर को दूर करने वाले हैं। इसका कन्द शहद के साथ देने से मस्तक रोग में हितकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह खासी, फेफडे के दर्द, पुरानी बुखार, बवासीर और गुर्दे के दर्द मे मुफीद है। इसकी जड में भी यही गुण है। आधा शीशी के दर्द में अगर इसको गाय के घी में तल कर उस घी को नाक में टपकाया जाय तो तुरन्त लाभ होता है। इसके रस को नाक में टपकाने से नाक के सब कीडे मर जाते हैं। कान के दर्द में भी इसको टपकाने से लाभ होता है। इसकी १ तोला जड को पीस कर पानी के संग में पीने से गुर्दे की पथरी में बडा लाभ होता है। इसकी जड को घिस कर उसका लेप बालों की जडों में करने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं और उनका गिरना बन्द हो जाता है। इस औषधि में विष को नष्ट करने की शक्ति भी है।

यह बादी को बढ़ाने वाला और देर से हजम होने वाला है।

बांझ कंकोड़ा या बिना फल वाली जाति— यह बनस्पति कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है। इसकी जड सर्पदंश व अन्य प्रकार के विषों पर उपयोगी है। यह श्लीपद (हाथीपाव) में भी फायदा करती है। कफ और रक्त रोग को नष्ट करने के काम भी आती है। नेत्र रोग, हृदय रोग, विसर्प और वायु नलियों के प्रदाह में भी यह उपयोगी है।

इसकी जड को भूंजकर बवासीर के खून को बन्द करने के लिये और आतों की तकलीफों को दूर करने के लिये काम में ली जाती हैं।

बेल गाव में इसके फल वाली बनस्पति की गठीली जड़ें कफ निस्सारक औषधि के रूप में ली जाती है। जूडी ताप में भी इनका उपयोग किया जाता है।

इसकी नर बनस्पति की जड का उपयोग सर्पदंश के कारण पैदा हुए घाव में किया जाता है। ज्वर से उठे हुए अशक्त बीमारों को इसके फल की शाक लाभ दायक होती है।

छोटा नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसकी जड को मूत्राशय से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों में काम लेते हैं। मूर्छा सहित ज्वर की हालत में अगर इसकी जड को जल के साथ पीस कर मालिश किया जाय तो वह अवश्य ही शाति पहुँचाती है।

बांझ कक्कोडे में विष नाशक गुण—

इस बनस्पति में विषनाशक गुण भी रहता है। इसी से इसको संस्कृत ग्रथो में नागहंत्री, सर्पदमनी, इत्यादि नामों से उल्लेख किया गया है। इसके कन्द को १॥ तोले की मात्रा में पानी के साथ पीस कर पिलाने से उल्टिया होकर प्रत्येक प्रकार का स्थावर और जङ्गम विष नष्ट हो जाता है।

जङ्गलनी जडी बूंटी के लेखक अपने विशेष अनुभव का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "हस्त मैथुन की कुटेव से नपुंसक स्थिति में पड़े हुए एक बीमार को एक वैद्य ने अधिक मात्रा मे संखिया खिला दिया, जिससे उसका सारा शरीर जलने लगा और पक्षाघात की तरह स्थिति होगई। उसके खून का रंग काजल की तरह काला हो गया। उसकी जीभ और गले में इतनी जडता पैदा हो गई कि वह कुछ भी खा पी नही सकता था। ऐसी हालत में उस बीमार को डोली में डाल कर हमारे पास लाया गया। हमने कुछ विचार करने के पश्चात् बांझ कक्कोड़े की जड़, बेव की जड, निंस की अन्तर छाल और गूलर के पत्ते इन सब को समान भाग लेकर सवेरे शाम ४ तोले की मात्रा में क्वाथ बनाकर देना प्रारंभ किया जिससे धीरे-धीरे सोमल का विष नष्ट होकर उसका शरीर पहले जैसा हो गया। तत्पश्चात् योग्य अनुपान के साथ सोने की भस्म देने से उसकी नपुंसकता भी दूर हो गई।

रसरत्न समुच्चय के ग्रंथकार लिखते हैं कि बांझ कक्कोडे के कन्द को सुखा कर उसके चूर्ण को तीन माशे की मात्रा मे शहद और शक्कर के साथ लेने से पथरी नष्ट हो जाती है। इसी प्रयोग से जिन लोगों के गर्मी की वजह से तालू में छिद्र पड गया हो वह भी मिट जाता है।

कङ्गनी

नाम—

संस्कृत—कंगु, कंगुका, पीत तडुंल, प्रियंगु। हिन्दी—कंगुनी, कांगनी, कङ्गनी। मराठी—कांग। गुजराती—काग। तेलगू—कोरालू। फारसी—गल। लेटिन—Seteria Italica. (सेटेरिया इटालिक)

वर्णन—

यह अनाज बरी सरीखा होता है फिर भी इसमें बहुत फरक होता है। बरीका छिलका ज्यादा पतला होता है और उसका रंग पीला होता है। परन्तु कंगुका छिलका जाडा होकर लाल, पीला और काले रंग का होता है। इसका भात वगैरा बनता है।लही और आटा बनाना हो तो इसको भूँज लेना चाहिये। कङ्गुका पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है और उसको बाजरे के सिट्टे सरीखी लम्बी और बारीक फली लगती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक दृष्टि से यह वनस्पति मीठी, तिक्त, मज्जा वर्धक और कामोद्दीपक है। यह गर्भवती के गर्भाशय को शान्ति देने वाली होती है। अस्थिभाग को पूरने में यह बड़ी उपयोगी है। भाव प्रकाश के मत से यह टूटी हुई अस्थि को जोड़ने वाली, वात कारक, पौष्टिक, भारी, कफ नाशक और घोड़ों के लिये अत्यन्त उपकारी है। कङ्गनी काली, लाल, सफेद और पीली के भेद से ४ प्रकार की होती है। इनमें पीली कङ्गनी उत्तम होती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह औषधि मूत्रल, सकोचक और आम वात में उपकारी है।

कंगु

नाम—

पंजाब—चिरचिटा, गगेर, कगि, कगु। दिल्ली—चिरचिटा। अर्बी—अकुनेह, हिन्दलदवेरा। फारसी—गुनि, खरदरे। मराठी—गगरो। सिन्ध—गङ्गेर, गङ्गरो। उर्दू—चिरचिटा। लेटिन—Lycium Barbarum (लायकिम बारबरम। लायकिम इकरोपेकम)।

वर्णन—

यह वनस्पति काठियावाड, सिन्ध, बिलोचीस्तान और पजाब में पैदा होती है। यह एक झाडीनुमा वृक्ष होता है। इसकी शाखाएँ सफेद और भूरे रग की होती है। इन शाखाओं पर कुछ काटे होते हैं। इसके पत्ते बर्छी के आकार के होते हैं। इसके फूल गुच्छे मे लगते हैं। इसका फल चमकीले लाल रंग का होता है। इसके अन्दर बीज रहते हैं। इन बीजो पर नारगी रंग की एक पतली झिल्ली रहती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कडुआ, ऋतुस्राव नियामक और रक्त वर्द्धक होता है। यह खूनी बवासीर, खाज, जलोदर, और दन्त पीडा में उपयोगी होता है। इसके पत्तों का रस नेत्रो की ज्योति बढ़ानेवाला होता हैं।

स्टेवर्ट के मतानुसार इसका फल कामोद्दीपक वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु कामोद्दीपक हैं।

कङ्गही

नाम—

हिन्दी—झम्पी, कङ्घई, कङ्घी। मराठी—चक्रभेंदा, कङ्गोरी; पेटारि। वङ्गाल—पेटारि। तामील—पेरून्तुरि, तुति। तेलगू—तुगुभेंदा, तुतुर वेन्दा। उड़िया—फोङ्कपेदि। लेटिन—Abuliton Asiaticum (एब्यूलिटन एसीयाटिकम)

वर्णन—

पूर्वीय सामुद्रिक किनारा, पश्चिमीय प्रायः द्वीप, सिलोन व दोनो ध्रुवों के समशीतोष्ण व उष्ण स्थानों में यह उत्पन्न होता हैं। यह पर्णदार वृक्ष होता है। इसके पत्ते अण्डाकार तीखी नोक वाले होते हैं। ये उपर के तरफ कुछ रूएंदार और खुरदरे होते हैं। नीचे के तरफ मखमली व नसें वाले रहते हैं। इसके पत्रवृन्त भी होता है। इसका पुष्पवृन्त कुछ मोटा होता है। इसके फूल पीले होते हैं।

गुण—

गोल्ड कोस्ट में इसके पत्ते सुजाक की बीमारी पर मुफीद माने जाते हैं। इसके पत्तों को पानी में मसलकर कुछ कालीमिरच मिला देते हैं और प्रत्येक दस मिनिट के अन्तर पर इसकी खुराक पीने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते व्रण पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। इसका अंतः प्रयोग भी होता है। ये मूत्राशय की पथरी व आखे धोने के काम में फायदे मन्द माने गये हैं।

—❀—

कंङ्गि

नाम—

पंजाब—कंघी, रिचनि। बंगाल—छलगुल्पुपुटि। तेलगू—तिज्ञरुद। लेटिन Euphorbia Draeunculsides.

उत्पत्ति स्थान—

सारे भारत के मैदानो मे व नीची पहाडियों पर, अरब में व उष्ण अफ्रिका में यह पैदा होती है।

वानस्पतिक विवरण—

यह बहुत शाखा वाला वृक्ष है, इसकी शाखाएँ जड़ से ही फूटती हैं, ये सीधी व पत्ते वाली होती हैं, इसके पत्ते बर्छी के आकार होते हैं। ये किनारो पर कटे हुए रहते हैं। ये ऊपर से मुलायम रहते हैं। इसकी फलिया ३ से लगाकर ४ मि० मिटर के आकार की होनी हैं। इनमें प्रायः तीन बीज पाये जाते हैं।

गुण—

इसका फल चमड़े पर होने वाले जो मस्से होते हैं उनको दूर करता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सम्मत औषधि है।

कंगुनी (माल कांगनी)

नाम —

संस्कृत—ज्योतिष्मति, ज्योतिष्मलता, सरस्वती, स्वर्णलता, कंगुनी, अमृता, इत्यादि। हिन्दी—कागनी, मालकागनी। बंगाल—लताफटकी, मालकागनी। बम्बई—मालकागनी, कंगुनि। मध्यप्रदेश—ककुन्दन रगुल। मराठी—माल कागनी, कागुनी। गुजराती—माल कांगनी। पंजाब—संखू। तेलगू—बगज, इस्कट। तामील—कलिगम। उर्दू—माल कागनी। लेटिन—Celastrus Panicalta, । (केलेस्ट्रस पेनिकला)

वर्णन—

यह वनस्पति झेलम से पूर्वीय हिमालय प्रान्त में ६००० फीट की ऊंचाई तक, बम्बई के पहाड़ी भागों में, गुजरात के दक्षिण में, मध्य भारत और मद्रास प्रेसीडेन्सी में तथा सीलोन, बरमा और मलाया द्वीप समूह में पैदा होती है। यह एक पराश्रयी लता होती है। इसकी बेलें मुलायम, लाल और बादामी रग की होती हैं। इसके पत्ते २ से ५ इंच तक लम्बे और एक से तीन इंच तक चौडे लम्ब गोल और कंगुरेदार होते हैं। इसके फूल कुछ पीलास लिये हुए हरे रंग के होते हैं जो बैसाख और जेठ महिने में आते हैं। आषाढ़ श्रावण महिने में इसके फलों के गुच्छे लगते हैं। पकने पर यह पीले रग के हो जाते हैं और इनमें से बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक साहित्य में बुद्धि को बढ़ाने वाली और स्मरण शक्ति को जागृत करने वाली जितनी दिव्य औषधियों का वर्णन पाया जाता है उनमें माल कागनी के बीज भी एक प्रधान वस्तु हैं।

"अष्टाङ्ग हृदय" नामक प्रसिद्ध आयुर्वैदिक ग्रंथ के लेखक और आयुर्वेद के महान् स्तंभ, आचार्य वाग्भट्ट, अपने रसरत्न समुच्चय नामक ग्रंथ-में लिखते हैं कि माल कागनी के बीजों को आश्विन मास के शुक्ल पक्ष मे लाकर उनका घानी में तेल निकलवा लेना चाहिये। उसके पश्चात् उस तेल मे उतने ही वजन का दूध और उससे चौथाई वजन की शहद मिलाकर हलकी आंच पर पकाना चाहिये जब दूध और शहद जलकर तेल मात्र बाकी रह जाय, तब उसको घी से तृप्त हुई मिट्टी की हाडी मे भरकर उसमें कवाब चीनी, कपूर, तज और जायफल, इन चारों वस्तुओं का समान भाग चूर्ण, जितना तेल हो उससे अष्टमाश लेकर उस वर्तन में डालकर वर्तन का मुँह बन्दकर उसको जमीन में या अनाज के ढेर में २१ दिन तक गाड़ देना चाहिये। उसके पश्चात उसको छान कर बोतलों में भर लेना चाहिये।

प्रातःकाल सूर्योदय के समय ४ तोले की मात्रा में इस तेल को पीना चाहिये। थोड़ी देर में पीनेवाला मनुष्य बेहोश हो जायगा और कुछ समय के बाद उसे धीरे धीरे होश आवेगा, होश में आते ही वह भूख के मारे रोने और चिल्लाने लगेगा उस समय उसे दूध और भात का पथ्य देना चाहिये। इस प्रकार १ महीने तक उसे प्रति दिन चार चार, तोला तेल पिलाना चाहिये। १०-१५ दिन के बाद प्रकृति के अनुकूल होने पर यह सब उपद्रव होना बन्द हो जायेंगे।

महर्षि वागभट्ट लिखते हैं कि इस प्रकार एक महीने तक इस तेल को सेवन करनेवाला मनुष्य अत्यन्त श्रुतधर अर्थात् प्रत्येक सुनी हुई विद्या को कंठस्थ रखने योग्य तीव्र बुद्धि वाला हो जाता है। दो मास के सेवन से उसकी कान्ति निखर जाती है। एक दूसरे प्रयोग में महर्षि वाग्भट्ट ने लिखा है कि माल कांगनी का पील कर निकाला हुआ तेल एक तावे के बरतन में भरकर उसपर कपड़मिट्टी करके ६ मास तक जमीन में गाड़ देना चाहिये। उसके बाद उसको निकालकर पहिले दिन पन्द्रह बून्द, दूसरे दिन तीस बून्द, तीसरे दिन ४५ बून्द और चौथे दिन ६० बूंद की मात्रा में पीना चाहिये और उसके बाद हमेशा ६० बून्द की मात्रा में लेते रहना चाहिये। पथ्य में दूध, भात, और गेहूँ की रोटी का उपयोग करना चाहिये। इस प्रयोग को बराबर ३ वर्ष करने से मनुष्य अत्यन्त धुरंधर विद्वान, श्रुतधर और दीर्घायु होता है।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि में बुद्धिवर्धक गुण कॉफी मात्रा में रहता है।

राज निघंटु के मतानुसार माल कागनी चरपरी, कड़वी, रूखी, वात-कफ नाशक, दाह जनक, अग्नि प्रदीपक और मेधा तथा प्रज्ञाकारक होती है।

✓ इसके पत्ते ऋतुस्राव नियामक होते हैं। इसके बीज गरम कटु, चरपरे और शुष्क रहते हैं। ये क्षुधा वर्धक विरेचक, वमनकारक, कामोद्दीपक, मस्तिष्क को बल देने वाले तथा वात और कफ को नष्ट करने वाले होते हैं। शरीर में ये कुछ जलन भी पैदा करते हैं। इनका तेल रक्तवर्धक, और उदर-सम्बन्धी शिकायतों को दूर करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज कड़वे और तीक्ष्ण स्वाद वाले होते हैं। ये कफ, निस्सारक तथा मस्तिष्क और यकृत को पुष्ट करने वाले होते हैं। जोड़ों के दर्द, पक्षाघात और कमजोरी में भी ये मुफीद हैं। बीजों के अतिरिक्त इसके तेल में और भी विशेष गुण होते हैं। यह तेल पौष्टिक, अग्नि-वर्धक तथा कफ, श्वास, कुष्ट, सिर दर्द और धवल रोग में लाभ कारी होता है।

माल कागनी और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—

माल कागनी के बीजों से पाताल यन्त्र के द्वारा एक प्रकार का काला तेल प्राप्त होता है, जिसको अंग्रेजी मे ओलियम नाइग्रम या ब्लैक आइल कहते हैं। यह तेल आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में बेरी बेरी (Bari-Bari) नामक महा भयंकर रोग में बड़ा उपयोगी और लाभ दायक सिद्ध हुआ है। गत ३०-४० वर्षों में इस तेल ने इस रोग पर काफी विजय प्राप्त की है।

डॉक्टर मुडीन शरीफ लिखते हैं कि विजगा पट्टम, मछली पट्टम और एलोर में माल कंगनी का काली जाति का तेल बहुत उत्तम तरीके से तयार किया जाता है। यह तेल मूत्र निस्सारक, स्वेद-जनक और ज्ञान-तन्तुओं को उत्तेजन देने वाला होता है। बेरी-बेरी नामक महा भयङ्कर व्याधि के लिये यह एक उत्तम और सुनिश्चित इलाज है। अनेक औषधियों का लम्बे समय तक उपयोग करने पर भी जिन बीमारों को कोई लाभ नहीं हुआ, उनको इस तेल को देने के साथ ही आश्चर्य जनक लाभ दिखलाई दिया। इस औषधि को देने के साथ ही रोगी के पेशाब की मात्रा बढ़ने लगती है। जिससे उसका सूजन नष्ट हो जाता है। इसी लक्षण को देखकर मैंने यह तेल जलोदर रोग के रोगियों पर भी व्यवहार किया और उसका परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहा। इस तेल की मात्रा मूत्र वृद्धि के लिये दस से लेकर तीस बून्द तक, पसीना लाने के लिये पाच से लेकर पन्द्रह बून्द तक और ज्ञान तंतुओं को उत्तेजित करने के लिये दस से लेकर पन्द्रह बून्द तक व्यवहार की जाती है।

मेजर बसु और कर्नल कीर्तिकर लिखते हैं कि हम इस ब्लेक ऑइल को गत ३६ वर्षों से प्रयोग मे ले रहे हैं। शुरु के १५ साल तक तो इसकी चिकित्सा विषयक उपयोगिता का विश्वास हमें नहीं हुआ, किन्तु गत २५ सालों से, विजगापट्टम, मछली पट्टम, और एलोर से प्राप्त की हुई वनस्पति का प्रयोग करने से हमें यह विश्वास होगया कि यह बेरी-बेरी रोग की सर्वोत्तम औषधि है। डॉक्टर हरक्वाडस ने जो भी इसके विषय में प्रशंसा की है उन सब से हम सहमत हैं। बेरी-बेरी के कई रोगी जो कि महिनों तक अन्य औषधियों के प्रयोग से लाभान्वित नहीं हुए थे, ब्लेक आयल के प्रयोग से दुरुस्त हो चुके हैं। इसका सबसे पहिला असर यह होता है कि यह मूत्र की वृद्धि करता है। इससे जो भी जल की विशेषता होती है वह दूर होना शुरू हो जाती है। इसके बाद में और भी दुश्चिन्ह गायब होते नजर आते हैं। देशी वैद्य इस वस्तु के उपयोग में एक बड़ी भारी गलती करते हैं वह यह कि वे लोग बीमार को खाने के लिये कुछ भी नहीं देते हैं। वे उसे सिर्फ जल और गेहूँ की बनी हुई एकाध चपाती देकर रह जाते हैं। यह हमारे मत से एक भारी भूल है। बेरी बेरी के रोगी को बहुत पौष्टिक खाने

की आवश्यकता रहती है। मैंने जलोदर के बीमारों को यह वस्तु बहुत ही सादे रूप में दी और उसके परिणाम बहुत ही उत्साह जनक रहे।

फरमाकोपिया इण्डिका नामक ग्रंथ में डॉक्टर वेडन पावेल लिखते हैं कि यह "बेरी बेरी" के लिये सर्वोत्तम औषधि है। सन्धिवात और पक्षाघात में भी यह उपयोग में लिया जाता है। इसकी १० से १५ बूंद तक दिन में २ बार देने से शरीर पर अत्यन्त उत्तेजक असर होता है और बहुत पसीना आता है। फिर भी कमजोरी बहुत कम आती है। नवीन रोगों में तो खास तौर से यह असर कारक है ही पर जब ज्ञान तन्तुओं की व्याधि और पक्षाघात के चिन्ह पूर्ण रूप से दिखलाई देते हों तब भी यह खास तौर से फायदा करता है।

माल कांगनी के बीजों का यह ब्लेक ऑइल पाताल यंत्र की क्रिया के द्वारा तय्यार किया जाता है। साधारण घानी के द्वारा निकाला हुआ तेल इतना उपयोगी नहीं होता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति आमवात, कुष्ट, और पक्षाघात में उपयोगी है। इसमें अलके लाइडस्, ग्लुको-साइड और कुछ रंगीन पदार्थ रहता है।

जङ्गलनी जड़ी बूटी के लेखक इस वनस्पति में और भी दो आश्चर्यजनक गुणों का उल्लेख करते हैं।

(१) गर्भपात—उनका कथन है कि माल कांगनी की जड़ को रविवार के दिन खोदकर लाना चाहिये। इस जड में से ४ अगुल का एक टुकडा लेकर उसको काले कपडे में बांध कर जिस स्त्री को हमेशा गर्भपात हो उसकी कमर में बाध देने से गर्भपात का होना रुक जाता हैं। जिस स्त्री को हमेशा गर्भपात की आदत हो गई हो उसको गर्भ रहने के साथ ही इस जड़ी को कमर में बाध लेना चाहिये और प्रसव के एक-दो दिन पहिले खोल देना चाहिये।

(२) चित्रा सर्प का जहर—सर्प की चित्रा नामक एक जाति होती है जिसको कहीं २ चितावर और चगरोट भी कहते हैं। इस सर्प के काटने से शरीर पर घाव पड जाते हैं और काटने की जगह सड कर, वहां का मांस गिरने लगता है। इस विष को दूर करने के लिये माल कागनी की जड, अत्यम्ल पर्णी की जड़, और काले सिरस की छाल समान भाग लेकर पानी के साथ घिसकर काटने के स्थान पर तथा घावों पर लेप करने से और एक से दो तोला तक पानी में घोल कर पिलाने से आश्चर्य जनक लाभ होता है। पशुओं को यह औषधि दस से लेकर पन्द्रह तोले तक पिलाना चाहिये। जङ्गलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि इस औषधि से अनेको मनुष्यों और पशुओं को लाभ पहुँचा है।

उपयोग—

गठिया और पक्षाघात— अनुभूत चिकित्सा सागर के लेखक लिखते है कि माल-कागनी के बीज गठिया, छोटे जोड़ों की सूजन और पक्षाघात रोग मे बड़ा लाभ पहुँचाते हैं। इनके खाने की तर्कीब यह है कि पहिले दिन इसका एक बीज, दूसरे दिन दो बीज इस तरह प्रतिदिन एक २ बीज बढ़ाते हुए

पन्द्रहवें दिन पन्द्रह बीज खाना चाहिये। इसके साथ ही इसके तेल की रोगग्रस्त अंगो पर मालिश भी करना चाहिये।

मूत्र वृद्धि—इसके तेल को दूध की लस्सी में डालकर पिलाने से मूत्र वृद्धि होती है।

नासूर—इसके तेल को लगाने से नासूर और लम्बे घाव मिटते हैं।

नपुसकता—इसके तेल की बूंदे नागर वेल के पान मे लगाकर दिन में दो-तीन बार खाने से नपुसकता मिटती है। परन्तु इन दिनों मे दूध और घी का अधिक सेवन करना चाहिये।

जलोदर—इसके काले तेल की दस से लेकर तीस बूंदे तक देने से पेशाव की वृद्धि होकर जलोदर का नाश हो जाता है।

बेरी बेरी—बेरी-बेरी रोग में भी इसका तेल दस से लेकर तीस बूँद तक की मात्रा में दिया जाता है। जिसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं।

कफ का श्वास—दो माशे माल कगनी और इलायची के दाने को निगलने से कफ के श्वास में लाभ होता है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को पीस कर लेप करने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

श्वेत कुष्ट—इसको २१ दिन तक गौ-मूत्र में भिगो कर उसका तेल निकाल कर लगाने से श्वेत कुष्ट मिटता है।

नेत्रों की कमजोरी—इसके तेल की पगतलियों पर मालिश करने से नेत्रो की ज्योति बढती है।

स्मरण शक्ति की कमजोरी—इसके तेल को डेढ माशे की मात्रा में प्रतिदिन लेने से स्मरण शक्ति की कमजोरी मिटती है।

कचनार

नाम—

संस्कृत—काचन, रक्तपुष्प, कान्तार, कनकप्रभ, काचनार, कोविदार इत्यादि। हिन्दी—कचनार। बंगाली—सफेद काचन। मराठी—काचन वृक्ष, कोरल। गुजराती—चपाकासी, चपो काचनार। फारसी—कचनार। लेटिन—Banhinia Tancatosa, Fanhinia Racemosa. (बेनलिनिया टेंकरोला)

वर्णन—

इसका वृक्ष १५ से २० फीट तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ नाजुक और झुकी हुई रहती हैं। इसकी छाल १ इञ्च मोटी, खरदरी, भूरी, और सफेद रग की होती है। इसके पत्ते हरे और चौडे होते हैं। ये प्रारम्भ में नीचे जुडमा और ऊपर जुदा (अलग) होते हैं। पौष माह में इसके पत्ते गिरते हैं और फागुन से जेठ मे नये पत्ते आते हैं। इसकी फलियां लम्बी और हरी होती हैं। इसके फूल २ इञ्च लम्बे, बडे और सफेद पीले तथा लाल रग के होते हैं। इन फूलो मे थोडी-थोडी सी खुशबू आती है। इन फूलों

पर एक-एक वालिश्त लम्बी फलियां आती हैं। ये फलियां कड़वे स्वाद की होती हैं। इस वृक्ष में भूरे रंग का एक प्रकार का गोंद लगता है, जो पानी में फूल जाता है। इसकी छाल रंगने के कामों में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से लाल कचनार शीतल, सारक, अग्निदीपक, कसैला, ग्राही तथा कफ, पित्त, व्रण, कृमि, कंठमाला, कुष्ट, वात, गुदाभ्रंश और रक्तपित्त को दूर करता है। इसके फूल शीतल, कसैले, रूखे, ग्राही, मधुर, हलके तथा, पित्त, क्षय, प्रदर, खांसी, और रक्त रोग को दूर करते हैं।

सफेद कचनार ग्राही, कसैला, मधुर, रुचि कारक, रूक्ष तथा श्वास, खांसी, पित्त, रक्त विकार, क्षत् और प्रदर रोग को नाश करता है। शेष गुण लाल कचनार के समान ही रहते हैं।

पीला कचनार—पीला कचनार ग्राही, दीपन, व्रण रोपक, कसैला, मूत्र कृच्छ, कफ और वात नाशक है।

सुश्रुत के मतानुसार इस वनस्पति के सब हिस्से दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश और बिच्छू के विष पर उपयोग में लिये जाते हैं। सर्पदंश में इसके ताज़ा बीजों की लुई बना कर सिरके के साथ काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

चक्रदत्त के मतानुसार लाल कचनार के छिलके को चांवल के पानी और अद्रक के साथ कंठ-माला और गले की गाठ पर लगाने से लाभ होता है।

वाग्भट के मतानुसार कचनार के चूर्ण और कमल वृक्ष के सम्मेलन से तयार किया हुआ घी मस्तिष्क, बौद्धिक शक्ति और स्मरण शक्ति को बढ़ाने में बहुत सहायता पहुँचाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से कचनार दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। किसी २ के मत से यह समशीतोष्ण है। यूनानी ग्रन्थकार इसको काबिज अर्थात कब्जियत करने वाला, खुश्की पैदा करने वाला तथा मैदे और आंतों को कूवत देने वाला मानते हैं। इसका प्रयोग पेट के कीड़ों को मारता है, खून के फ़साद को दूर करता है और कण्ठमाला में मुफीद है। इसकी छाल का चूर्ण प्रमेह में लाभ दायक है। इसकी कलिया खासी, दस्त, बवासीर, मासिकधर्म की अधिकता और पेशाब की राह से खून जाने में मुफीद है।

पीले कचनार की छाल का काढा पिलाने से आंतों के कीड़े मरते हैं। इसकी सूखी फलियों के चूर्ण की फक्की देने से आव वाले दस्त बन्द होते हैं। इसकी जड़ की छाल का काथ पिलाने से जिगर का वरम उतरता है।

लाल कचनार की जड़ का क्वाथ पिलाने से हाजमें की कमजोरी मिटती है। ३ माशे अजवायन के चूर्ण की फक्की देकर ऊपर से इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से पेट का फूलना दुरुस्त हो जाता है। मिश्री और मक्खन में इसकी कलियों का चूर्ण मिलाकर चटाने से खूनी बवासीर दूर होती है।

इसकी छाल या फूल के क्वाथ को ठंडा करके शहद मिलाकर पिलाने से गंडमाला में लाभ होता है तथा खून साफ होता है। इसकी छाल के क्वाथ में बावची के तेल की २० बूंदे डालकर पिलाने से कुष्ट-रोग में लाभ होता है।

डायमॉक के मतानुसार कचनार के वृक्ष की छाल और अनार के फूल इन दोनों के काढ़े से यदि कुल्ले किये जाय तो लार और मुँह के छालों में फायदा पहुँचता है।

इसकी कलियों का काढ़ा खासी, खूनी बवासीर, पेशाब की राह से खून जाना तथा अत्यधिक रजश्राव पर उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पेचिश की बीमारी में फायदा करने वाली और विष निवारक है। इसके फल मूत्रल, बीज पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। यह साप व बिच्छू के जहर में लाभदायक है।

केस और महरकर के मतानुसार साप और बिच्छू के जहर में इसके सब हिस्से निरूपयोगी हैं।

सन्याल और घोष के मतानुसार भीतरी उपचार मे इसकी छाल विशेष रूप से काम में ली जाती हैं। यह धातुशोधक, पौष्टिक और संकोचक हैं। गंडमाला रोग में यह अत्यन्त उपयोगी हैं। इस रोग मे गले की ग्रंथि बढ जाने पर इसे चावल के पानी और सोंठ के साथ उपयोग में लिया जाता है। विद्रधि रोग में इसकी ताजा छाल का रस फायदे मन्द हैं।

यह वनस्पति आँव रक्तातिसार में विशेष उपयोगी हैं। यह आतों के अन्दर के कीडों को नाश करती हैं। कुष्टरोग में भी यह लाभदायक हैं।

दक्षिणी भारत के देशी चिकित्सक इसकी छोटी और सखी हुई कलियो को और कोमल फूलों को आँव रक्तातिसार में लेने की सिफारिश करते हैं। इसकी छाल का शीत निर्यास सकोचक वस्तु की तौर पर कुल्ले करने के लिये काम में लिया जाता है।

मलाबार कॉस्ट में इसकी जड़ के छिलके का काढा यकृत के प्रदाह पर दिया जाता है। यह कृमि नाशक भी माना जाता है। घाव और अर्बुद पर इसकी छाल को कूटकर बाह्य उपचार की तरह लगाने के काम मे लेते हैं।

उपयोग—

मुँह के छाले—इसकी अन्दर छाल ५ पाच तोले लेकर उसको आधा सेर पानी में उबालना चाहिये जब पाव भर पानी रह जाय तब उस पानी से कुल्ले करना चाहिये। मुँह के छालों की यह एक अत्यन्त अनुभूत और चमत्कारिक औषधि है। जिन लोगो के छाले किसी भी औषधि से नहीं मिटते हैं उनको भी इस औषधि से अवश्य लाभ होगा। यहा तक कि सूतिका रोग ग्रस्त स्त्रियो के छालों को भी यह आराम करता है।

आतों के कृमि—इसकी छाल का अथवा इसकी कलियों का क्वाथ पिलाने से आतो के कीड़े मरते हैं।

फोड़े—इसकी जड का चावलों के धोवन के साथ पुल्टिस बनाकर बांधने से फोडा जल्दी पक जाता है।

दंत पीड़ा—इसकी लकडी के कोयलों का दंत मञ्जन करने से दंत पीडा मिटती है।

खूनी बवासीर—मिश्री और मक्खन के साथ इसकी कलियों का चूर्ण बना कर चाटने से तथा जामुन, मौलश्री और कचनार की छाल को पानी में औटा कर उस पानी से गुदा को धोने से खूनी बवासीर मिटता है।

गंडमाला—चांवलों के धोवन के साथ कचनार की छाल को मिलाकर और उस पर सोंठ भुरका कर पिलाने से गण्डमाला में लाभ होता है।

कचलोरा

नाम—

हिन्दी—कचलोरा। बरमा—दनपिन्थी। लैटिन—Pithecellobium Bigeminum.

वर्णन—

यह औषधि पूर्वी हिमालय, कोकण, पश्चिमी घाट और मद्रास प्रेसीडेन्सी मे पैदा होती है। यह एक प्रकार का मध्यम श्रेणी का वृक्ष है। इसकी शाखाएँ अधिक नहीं होती है। इसके पत्ते दो हिस्से वाले रहते हैं, ये बड़े मुलायम और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल झॅवरों मे लगे हुए रहते हैं। इसकी फली चपटी और लाल बदामी रंग की रहती है। इसमें ५ से लेकर ८ तक बीज पाये जाते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रन्थों मे इस औषधि का उल्लेख नहीं पाया जाता है।

इण्डियन मेडिसनल प्लांट के मतानुसार इसके पत्तों का काढ़ा कोढ़ की बीमारी मे बाह्य उपचार और भीतरी उपचार की तरह काम में लिया जाता है। यह औषधि बालों को बढ़ाने के उपयोग में भी आती है। बरमा में इसके बीज मधुमेह रोग को मिटाने के लिये काम में लिये जाते हैं।

इण्डियन मेडिकल गजट के सितम्बर सन १६३१ ई० के अङ्क में इ० जे० ब्रेड्स लिखते हैं कि इसका विरेचक गुण आंतों के लिये मुफीद हैं। यह औषधि आंतों में से गेस निकाल कर उनको साफ कर देती है। शरीर के दोषों को यह श्वास और मूत्र-मार्ग के द्वारा निकालती है। कभी-कभी इसके विषैले चिन्ह भी दृष्टि-गोचर होते हैं।

कर्नल चौपडा के मतानुसार यह औषधि हृदय के लिये एक प्रकार का विष है। कोढ़ के अंदर यह बहुत मुफीद है। इसमें एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है।

कचरी

नाम—

संस्कृत—चिरभिट, धेनुदुग्ध, गोरक्षकर्कटी, मृगाक्षी, श्वेतपुष्पा, चित्रफला, इत्यादि। हिन्दी—कचरी, काचरी, कचरिया, सेंध। बङ्गाली—गोमुक,काकुड। मराठी—थिडभू, शेंदाड, टकमकें गुजराती—चिभडा। तेलगू—कुडरंग पडु। लेटिन—Cucumis Pubescens.

वर्णन—

कचरिया की वेल खेतों और बागों में बोई जाती है तथा अपने आप भी पैदा होती है। इसकी वेल ककडी या खरबूजे की तरह होनी है। इसके फल गोल, अण्डाकृति और चितकबरे होते हैं। इसके अन्दर खरबूजे की तरह बीज निकलते हैं। इसकी दो जातिया होती हैं। एक छोटी और एक बडी।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कचरी मधुर, रूखी, भारी, पित्त, कफ नाशक, ग्राही और विष्टम्भ कारक है। पकी हुई कचरी गरम और पित्तकारक होती है। सूखी हुई कचरी, रूखी, कफ-नाशक, वात विनाशक, अरुचि निवारक, जडता नाशक, रोचक और दीपक है।

एक दूसरे ग्रन्थकार के मतानुसार कचरी शीतल, मल रोधक, भारी, मधुर और पित्त, मूत्र-कृच्छ्र, पथरी, दाह, वात और शोथ को नाश करने वाली होती है।

कचरी के फूल त्रिदोष कारक हैं।

छोटी कचरी चरपरी, कडवी, पचने में खट्टी, वात-पित्त नाशक, पीनस रोग को दूर करने वाली दीपन और रुचि वर्धक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कब्ज करने वाली कामोद्दीपक, हाजमा को तेज करने वाली और रुचि कारक होती है। इसकी धूनी बवासीर के लिये मुफीद होती है। वादी की वजह से पेट में जो दर्द होता है उसको दूर करने के लिये इसका चूर्ण एक खास दवा है।

इसके बीज भी वादी के विकारों को दूर करते हैं। भूख बढ़ाते हैं। कामोद्दीपक होते हैं और हृदय, मेदा, आतों को ताकत देते हैं। बवासीर, फालिज, लकवा, इत्यादि रोगों में भी यह लाभदायक है।

यह गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाती है और सर दर्द पैदा करती है। इसके दर्प को नाश करने वाले धनिया और अन्जीर हैं। इसकी खुराक ४ माशे की होती है।

कंचकचु

नाम—

हिन्दी—कचकचु। बङ्गाली—कंटकचु। वर्मा—जयाप। तेलगु—कंटकचोरम, मुलसारी। लेटिन—(Lasia Heterophylla) लेसिया हेट्रोफोला और लेसिया स्पिनोसा।

वर्णन

यह बनस्पति हिमालय, आसाम, बङ्गाल, बर्मा, सिलोन, मलाया प्रायद्वीप और चीन में होती है। इसकी जड़ें फैलनेवाली होती है। इसके पत्ते बर्छी के आकार के होते हैं। और फूल हलके गुलाबी रंग के होते हैं। इसका फल लम्बा और मोटा रहता हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रंथों में इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ें गले के रोगों की उत्तम दवा है।

केम्पबेल के मतानुसार इसकी जड़ बङ्गाल के संथाल लोगों के द्वारा बहुत उपयोग में ली जाती है। यह गले के रोगों मे मुफीद है।

सीलोन में इसके पत्ते और जड़ें बवासीर को उत्तम औषधि मानी जाती है।

कचालू

नाम—

गुण, दोष और प्रभाव—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह अरबी के क़िस्म का कन्द होता है। इसके गुण और धर्म अरबी की तरह ही होते हैं। अरबी की बनिस्बत, यह गले के भीतर की नली को ज्यादा नुकसान दायक है।

कचूर

नाम—

संस्कृत—कर्चूर, कल्पक, शठी, गन्धमूलक, गन्धसार इत्यादि। हिन्दी—कचूर, नरकचूर काली हलदी। बंगाली—एकागी, कचूरा। गुजराती—कचूरी। मराठी—नर कचूर, कचोरा। फारसी—कज़ूर। अरबी—ज़ुरबन्द। उर्दू—कचूर। तेलगू—काचोरालू। लेटिन—Cureuma Zedoaria.

वर्णन—

यह एक क्षुप जाति की बनस्पति है। इसके पत्ते हलदी के समान होते हैं। इसकी जड़ों में आंबी हलदी की तरह गाठें होती हैं। ये गाठें अन्दर से हलके पीले रंग की होती हैं। इनके चारों तरफ तन्तु लिपटे हुए होते हैं। इनमें कपूर की सी गन्ध आती है। इस क्षुप के फूल पीले और गुच्छेदार होते हैं। इसकी फली गोलाकार, झिल्लनी और पतली होती है। इसमें बीज भी रहते हैं। हलदी के खेतों में कचूर स्वयं पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—

आयर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कचूर अग्नि को दीपन करने वाला, रुचि उत्पन्न करने वाला, चरपरा, कड़वा और सुगन्धित होता है। इसकी गाठें श्वास की दुर्गन्ध को दूर करती हैं। यह

धवल रोग, बवासीर, खांसी, श्वास, वायु नलियों के पदाह, अर्बुद, क्षयरोग जनित गले की ग्रंथियां और तिल्ली की बीमारी में लाभ दायक है। मृगी रोग में भी यह लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। पेशाब के फसाद को दूर करता है। हथेली और पावों के तलुओं की जलन को दूर करता है। कण्ठमाला, कुष्ट और बवासीर में मुफीद हैं। सास को तङ्गी, बादी का फिसाद और वायु के गोले को दूर कर देता है। कई हकीमों के मतानुसार यह सुद्दे को खोलने वाला, दिल, दिमाग और मेदे को कुवत देने वाला, मूत्रल, ऋतुश्राव-प्रवर्तक और बच्चों को पेचिश को दूर करने वाला है। इसका लेप मुँह की फुन्सियों को दूर करता हैं।

रीड के मतानुसार इसकी ताजा जड शीतल और मूत्रल है। यह श्वेत प्रदर और सुजाक में बडी मुफीद है। यह खून साफ करने वाला भी है। इसके पत्तों का रस जलोदर रोग में दिया जाता है।

कम्बोडिया में इसकी जड, उत्तेजक, पौष्टिक और शोषक वस्तु की तौर पर दी जाती है। सिर के चक्कर में यह बडी लाभ दायक मानी जाती है। अस्थिरता और सिर के चक्कर में इसका अर्क उपयोग में लिया जाता है। प्रसूति के बाद करीब २ सप्ताह तक दिन में तीन बार इसे प्रसूता को दिया जाता है। कम्बोडिया देश में माताएं इस वस्तु को चबाकर आक्षेप से पीडित बच्चों के शरीर पर लगाती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड शीतल, मूत्रल और सुगन्धित है। इसमें इसेंशिअल आइल पाया जाता है।

उपयोग—

पेट का दर्द—इसके चूर्ण की फक्की लेने से पेट का दर्द मिटता है।

चोट और मोच—इसको पीसकर इसका लेप करने से चोट और मोच में लाभ होता है।

प्रसूति जन्य दुर्बलता—प्रसूति जन्य दुर्बलता मिटाने के लिये या उस समय के उदर शूल को दूर करने के लिये कचूर को पाक में मिलाकर या वैसे ही देने से बडा लाभ होता है।

जुकाम—कचूर, पीपर, और दाल चीनी के क्वाथ में शहद मिलाकर लेने से जुकाम में लाभ होता है।

बादी की पीड़ा—इसका लेप करने से शरीर में आने वाली बादी की पीडा मिटती है।

खांसी—इसके छोटे २ टुकडों को मुख में रखकर चूसने से या इसके ३ मासे चूर्ण की फक्की लेने से खासी में लाभ होता है तथा कण्ठ स्वर साफ होता हैं।

श्वास नली के रोग—काली मिरच, मुलैठी, और मिश्री के साथ कचूर को औटाकर पिलाने से श्वास नली के रोग मिटते हैं।

दन्त रोग—इसको दांतों में दबाकर रखने से दांतों की पीडा मिटती है।

सूति का रोग—कचूर, पित्त पापडा, देवदुवा सूंठ, चिरायता, धमासा, कुटकी, नागरमोथा इन औषधियों का काढ़ा शहद और पीपल के चूर्ण के साथ लेने से सूति का रोग, विषम ज्वर, जीर्णज्वर, त्रिदोष, इत्यादि में लाभदायक है।

कंज

नाम—

हिन्दी—कंज, जङ्गली काली मिर्च, दहन। संस्कृत— दहन, कंचन। बंगाली— कडतोदली। बम्बई—जङ्गली काली मिर्च। मराठी—जङ्गली काली मिर्च, लिमरी, मेंगर। तामील—कट्ट मिलगु। तेलगू— कोऊँ वसीडा। मलियालम—काक तुदली। लेटिन Toddalia Aculeata. टोडेलिया एक्यूलियेटा।

वर्णन—

यह वनस्पति कोकण, मद्रास प्रेसीडेन्सी, सीलोन, कुमाऊ और भूटान में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक, खासिया पहाडी पर ६ हजार फीट की ऊँचाई तक तथा सुमात्रा, जावा, चाइना इत्यादि देशों में पाई जाती है। यह एक प्रकार की हमेशा हरी रहने वाली पराश्रयी लता है। इसका छिलटा हल्का बदामी और फिसलना होता है। इस पर हल्के काटे रहते हैं। इसकी पत्तिया लम्बी और अण्डाकार रहती है। इसके फूल फीके हरे पीले रंग के होते हैं इसका फल लम्ब गोल और पीला होता है। इसमे कई बीज रहते हैं। उन बीजों के आस-पास कुछ लुआब रहता है।

गुण धर्म और प्रभाव—

इस औषधि का वर्णन करते हुए कर्नल चौपडा अपने इण्डिजेनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि इस वनस्पति ने अपनी उपयोगिता की ख्याति के कारण बहुत शीघ्रता के साथ लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। इसकी जड के छिलटे की मलेरिया ज्वर को नाश करने के सम्बन्ध में बडी तारीफ है। उन दिनों में कई मशहूर वैद्यों ने इस औषधि में क्विनाइन और सिनकोना के उपचारों से अधिक नही तो कम से कम उनके मुकावले में ज्वर निवारक गुण बतलाये। यूरोप की औषधियों में भी लोपेज रूट के नाम से इसका उपयोग होता था। फर्माकोपिया ऑफ इण्डिया में भी यह औषधि सम्मिलित की गई थी।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में इसेंशियल ऑइल रहता है, जिसमें कि तेज गन्ध होती है। इसमे कपूर के सदृश पदार्थ साइट्रोनेलल और लाइनेओल भी मौजूद रहते हैं। इसकी जड के छिलटे में उडनशील तेल राल, कटुतत्त्व साइट्रिक एसिड, पेक्टिन और स्टार्च रहते हैं। किन्तु इसमें सबसे मुख्य तत्त्व बर्बेराइन पाया जाता है जो कि इसमे बहुत कम मात्रा में रहता है।

सन् १९३२ में व्यास और भाटिया ने इसका परीक्षण किया और उनके परिणामों से यह पता लगा कि इसके विपैले गुण सिनकोना से १/५ होते हैं, फिर भी इस पर निश्चित मत देने के लिये, अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

किंग जार्ज मेडिकल कॉलेज लखनऊ में व्यास और भाटिया ने इसकी जड के छिलटे के ज्वर-नाशक गुणों की परीक्षा की, उन्होंने इसके टिन्क्चर को आधे से लेकर १ ड्राम की मात्रा मे उपयोग में लिया। मलेरिया से पीडित २६ रोगियों को टोडेलिया टिन्क्चर देकर इसके गुण की परीक्षा की। केवल

बीमारों के रक्त में मलेरिया के कीटाणु पाये गये। सिर्फ तीन बीमारों में मलेरिया के कीटाणु कुछ कम हुए, जोकि बिना चिकित्सा के भी हो सकते हैं। इसलिये यह लोग इस परिणाम पर पहुँचे कि यह औषधि मलेरिया पेरे साइड्स पर अपना कुछ भी प्रभाव नही दिखला सकती है।

मद्रास के डाक्टर बिडि (Bidie) इस बनस्पति को मलेरिया ज्वर या अन्य बीमारी से आने वाली कमजोरी के बाद उपयोग में लेने की सिफारश करते हैं।

कर्नल कीर्त्तिकर ने इसे मलेरिया ज्वर के बाद की कमजोरी में उपयोग में लिया और इसे क्षुधावर्धक, अग्नि दीपक और पौष्टिक पाया। यह ज्वर के बाद आने वाली या जीर्णज्वर जनित धातु विकृति को दूर करती है। इसकी जड के चूर्ण को १ औंस की मात्रा में १० औंस उबलते हुए जल में डाल कर इस जल को १ से २ औंस की मात्रा में दिन में दो तीन बार देना चाहिये।

कोमान के मतानुसार इसकी जड का छिलटा पहाडी ज्वरों में लाभदायक माना गया है। यह सारी बनस्पति ही ज्वर निवारक गुण वाली होती है। इसके छिलटे का शीत निर्यास तैयार करके मलेरिया ज्वर से पीडित कई रोगियों को दिया गया। साधारण श्रेणी के ज्वर में यह लाभदायक होता है।

कजापुति

हिन्दी—कजापुति। बंगाली—कजुपुते। बम्बाई—कयापुति। पटना—इलाचि। तामील—कय्यापुदइ। लेटिन—Melaleuca Leucadendron (मेलाल्यूका ल्यूकाडेन्ड्रोन)

वर्णन—

यह औषधि मलाया प्रायःद्वीप, कम्बोडिया और बोर्नियो में पैदा होती है। कभी २ भारत के बगीचे में भी बोई जाती है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल कागज की ढग की होती है। इसके पत्ते नुकीले होते हैं। इसके मंजरिया लगती हैं और उन पर फल लगते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रथों में इस औषधि का वर्णन नहीं पाया जाता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे इसके तेल का बड़ा महत्व माना गया है।

इसके पत्तों से प्राप्त किया हुआ तेल तेज उत्तेजक और पीडा निवारक पदार्थ है।

इण्डोचायना में गठिया की बीमारी में यह चमडे के ऊपर मसलने के काम लिया जाता है। तेज ज्वर की हालत में भी इसे शरीर पर मसलते हैं। तीव्र अतिसार रोग में यह उत्तेजक और आक्षेप निवारक माना गया है। यह विसर्पिका और खुजली रोग में बडा लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह एक प्रकार का उत्तेजक और कृमिनाशक पदार्थ है। यह चर्म दाहक भी माना जाता है। विसर्पिका रोग में यह बहुत लाभदायक है। इसमें एक प्रकार का इसेशियल ऑइल पाया जाता है।

के० एल० दे० के मतानुसार कजापुति का तेल एक प्रकार का सुगन्धित और निर्मल पदार्थ है। इसका रंग हरा, नीला रहता है। गठिया और मज्जा की पीड़ा में यह वस्तु लगाने के तौर पर काम में ली जाती है। वायु नलियों के प्रदाह में व फुफ्फुस की बीमारी में भी यह उपयोग में लिया जाता है। पसलियों के बीच के स्नायु और पेशियों की तीव्र वेदना पर और फुफ्फुसावरण के प्रदाह पर यह लगाने के काम में ली जाती है। जोड़ो के प्राचीन प्रदाह में भी इसका उपयोग किया जाता है। उपरोक्त सभी रोगों में इसका उपयोग उत्तेजक माना गया है। खुजली और विसर्पिका रोगों में भी यह बडा लाभदायक है।

अन्तः प्रयोग में भी यह औषधि काम में ली जाती है। यह एक तेज उत्तेजक पदार्थ है। यह पेट के आफरे को दूर करनेवाला और आक्षेप निवारक है। उदर रोगों में और अन्तडियों के विकार में यह विशेष प्रकार से आक्षेप निवारक माना गया है। यह कभी कभी आमवात में भी उपयोग में लिया जाता है।

सन्याल का कहना है कि अन्तडियों के आक्षेप से उत्पन्न उदर शूल में मैंने इसका स्प्रिट बीस बून्द की मात्रा में दिया जिसका परिणाम बड़ा सन्तोष जनक हुआ।

—❀—

कज़ाह

नाम—

अफ्रीका में इसको अलजान के नाम से पहिचाना जाता है और शीराज के रहने वाले इसे कमकमा कहते हैं।

पहिचान—इसका पौधा सौंफ के पौधे की शक्ल का होता है। सौंफ से इसके पत्ते पतले और शाखे छोटी होती हैं। सब शाखाएं आपस में उभरी हुई रहती हैं. इसका फूल पीला होता है। बीज बारीक और अनीसून के दाने की तरह होते हैं। इसके तमाम हिस्से में खुशबू आती है। यह वनस्पति अफ्रिका, मिश्र और शीराज के इलाके में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके बीज पेट में होने वाले बादी के विकारों को मिटाते हैं। इन बीजों को खाने से सर का दर्द आराम होता है। यह वनस्पति मूत्र-निस्सारक और ऋतुश्राव नियामक है। इसके खाने से आंतों का दर्द मिटता है।

कञ्जुरा

नाम—

हिन्दी—कना, कंजुना। बङ्गाली—जातकञ्जुरा, जातकन्शीरा, बिजनौर—काना, कोनी, कुमाऊ—कञ्जुरा। लेटिन—Commelina Abliqua,(कोमिलिना,आबलिका)

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष, सीलोन और मलाया द्वीप में पैदा होती है। इसके वृक्ष का पिंड मोटा और ऊँचा होता है। इस वृक्ष के कई शाखाएँ होती हैं। इसके पत्ते लम्बे और बर्छी के आकार के होते हैं। इनकी नोक तीखी रहती है। इसके फूल नीले होते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी और बीज वाली होती हैं। इसके बीज फिसलने वाले और सीसे के रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का वर्णन कहीं दिखाई नहीं देता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसका वर्णन आया है।

एट किन्सन के मतानुसार इसकी जड़ सिर की घुमरी या चक्कर, ज्वर और पित्त की तकलीफों में लाभदायक होती है। यह सर्प विष प्रति रोधक है।

लवरेइरो के मतानुसार यह ज्वरोपशामक, विरेचक और पथरी तथा कब्जियत में उपयोगी होती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह वस्तु सर्प विष, सिर की घूमरी, ज्वर और पित्त की तकलीफों में उपयोगी है।

मस्कर और केस के मतानुसार यह वस्तु सांप के विष में बिलकुल निरुपयोगी है।

कंभल

हिन्दी—कंभल। पञ्जाब— बाकर, कंभर, तरखना। गढ़वाली— गढ़पापरी, गदम्भिमा, पोटली। लेटिन—Acer Pictum (एकर पिक्टम)

यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष है, जो उत्तरी पश्चिमी हिमालय में ४ हजार से ६ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होता है। इसकी कई शाखाएँ फूटती हैं। इसकी छाल हलके भूरे रंग की और फिसलनी होती है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और कटी हुई किनारो के होते हैं। इसके फूल हरे, पीले रंग के होते हैं। इसके फल लम्बे और फिसलने वाले होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते प्रदाह जनक होते हैं। जो फफोले उठाने के काम में आते हैं। इसकी छाल सकोचक मानी जाती है।

कट करंज

नाम—

संस्कृत -कुबेराक्षी, मर्कटिका, लटकरंज, तिरगच्छिका, कटकरंज, इत्यादि। हिन्दी— कट-करंज, करञ्जुवा, कञ्ज, कणगच्छ तरगच्छ। मराठी— सागरगोटा। गुजराती— काकच, कांकचिया। अर्बी

किसमकित, हजरेलुकथ। फारसी—फिन्दुक, इखलीस। बंगाली—कांटाकरंज। लेटिन —Caesalpinia Bonducella, C. Crista. अंगरेजी—The Fevar Nut.

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता है जो बहुत कांटे वाली होती है। यह दूसरे वृक्षों का आश्रय लेकर बहुत दूर तक फैलती है। इसकी शाखाएँ और उन शाखाएँ अत्यन्त सघन और परस्पर गुंथी हुई रहती हैं। इसकी छाल हलके भूरे रंग की और लकड़ी मजबूत होती है। इसके पत्ते सरसी के पत्तों की तरह किंचित लम्ब गोल होते हैं। इसके फूल बहुत तादाद में आते हैं और जिन पर पापड़ों की तरह फलियां लगाती हैं। ये फलिये दो से तीन इञ्च तक लम्बी, डेढ़ इञ्च के करीब चौड़ी, चपटी और बारीक, तीक्ष्ण काटों से भरी हुई रहती हैं। इन फलियों के अन्दर बीज रहते हैं। ये बीज खाकी रंग के छोटी कौड़ियों की तरह होते हैं। इनके ऊपर की छाल बहुत कठिन होती है। इनके भीतर का मगज सफेद होता है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में खेतों के किनारे पर और इधर-उधर जङ्गल में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से, कटकरंज, तुरा, मल रोधक, पाक के समय चरपरा कसेला तथा प्रमेह, कोढ़, बवासीर, घाव, वात, कृमि रोग को नष्ट करने वाला और उष्ण वीर्य है। इसके बीज शूल और गोले की व्याधि को दूर करने वाले तथा पेट की वायु और वमन को नष्ट करने वाले हैं।

इसकी जड़ का छिलका अर्बुद और जरायु फूल को दूर करने में मुफीद है। इसकी कोंपले अर्बुद के इलाज में उपयोगी होती हैं। इसके पत्तों का रस कृमि नाशक है। यह श्लीपद और माता की बीमारी में भी उपयोगी है। इसका फूल कड़वा, गरम तथा कफ, वात, को दूर करने वाला होता है। इस की राख जलोदर में उपयोगी होती है। इसका फल कसेला, गरम, संकोचक, कामोद्दीपक और कृमिनाशक होता है। श्वेतप्रदर, बवासीर और मूत्र सम्बन्धी बिमारियों में यह लाभदायक है। इसके फलों का तेल देरी से भरने वाले व्रणों में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी हकीमों के मत से इसके फल की मग़ज तीसरे दर्जे में गरम और रुक्ष तथा किसी २ के मतानुसार पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह औषधि सूजन को दूर करने वाली, ज्वर में लाभदायक, बालक को जरायु में स्थापन कर उसकी रक्षा करने वाली, मल को पकाने वाली, गुल्म नाशक तथा वक्षःस्थल और कण्ठ को हानि पहुँचाने वाला होती है।

खजायनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि औरतों के वन्ध्यत्व को नष्ट करने वाली है। स्त्री के दूध में इसके मगज को पीसकर उसमें कपड़ा तर करके उसकी बत्ती बाझ औरत की योनि में रखे तो उसको गर्भ रह जाता है। जिस औरत को गर्भ गिरने की बीमारी हो वह भी इस बत्ती को रखे तो लाभ हो सकता है, मगर गर्भ की हालत में रखना मना है।

अण्ड कोष में जल भरने की बीमारी में उक्त लेखक इस वनस्पति को फायदे मन्द बतला

था। इसके तीन दाने भूवल (गरम राख) में पका कर उनकी मगज को बारीक पीसकर ७ दिन तक खिलाने से और इसके चूर्ण को अरण्ड के पत्ते पर छिड़ कर अण्ड-कोष पर बाधने से बड़ा लाभ होता है। पेट के कृमियों को नष्ट करने में भी इसकी उपयोगिता मानी जाती है। एक दाने की मगज को पीसकर गुड़ में मिलाकर खिलाने से दूसरे दिन पेट के कुल कीड़े थोक के थोक मरे हुए निकलते हैं। इसके पत्ते कफ के दोष और खून के लिये मुफीद हैं।

एक यूनानी हकीम के मत से चोथिया बुखार में जब कोई भी दवा कामयाब नहीं होती तब करञ्जुवे के पत्ता को इक्कीस कालिमिरच के साथ पीसकर पिलाने से बड़ा लाभ होता है। इसका तेल जख्मों के अन्दर बड़ा लाभदायक है। अगर किसी जखम में कीड़े भी पड़ गये हों तो भी इसके लगाने से बड़ा लाभ होता है।

इण्डियन फरमाकोपिया की पुनरावृत्ति के लिये मद्रास कमेटी ने जो आफिशियल रिपोर्ट पेश किया था उसमें लिखा था कि इसके बीज बहुत उपयोगी, सस्ते, पर्यायिक ज्वरों को नाश करनेवाले और पौष्टिक हैं। ये सादे निरतर बने रहनेवाले और सविराम ज्वर में फायदेमन्द है। यह श्वास की पीड़ा में भी लाभदायक माने गये हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पीसे हुए बीज काली-मिरच के साथ मिलाकर मलेरिया के रोगी को दिये जाते हैं। इनमे मामूली ज्वर निवारक शक्ति है। तीव्र मलेरिया मे ये फायदेमन्द नहीं हैं। इसके पत्ते और बीजों को अरडी के तेल के साथ भूंजकर और पीसकर लगाने से बवासीर, जलाबुंद, और अण्डवृद्धि में लाभ होता है।

डायमॉक के मतानुसार इसके बीज घाव पूरक, और ज्वर निवारक हैं। इसके आधे बीज के मगज को लौग के साथ देने से उदर शूल की पीडा में और पीपल के साथ देने पर मलेरिया ज्वर में लाभ होता है। इन बीजों को सेक कर, पीसकर, जलाबुंद रोग मे दिया जाता हैं। कुष्ट रोग में भी ये अतः प्रयोग में काम में लिये जाते हैं। ये कृमि नाशक माने गये हैं। डाक्टर इसनार्ड चीफ मेडिकल आफिसर कस्टम डिपार्टमेंट मारमेलीज लिखते हैं कि इसके बीजों में पाया जाने वाला कटु तत्व यदि दस से लगाकर बीस सेन्टीग्राम तक सविराम ज्वरों में दिया जाय तो क्विनाइन साल्ट की तरह ही गुण दिखाता है।

कर्नल चोपरा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"सन् १८६८ में इसके बीज भारतवर्ष की फरमाकोपिया में पौष्टिक और ज्वरघ्न औषधि के तौर पर दर्ज किये गये। कई मेडिकल अफसरों ने भी इसके पक्ष में अपना मत जाहिर किया। सन् १८८६ मे हीकेल (Heekel) और Schlagdenhaffen ने यह पता लगाया कि इसके बीजों में २५.१२ प्रतिशत तेल, १.६२५ प्र. श. कटुतत्व ६.८३ प्र. श० शक्कर और ३.७६१ प्र. शत लवण हैं। एक अनुपक्षारीय कटुतत्व भी इसके बीजों से सफेद चूर्ण (Bonducin) के रूप में प्राप्त किया गया है। इसी की वजह से ये बीज उपयोगी माने जाते हैं। यह जल में अघुलन शील किन्तु तेल में घुलन

शील होता है। सन् १६०६ में वेकन ने इसके गूदे से बोंडुसिन नामक कटुतत्व प्रथक किया। उन्होंने इसमें कई प्रकार के रेजिन्स (राल या गोंद) का मिश्रण पाया। इसके गूदे में उन्होंने एलकोलाइड या ग्लुकोसाइड नहीं पाया। सन् १६१२ में भादुरी ने प्रकाशित किया कि इसके बीजों में नेटिन नामक उपक्षार पाया जाता है। भादुरी का बताया हुआ नेटिन ग्लुकोसाइड है अथवा एलकेलाइड, इसमें सन्देह है। कारण कि उसका विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। गोड़बोले, परांजपे और श्रीखण्डे के मत से यह कटु तत्व, ग्लुकोसाइड था। मगर ट्यूमिन केटि (Tummin Katti) ने सन १६१० में पता लगाया कि यह बोंडुसिन है।

कलकत्ता स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन में इसके बीजों के फिर से रासायनिक विश्लेषण किया गया जिसके परिणाम स्वरूप इसमें पेट्रोलियम ईथर १.३५२ प्रति सैकड़ा, सल्फेरिक ईथर १.८४ प्रति सैकड़ा, क्लोरोफार्म .४२ प्रति शत और एबसोल्यूट अलकोहल १८.५५ प्रति शत सूखे सत्वों में से प्राप्त हुए। इनमें से हर एक का रासायनिक परीक्षण किया गया, मगर उपक्षार या ग्लुकोसाइड की उपस्थिति जो कि पहिले के अन्वेषकों ने बतलाई थी, तसदीक न हो सकी, किन्तु नानग्लुको साइड कटु तत्व जो कि जल में अघुलन शील है, निसन्देह पाया गया। मगर उपचारिक उपयोगिता में यह भी निरुपयोगी सिद्ध हुआ। इसके बीजों में अग्राह्य, गन्धयुक्त एक प्रकार का हलका पीला तेल भी पाया जाता है। कुछ कार्यकर्ताओं के मतानुसार इसमें तेल की तादाद बीस से पचीस प्र० सैकड़ा तक रहती है। मगर जिस नमूने को कर्नल चोपरा ने जांचा था उसमें चौदह प्रतिशत से अधिक मात्रा नहीं पाई गई।

इस वस्तु की पर्यायिक ज्वरों को निवारण करने के विषय में बहुत बड़ी ख्याति है। इसी को खयाल में रखकर इण्डिजेनस ड्रग्स कमेटी की संरक्षणता में इसकी परीक्षा की गई। यद्यपि इसके परिणाम इतने निश्चित रूप से प्राप्त न हो सके फिर भी इस कमेटी ने इस वस्तु को उत्तम बलदायक और उपयोगी ज्वर नाशक पदार्थ बतलाया। मगर रासायनिक विश्लेषण में इन बीजों के अन्दर ऐसे कोई प्रभावशाली तत्व नहीं पाये गये इसलिये इसके अधिक परीक्षण नहीं किये गये।

औषधि संग्रह नामक प्रसिद्ध मराठी ग्रंथ के लेखक डाक्टर वामन गणेश देसाई लिखते हैं कि सूतिका ज्वर में कटकरंज के बीज से कई प्रकार का फायदा होता है। इससे बुखार कम होता है। गर्भाशय का संकोचन होता है। उदर शूल रुक जाता है, रजःश्राव साफ होता है और घाव बढ़ गया हो तो वह भी जल्दी भर जाता है। इसलिये प्रसूति काल के समय चाहे बुखार हो या न हो इस औषधि का उपयोग करना बड़ा लाभदायक है।

बङ्गला के आयुर्वेद नामक पत्र में डाक्टर क्षेत्रमोहन चटर्जी का उपरोक्त वनस्पति पर एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने लिखा थाः—

"मैं छोटे गाव में गरीब लोगों की चिकित्सा करने वाला एक डाक्टर हूं। जिन गावों में मैं रहता हूं वहा पर मलेरिया का उपद्रव बहुत जोरों से है। मैं एक ऐसी औषधि की खोज में था जो क्विनाइन के बराबर ही प्रभावशाली हो मगर उसमें कुनेन से पैदा होने वाले दोष न हों और वह इतनी खर्ची

लो भी न हो। कुछ समय बाद मुझे कटकरंज के बीजों के विषय में अंगरेजी में कुछ साहित्य पढ़ने को मिला। उसको देख कर मैं क्विनाइन के स्थान पर इस औषधि का तजुर्बा करने लगा। थोड़े ही दिनों में मुझे यह विश्वास हो गया कि इस औषधि में ज्वर को नष्ट करने की आश्चर्यजनक शक्ति है। इस औषधि की केवल दो-तीन गोलियों का सेवन करने से ही अनेक रोगियों का ज्वर दूर हो जाता है और फिर वह पलट कर नहीं आता।

कटकरंज के फूल, पत्ते इत्यादि प्रत्येक अङ्ग का मैंने उपयोग किया, मगर अन्त में मुझे मालूम हुआ कि इसके बीजों के मगज में ही ज्वर को नष्ट करने की सबसे अधिक शक्ति है। इनको उपयोग में लेने की मेरी पद्धति इस प्रकार है।

करञ्जुवे के बीजों के अन्दर की सफेद मगज को धूप में सुखा कर बारीक चूर्ण कर कपड़े में छान लेना चाहिये। फिर उस चूर्ण में चौथाई भाग लाडोपीपल का चूर्ण डाल कर उस चूर्ण को शहद में खरल करके पांच पांच-छः छः रत्ती की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियों को मलेरिया ज्वर में पानी के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। जाड़ा देकर बुखार का आना, सिर का दुखना, प्यास का लगना, हाथ पैरों का फूटना इत्यादि उपद्रवों के साथ अगर तेज ज्वर हो तो उसमें ज्वर के उतर जाने के बाद इस औषधि का सेवन कराना चाहिये। इस औषधि को देने के पहले रोगी को गरम दूध पिला देना चाहिये क्योंकि भूखे पेट इस औषधि का सेवन करने से कई रोगियों को वमन हो जाती है। मैंने अनेक रोगियों पर इस औषधि का उपयोग किया है और प्रत्येक केस में मुझे कुछ न कुछ लाभ मालूम हुआ है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि इस औषधि मे क्विनाईन के समान मलेरिया के विष को नष्ट करने की शक्ति तो है ही मगर इसके सिवाय इसमें कुछ गुण ऐसे भी पाये जाते हैं, जो शायद क्विनाईन में नहीं पाये जाते।

(१) इस औषधि की एक ही मात्रा का सेवन करने से ज्वर के अन्दर फायदा दृष्टिगोचर होने लग जाता है।

(२) यह औषधि बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, इत्यादि सबको निशंक भाव से सेवन कराई जा सकती है। उदर रोग, मूर्छा, गर्भावस्था, पित्तजनित प्रलापयुक्त जीर्ण ज्वर, इत्यादि तमाम प्रसगों पर बिना किसी डरके इसका उपयोग किया जा सकता है।

(3) इसके सेवन से दूर हुआ ज्वर पलटा खाकर फिर से नहीं आता।

(४) इसके सेवन से क्विनाइन की तरह भूख का नाश, सिर के चक्कर, कान का बहिरापन, इत्यादि उपद्रव पैदा नहीं होते।

(५) इस औषधि का सेवन करने से पूर्व रोगी को एक जुलाब देने से जल्दी फायदा होता है।

(६) नये और पुराने सभी प्रकार के ज्वरों में इसका उपयोग हो सकता है।

(७) यह वनस्पति तिल्ली तथा लीवर के विकारों को दूर करके शरीर में नवीन रक्त का संचार करती है।

उपयोग—

ज्वर—किरणगच की गिरी और काली मिरच बराबर ले पीस कर ८ रत्ती से १५ रत्ती तक की मात्रा में दिन में दो बार लेने से बारी से आनेवाला बुखार छूट जाता है।

सूजन—इसके मग़ज को पीसकर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

उदरशूल—इसकी गिरी को हुक्के में रखकर पीने से उदर शूल मिटता है।

मसूड़ों का फूलना—इसके और सुपारी के कोयलों को फिटकड़ी के साथ पीसकर मञ्जन करने से मसूडे की सूजन और मुँह के छाले मिट जाते हैं।

फोड़े फुन्सी—इसकी गिरी को पीसकर लेप करने से गाठ, अण्डकोष की सूजन और बद बिखर जाती है।

कृमि—इसकी मग़ज और बायविडङ्ग के चूर्ण की फक्की देने से पेट के कृमि निकलजाते हैं।

कंप वायु—इसकी मींगी के तेल का मालिश करने से आक्षेप और कम्पवायु मिट जाती है।

बनावटें—

हब्बदाफे बुखार—छोटी पीपर एक तोला, किरणगच के भूने हुए मगज दो तोला, जीरा आधा तोला, बबूल के कोमल पत्ते आधा तोला, इन सब चीजों को साथ में खरल करके चने के बराबर गोलियां बना लेना चाहिये। बुखार आने के एक घंटे पहिले इसमें से दो गोली पानी के साथ लेना चाहिये। इसी प्रकार सवेरे, दुपहर, शाम को, दो दो गोलिया पानी के साथ लेते रहने से तीन दिन में बुखार नष्ट हो जाता है। जो फिर पलटा खाकर वापिस नहीं आता। करावादीन एहसानी नामक यूनानी ग्रंथ का लेखक लिखता है कि यह औषधि सैकड़ो वर्षों से हजारों मनुष्यों पर आजमाई जा रही है। और इसका परिणाम भी बहुत अच्छा रहा है।

ज्वर नाशक चूर्ण—किरणगच के बीज का मगज़, और कालीमिरच को समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉक्टर नाडकरनी का कथन है कि सादे तथा इन्टरमिटन्ट अर्थात जाडे के साथ आने वाले मलेरिया ज्वर के लिये यह औषधि बहुत कीमती है।

बवासीर नाशक चूर्ण—किरणगच के बीज का मग़ज चित्रा की जड, सेंधानिमक, सोंठ, इन्द्र जौ और अडूसे की जड, इन सब चीजों को समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को आधे तोले की मात्रा में छाछ (मठा) के साथ लेने से और भोजन में केवल मट्ठा और सूरणकन्द खाने से कुछ दिनों में बवासीर के मस्से सूखकर खिर जाते हैं।

उदर शूल नाशक चूर्ण—किरणगज का मग़ज, संचर नमक, सूठ, और भूनी हुई हींग, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके ६ माशे की मात्रा मे गरम जल के साथ लेने से सब प्रकार के उदर शूल नष्ट होते हैं।

करंजारिष्ट—किरागच की जड़ की छाल चार सौ रुपये भर लेकर चौगुने पानी में उबालना चाहिये। जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसको उतारकर छान लेना चाहिये। इसमें चार सेर गुड़ और सोलह तोला सूंठ, मिरच और पीपल का समान भाग चूर्ण डालकर एक मिट्टी की बरनी में भर देना चाहिये। फिर उस बरनी का मुँह बन्द करके १ महिने तक पडी रहने देना चाहिये। उसके बाद उसे छान कर १ से २ तोले तक की मात्रा मे, सुबह शाम पानी के साथ पीने से बवासीर, वायु गोला, यकृत की वृद्धि, मन्दाग्नि इत्यादि उदर रोग दूर होते हैं।

नेत्र फूली नाशक योग— किरागच के बीज के मगज का बारीक चूर्ण करके उसको पलाश के फूलों के रस की इक्कीस भावनाएं देना चाहिये। उसके बाद उसकी लम्बी लम्बी सलाइयें बनाकर रख लेना चाहिये। इस सलाई को पानी में घिसकर आख मे आंजने से आख की फूली नष्ट होती है।

कंटकालु

नाम—

हिन्दी--कंटालू, भूसा, गजरिया, छकोला— मोहनकन्द। अलिराजपुर--किड़ारी। बालाघाट-चुनचुनीकन्द। बुन्देलखंड--कसेराकन्द। दार्जिलिंग— सिठी। देहरादून--देवर। बङ्गाल-- सूर आलू। कलकत्ता--कुकरआलू। मध्यप्रदेश - बड़ाकन्द। लेटिन-Dioscorea Pentaphylla (डिसकोरिया पे टेफिला।

वर्णन—

यह बनस्पति भारतवर्ष, सीलोन और आफ्रिका के उष्ण प्रांतों में पाई जाती है। इसकी गठाने लम्बी और गोल होती हैं जो जमीन के अन्दर से निकलती हैं। इसका तना नाजुक रहता है। इसके नीचे की तरफ कांटे रहते हैं। इसके पत्ते तीन या पाच के गुच्छे में रहते हैं। इसके नर और मादा दोनों तरह के फूल लगते हैं। इसकी फलिया लम्बी होती हैं। फलियों के अन्दर बीज रहते हैं, बीजों पर एक प्रकार की झिल्ली रहती है।

गुण दोष और प्रभाव--

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक है और इसकी गठान सूजन के काम में ली जाती है।

कटपतरी

गुण दोष और प्रभाव—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह एक हिन्दुस्तानी दवा है जो गरम और कसैली होती है। इसका फल खट्टा होता है। यह औषधि पुरुषों की रति शक्ति को बढ़ाने में और स्त्रियों के योनि रोगों को दूर करने में लाभदायक है।

कटभी (कुंभी)

नाम—

संस्कृत—भद्रंब्राह्मी, गिरिकर्णिका, कटभी, स्वादुपुष्प, विषघ्निका इत्यादि। हिन्दी—कटभी कुम्भी, इत्यादि। मराठी—कुम्भा, वापुंगा। बंगाली—कम्ब, कुंभ, वकम्ब इत्यादि। गुजराती—कुंवि तेलगू—अरया, बुदबुरिजा, दुधिजा, गधवा, कुम्भी इत्यादि। लेटिन—Careya Arborea. (केरिया अर्बोरिया)

वर्णन—

यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। जो कि भारतवर्ष, सीलोन, मलाया प्रायद्वीप और श्याम में पैदा होता है। इसके पत्ते लम्बे कुछ-कुछ गोल चौड़े और कुछ तीखी नोक वाले तथा मुलायम होते हैं। इसके फूल सफेद और कुछ दुर्गन्धि वाले होते हैं। इसके चार पंखड़िया होती है। इसकी छाल हल्के भूरे रंग की होती है। इसका फल हरा, मुलायम गोल अथवा अण्ड खरबूजे की तरह होता है।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कटभी प्रमेह, बवासीर, नासूर, विष, कृमि रोग, कफ और कुष्ठ को नष्ट करने वाली होती है। यह गरम, चरपरी और रूखी होती है। इसका फल कसेला और कफ तथा वीर्य को नष्ट करने वाला होता है। इसकी छाल और फल दोनों संकोचक है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसका छिलटा दूसरी औषधियों के साथ सर्प विष को दूर करने के काम में लिया जाता है। चरक और वाग्भट के मतानुसार यह बिच्छू के जहर में भी उपयोग है। सर्पदंश में इसका ताजा छिलटा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है और इसका शीत निर्यास पिलाने के काम में लिया जाता है।

मस्कर और केस के मतानुसार यह औषधि साप और बिच्छू के जहर में बिलकुल निरुपयोगी है।

कम्बोडिया में इसकी छाल ज्वर को दूर करने और झिल्ली के प्रदाह को कम करने के काम में ली जाती है। फोड़े, फुन्सी वाले ज्वर में और खास कर छोटी माता में यह बहुत उपयोगी होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि संकोचक और शान्तिदायक है। यह सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है।

कटम्पम (लिकुरा)

नाम -

(हिन्दी) गढवाली, लिकुरा। मद्रास—कटम्पम। गुजराती—पीली वदकडी। मुंडारी—मिदिरम काटा। लेटिन—Siegesbeckia orientalis (सीगेसबेकिया ओरिएण्टेलिस)।

वर्णन—

यह बनस्पति सारे भारतवर्ष और सिलोन में पैदा होती है। यह वर्ष जीवी बनस्पति है। इसका पिंड सख्त और सीधा रहता है। इसकी शाखाएँ इधर उधर फैली हुई रहती हैं इसके पत्ते तीखी नोक वाले और किनारों पर कटे हुए रहते हैं। इनके दोनों तरफ रूआं रहता है। इसके फूल पीले, मन्जरी काली और कुछ खुरदरी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रंथों में इस औषधि का उल्लेख नहीं मिलता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसके गुणों का पता लगा है।

इण्डियन मेडिसनल प्लाँट्स के रचयिताओं के मतानुसार यह औषधि घाव, दुष्ट व्रण या विद्रधि को नष्ट करने में बहुत सफल हुई है। मूत्रनाली की बीमारियों में भी यह बहुत उपयोगी है। इसके टिन्चर को ग्लेसरिन के साथ मिलाकर दाद और अन्य चर्म रोगों में लगाने के उपयोग में लिया गया। इसका प्रभाव अच्छा हुआ। इसके ताजा वृक्ष में कृमि नाशक गुण रहते हैं। इसलिये यह फोड़े पर उपयोगी होता है।

इण्डोचायना में यह सारा वृक्ष हृदय को बल देनेवाला माना जाता है।

लॉरियूनियन में यह सारी वनस्पति उत्तेजक, ज्वर निवारक, शीतादिरोग प्रतिशोधक और लार पैदा करनेवाली कही जाती है। ताहिती में इस बनस्पति का उपयोग घाव, मोच, अङ्ग भङ्ग व शस्त्र के जख्म पर किया जाता है। इसका प्रयोग ऋतुस्राव की क्रिया को नियमित करने में भी किया जाता है।

कर्नलचोपरा के मतानुसार यह औषधि लार निस्सारक, पौष्टिक और मृदु विरेचक है। इसका चर्म रोगों में उपयोग किया जाता है। इसमें क्राइस्टेलाइन और कटुतत्व पाये जाते हैं।

कटमट

गुण, दोप और प्रभाव—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह बूँटी अक्सर बागों में पैदा होती है और खट्टे स्वाद की होती है। इसको थोड़ी सी पिसकर काली मिरच के साथ देने से वमन का होना फौरन बन्द हो जाता है। इसको मक्खन के साथ देने से सुजाक, प्रमेह, रक्तदोष, शुक्रतारल्य, और शीघ्र पतन में बड़ा लाभ होता है। हृदय की दाह को मिटाने में भी यह मुफीद है।

इसके पानी में शीशे को खरल करने से शीशा मर जाता है।

कटमोरंगी

नाम—

संस्कृत—कानन शेखर। तामील - कदुमुरगई। तेलगु—गुनगि, अद्विमुनग। कनाड़ी—कडनुग। मलायलम—कट्टमुरिना। लेटिन - Ormocarpum Sennoites.

उत्पत्तिस्थान--

पश्चिमी भारत, सीलोन, श्याम, फिलिपाइन्स, पोलिनेसिया और उष्ण आफ्रिका।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक छोटी शाखादार झाड़ी है। इसका छिलटा नाजुक, मुलायम और फीका रहता है। इसके पत्ते फैले हुए रहते हैं। ये खुरदरे और बारीक काटे वाले होते हैं। इसके फूल थोड़े और कुछ छोटे होते हैं। इसके पपड़े नुक्खीदार होते हैं।

गुण—

इसकी जड पौष्टिक और उत्तेजक रहती है। यह पक्षाघात और कटिवात में काम आती है।

कर्नल चौपडा के मतानुसार इसकी जड पौष्टिक और उत्तेजक होती है। यह पक्षाघात और कटिवात में काम आती है।

कटरालि

नाम—

मद्रास—कदल्लारि। वंगाल—डाबुर, ढाकुर। वरमा—कजवा। कनाड़ी—चन्दि, हंन्दि, मोन्दि, तेन्दि। मलाया—वेतक वेतक। मलायलम—उतालम, ओथलम, चतनक्य। तामील—कदल्म, कटरालि, कट्टमा, उदलई। लेटिन–Cerbera Odollam. सरवेरा ओडोलम।

उत्पति स्थान -

भारतवर्ष के खारे दल दलो में या सामुद्रिक किनारे पर, सीलोन, मलायाद्वीप समूह, चीन, आस्ट्रेलिया, और प्रशान्त महासागर के द्वीपों में पैदा होती है।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक झाड़ या वडी झाड़ी है। इसका रस दूधिया और विषैला होता है। इसकी शाखाएँ मोटी रहती हैं। इसके पत्ते शाखाओ के अन्त मे लगे हुए रहते हैं। ये सूखने पर काले हो जाते हैं। ये वरछी के आकार के और तीखी नोक वाले रहते हैं। इनमें नसें बहुत सी और नाजुक होती हैं। फूल वड़े रहते हैं, ये सफेद और पीली सुगन्ध वाले होते हैं। इनका फल फिसलना और हरा होता है। बीजे प्रायः एक या दोही रहते हैं।

गुण—

इसका छिलटा विरेचक होता है। इसका फल निद्रा लाने वाला और विषैला होता है। इसका हरा फल कुत्तों को मारने के काम में लिया जाता है। इसके फल का गूदा एक तेज विष है। यदि इसका अन्तः प्रयोग किया जाय तो वमन और दस्त शुरु हो जाते हैं। इसके वाद में शक्ति का पतन होकर मृत्यु हो जाती है।

यह सारी वनस्पति अम्ल दूधिया रस से पूर्ण रहती है। इसका दूधिया रस और पत्ते दोनो ही में वामक और रेचक गुण रहते हैं।

यह फल पागल कुत्ते के काटे जाने पर विशेष उपयोगी होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु जानवरों के लिये विष रूप मे काम में ली जाती है। इस में ग्लुकोसाइड, सरबेरिन और ओडालिन नामका कटु तत्व रहता है।

कटसरैया

नाम—

संस्कृत—कुरंटक, किंकीरात, पीतपुष्पक, श्वेतपुष्प, मृदुकण्ट इत्यादि। हिन्दी—कटसरैया, पोयावास। मराठी—कोरण्टा, कजवुरा। गुजराती—कण्टासरियो। बङ्गाली—कंटजाति तेलगू—नल्ल गोरंट। लेटिन—Barleria Prionitis (बार लेरिया प्रीओनाटिस)

वर्णन—

कटसरैया की फूल के रंग के अनुसार कई जातिया होती हैं। जैसे पीले फूल वाली जाति, लाल फूल वाली जाति, सफेद फूल वाली जाति, बैंगनी फूल वाली जाति इत्यादि। इस जाति के पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। कहीं कहीं यह बारह महिनों पाये जाते हैं। इनकी ऊंचाई दो से पाच फुट तक होती है। इस पौधे पर बहुत शाखाएं होती हैं। इसके पत्ते लम्बे, अणीदार अर्थात् दो से आठ इंच तक लम्बे और एक से चार इंच तक चौड़े होते हैं, इस पत्ते को मसलने से उसमें से पीसी हुई राई की तरह तेज गन्ध आती है। इसके फूल अपनी जाति के अनुसार सफेद, पीले, लाल या बैंगनी रंग के रहते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे रंग के और बाद में गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। इनकी लम्बाई पौन इंच चौडाई पाव इंच में करीब होती है। प्रत्येक फल में दो बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सफेद फूल की कटसरैया कडवी, मृदु, गरम, दातों को हितकारी और कृमिनाशक होती है। खाज, खुजली, इत्यादि रुधिर विकार, कुष्ठरोग, दन्त पीडा इत्यादि रोगों में भी लाभदायक है।

पीले फूल की कटसरैया गरम, भूख बढ़ाने वाली, कड़वी, कसैली तथा चर्म और रक्त रोगों में लाभ दायक हैं।

लाल फुल की कट सरैया कडवी, कान्तिकारक, गरम तथा खून विकार, आफरी शूल, श्वास और खासी को मिटाती है।

नीले फूल की कटसरैया सूजन, व्रण, चर्मरोग और वात कफ को दूर करने वाली है।

रस रत्नाकर नामक ग्रन्थ के कर्त्ता लिखते हैं कि सध्याकाल में पीली कटसरैया का काढा करके सारी रात पड़ा रहने देकर दूसरे दिन पिलाने से अथवा पीले कटसरैया की जड़ को चाबकर उसका रस

पान करने से सूतिका रोग के सब प्रकार के उपद्रव शान्त होते हैं। इस काढ़े में यदि थोड़ा पीपर का चूर्ण भी मिला दिया जाय तो विशेष लाभदायक हो जाता है।

आर्य औषधि नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इसके पत्तो को राख करके घी में मिलाकर लगाने से सड़े हुए जखम, नहीं पकने वाले फोड़े फौरन अच्छे हो जाते हैं।

एक और प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है कि इसके पचाग को पीसकर तेल में मिलाकर मरहम की तरह लेप करने से दाद, खाज, खसरा तथा घाव पर लगाने लाभ होता है। खुजली पर तो इसका बहुत ही अच्छा असर होता है। इसके पत्तों का रस दो तोले को मात्रा में बड़े मनुष्यों को देने से पसीना देकर बुखार उतर जाता है और खांसी तथा सर्दी भी दूर होती है।

कतिपय वैद्यों का कथन है कि इसके पत्तों का रस निकालकर जिस तरफ बिच्छू ने काटा हो उसके दूसरे तरफ के नाक के छेद मे टपकाने से वेदना शान्त हो जाती है। कुछ लोगों के मतानुसार इसका रस सूजन पर चुपडने से लाभ होता है।

दन्त रोग के ऊपर भी यह औषधि बडी प्रभावशाली सिद्ध हुई है। चक्रदत्त लिखते हैं कि कटसरैया के पत्तों को उबालकर उससे कुल्ले करने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं।

जंगलनी जडी बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि पीली कटसरैया के पत्ते और अकलकरे को शामिल पीसकर डाढ़ के नीचे रखने से डाढ़ का दर्द तत्काल दूर हो जाता है। इसी प्रकार दांतो से खून गिरना भी इससे बन्द हो जाता है।

एन्सली के मतानुसार इसके पत्तों का रस छोटे बच्चो की खांसी, बुखार और कफ के लिए दक्षिणी भारत का एक प्रसिद्ध इलाज है। इसको थोडी सी शहद और शक्कर अथवा पानी के साथ मिलाकर दो चम्मच की मात्रा में दिन में दो बार पिलाया जाय। इसके जलाये हुए पौधे की राख पानी और कांजी के साथ देने से सर्वाङ्गीण शोथ, जलोदर और खांसी में उपयोगी होती है।

डॉक्टर नाडकरनी के मतानुसार इसके पत्तों का रस बरसात को ऋतु में पैरों पर चुपडने से पैरों के अन्दर चीरे पडना बन्द हो जाते हैं।

इसकी जड को पीसकर एक प्रकार का लेप तयार किया जाता है जो कि फोडो और ग्रन्थियों की सूजन में लाभदायक होता है। इसके पत्ते और लकडी को मीठे तेल में डालकर तेल से दूना पानी मिलाकर उबालते हैं। जब पानी जल जाता है। तब तेल को छानकर रख लेते हैं। यह तेल घावों को साफ करने के उपयोग में लिया जाता है।

कोकन में इसका सूखा छिलका कुक्कुर खांसी के अन्दर दिया जाता है। इसके ताजे छिलके का दो तोला रस सर्वांगीण शोथ में दूध के साथ मिलाकर दिया जाता है, यह स्वेदजनक और कफ निस्सारक है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह जुकाम, खांसी और सर्वांगीण शोथ में लाभदायक है।

उपयोग—

बन्ध्यत्व—इसकी जड को पीसकर तीन दिन तक पुरुष और स्त्री को गाय के दूध के साथ पिलाने से स्त्री गर्भ धारण करती है।

उपदंश—कट सरैया के पत्ते और काली मिरच को पानी के साथ पीसकर छानकर पिलाने से उपदंश मिटता है।

खांसी—इसके पत्तों के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से सूखी खांसी मिटती है।

अतिसार—इसके काढ़े पर सोंठ भुरका कर पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

कटसोन

नाम—

कुमाउ—कटसोल। नेपाल—विपेमकन्त। लेटिन-Rubus moblucanus (रूवस मोलूकेनस)

उत्पत्ति स्थान—

पश्चिमी घाट, मध्य, पूर्वी और उष्ण हिमालय, नेपाल, सिकिम, बरमा, आसाम, सीलोन और मलाया।

वानस्पतिक विवरण—

यह झाडीनुमा वृक्ष है। इसकी शाखाओं पर पीला रुआं रहता है। इन पर छोटे कांटे भी रहते हैं। पत्ते लम्बाई चौडाई में बराबर होते हैं। ये ऊपर के बाजू हरे रंग के होते हैं और पीछे के बाजू मुलायम पीले मखमली होते हैं। पीछे के बाजू की खास नसें कंएंदार होती हैं। इसके फूलों की पंखडियाँ सफेद होती हैं। फल गोल रहता है।

गुण—

रम्फीयस के मत के अनुसार मलायन लोग इस वस्तु को रात के समय बच्चों के मूत्र आ जाने की व्याधि में उपयोगी मानते हैं। इसके पत्ते ऋतुश्राव नियामक और भ्रूण हत्याकारक माने जाते हैं।

लारियूनियन में इसके पत्ते संकोचक समझे जाते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार ये ऋतुश्राव नियामक, संकोचक और भ्रूण हत्याकारक हैं।

कटहल

नाम

संस्कृत—पनस, कण्टकी फल, पणस, अनिभृहत फल इत्यादि। हिन्दी—कटहर, कटहल, पणस। गुजराती—पणस। मराठी—फणस। बंगाली—काटोल। तेलगू—पणसचट्टू। तामील—वला। लेटिन—Artocarpus Integrifolia. (आरटो कारपस ईन्टेग्रिफोलिया)

वर्णन—

यह भारतवर्ष के अन्दर एक प्रसिद्ध और बड़ा झाड़ होता है। इसका वृक्ष चालीस से पचास फूट तक ऊँचा होता है। इसका पिंड छोटा और रूखा होता है। इसकी छाल बहुत मोटी होती है जिस पर गहरी दरारें होती हैं। इसकी डालियों के रुएँ सख्त होते हैं। इसके पत्ते ऊपर से चिकने और नीचे से खुरदरे होते हैं। इसके फूल नहीं आते हैं। इसका फल डालियों पर नहीं लगता बल्कि गूलर की तरह लकड़ी को फोड़ कर निकलता है। इसके फल के ऊपर सख्त रोयें होते हैं। इसके फल की लम्बाई गज भर तक होती है। इसका वजन बीस सेर तक होता है। इसके एक प्रकार का गोंद लगता है, जो पानी में गल जाता है। इसकी लकड़ी के बूरे को औटाने से पीला रंग निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल काबिज, कसैला, त्रिदोष कारी, बल वर्द्धक और भारी होता है। इसका पका फल शीतल, स्निग्ध, तृप्ति कारक, कामोद्दीपक, मांसवर्द्धक तथा वात, कुष्ट और व्रण में उपयोगी है। इसके बीज मीठे, मुत्रल, कामोद्दीपक और कब्जियत करने वाले होते हैं। इसके फूल भारी, कड़वे और मुख को साफ करने वाले होते हैं।

यूनानी मत— यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। किसी-किसी के मत से दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह औषधि कामोद्दीपक, पुरुषार्थ पैदा करने वाली, उत्तेजक और वीर्य स्तम्भक है। वीर्य स्तम्भन में यह अपना बहुत असर बतलाती है। यह खून को दूषित करने वाली है। इसके नये पत्ते फोड़ों और घावों को दुखाने के लिये सेकने के काम में लिये जाते हैं। साप के काटे हुए को कटहल खिलाने से विष की शान्ति होती है।

कटहल के ऊपर पान का खाना फौरन जहरीला असर पैदा करता है। इसलिये कटहल को खाकर पान को भूलकर भी नहीं खाना चाहिये। इस प्रकार से पैदा हुआ जहरीला असर ताजे मक्खन के खाने से अच्छा होता है।

कटहल के अजीर्ण को मिटाने के लिये अगर केले खा लिये जायें तो अजीर्ण फौरन मिट जाता है।

कटहल के फूल को पानी में पीस कर पीने से हैजे की बीमारी में लाभ होता है।

जड़ में से पैदा हुआ कटहल बदन को पुष्ट करता है, वादी और पित्त को दूर करता है। दिल को ताकत देता है। रूह को खुश रखता है। दस्त साफ लाता है। बलगम और पेट का मैल साफ करता है और उस बुखार को दूर करता है जिसको आते हुए छः महिने गुजर गये हों।

इस वृक्ष का रस ग्रन्थियों की सूजन पर और अन्य फोड़ों के ऊपर मवाद पैदा करने के लिये लगाया जाता है। इसकी गठाने यदि कमर के ऊपर बाधी जाय तो जलावुंद को दूर कर देती हैं। इसके छोटे पत्ते चर्म के रोगों में काम में लिये जाते हैं तथा इसकी जड़ रक्तातिसार में उपयोगी मानी जाती है। इसके पत्ते सर्प विष को दूर करने वाले माने जाते हैं मगर केस और मस्कर के मतानुसार सर्प और बिच्छू के विष में यह बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते चर्म रोगों में उपयोगी हैं। इसकी जड़ रक्तातिसार में लाभ दायक है। इसका रस ग्रन्थियों की सूजन और सर्प दंश में लाभ दायक है। इसमें मोरिन (Morin) और (Cyanomaclurin) साइनो मेक्ल्युरिन नामक तत्व पाये जाते हैं।

कंटाई

नाम—

संस्कृत—विकंकत, श्रुवावृक्ष, ग्रंथिल, व्याघ्रपात। हिन्दी—कटाई, कंडई, कंजु, काक भानवेर, विलगरा। बंगाली—बोचफल, कटई, बिजा। गुजराती—कनकोद, बहेकल। मराठी—कनबाबची, गुलघोंटी। तेलगू—मुलुवेलाम। द्राविड़ी—वल्लवेलम। कर्नाटकी—मुलुब्याल। लेटिन—Flacourtia Rawontchi

वर्णन—

यह औषधि हिमालय में चार हजार फीट की ऊंचाई तक और दक्षिण में तीन हजार फीट की ऊंचाई तक तथा पश्चिमी घाट और गंगा के मैदान मे पैदा होती है। यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पिंड और शाखाओं पर कांटे होते है। शाखाएं फैली हुई और कांटेदार होती हैं। इसके पिंड की छाल हलकी धुंधली, कुछ काली और कुछ खरदरी होती है। इसके पत्ते अण्डाकार और तीखी नोक वाले होते हैं। वे नीचे से रूएंदार और ऊपर से चिकने होते हैं। इसके फूल हरापन लिये हुए पीले रंग के होते हैं। इसका फल आधा इंच लम्बा, लाल या गहरे बैंगनी रंग का होता है। उसमे ८ से लेकर १६ तक बीज दो तह में होते हैं। पौष और माह में इसके पत्ते गिर जाते हैं और फागुन में नवीन पत्ते निकल आते है। छोटे पत्ते पहले लाल रंग के होते हैं और पीछे हरे रंग के हो जाते हैं। यह वृक्ष फागुन में फूलता है और इसके फल वैशाख ज्येष्ठ में पकते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

*आयुर्वेदिक मत—*आयुर्वेदिक मत से यह अत्यन्त उष्ण, कसैला, दीपन, पाचन, पचने में हलका और विपाक में मधुर होता है।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसका फल मृदु, अग्निदीपक और पाचक होता है। प्लीहा और तिल्ली की बढ़ती पर इसका विशेष उपयोग किया जाता है। दक्षिण में प्रसूति के पश्चात् इसके बीज हलदी के साथ पीसकर प्रसूता के शरीर पर मालिश करते हैं, जिससे कि शरीर पर ठंडी हवा लगकर आमवात की पीड़ा न हो। इसका गोंद दूसरी वस्तुओं के साथ विशूचिका रोग में दिया जाता है।

केम्प बेल के मतानुसार छोटा नागपुर में इसकी छाल को रिएस की छाल के साथ पीसकर पार्यायिक ज्वरों में एकाध दिन के अन्तर पर दी जाती है।

मेडागारकर में इसका फल मूत्रल समझा जाता है और इसकी जड़ गुरदे के प्रदाह से होने वाले उदर शूल में दी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पीलिया और तिल्ली बढ़ जाने के रोगों में दी जाती है।

कटूल

वर्णन—कुछ लोग बांझ ककोड़े की जड़ को कटूल कहते है और कुछ लोग अश्नान नामक वनस्पति को कटूल कहते हैं। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इलाजुल गुर्बा में लिखा है कि अश्नान (कटूल) आतशक या गर्मी की बीमारी में बहुत फायदे मन्द है। कटूल को कूट छानकर पहिले दिन एक माशा दूसरे दिन दो माशा इस तरह हर रोज एक २ माशा बढ़ाते हुए ७ दिन तक खाना चाहिये और फिर एक एक माशा घटाते हुए १४ में बन्द कर देना चाहिये। जब तक दवा चले खटाई का परहेज़ रखना चाहिये। बीच में कभी २ इससे उल्टी और दस्त होगी। मगर गरमी की बीमारी में बड़ा लाभ होगा।

'खजाइनुल अदविया के मतानुसार कटूल को कूट छान कर पानी में मिलाकर सांप के काटे हुए को पिलाने से वमन होकर जहर निकल जाता है।

कंटाला

नाम—

हिन्दी—कण्टाला, रामकांटा, हाथीरेगार, वन्सकियोरा। संस्कृत—कण्टाला, काला कंटाला। मराठी—विलायती कोरकन्द। गजराती—जंगली कुनोरा। बंगाली—वन्स कियोरा, विलायतीपात, जगली अनानास। अरबी—सिउबारा। लेटिन—Agave Americana. (अगेव्ह अमेरिकन)

वर्णन—

यह वनस्पति विशेषकर अमेरिका में पैदा होती है। भारतवर्ष के अन्दर भी यह पाई जाती है। इसके पत्ते बहुत मोटे होते हैं। इनके ऊपर पीला रंग होता है। पत्तों की बाजू उभरी हुई रहती है। इसके कांटे भी होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

इसकी जड़ें मूत्रल, स्वेद कारक (पसीना लानेवाली) और उपदंशनाशक हैं। अमेरिका के डाक्टर इसको धातु परिवर्तक मानते हैं। यह खास करके उपदंश, गण्डमाला और नासूर में अधिक उपयोगी है। इसी प्रकार यह विरेचक, मूत्रल और ऋतुस्रावनियामक भी माना जाता है। इसके दलदार पत्तों को पुल्टिस के उपयोग में लिया जाता है और इसका ताजा रस रगड़न और शस्त्र के जखम पर लगाया जाता है।

इसमें से प्राप्त होने वाला गोंद मेक्सिको में दांत की पीडा दूर करने के काम में लिया जाता है।

इस पौधे की खेती मेक्सिको और दक्षिणी अफ्रीका में बहुत बड़े पैमाने से की जाती है। मेक्सिको में इसकी टहनियों के रस से एक प्रकार का नशीला पदार्थ भी तैयार किया जाता है।

इसके पत्तों को गरम करके पीसकर आमवात की बीमारी में काम में लेते हैं। इसके पत्तों का शीत निर्यास विरेचक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है (इं० मे० मॉ०)

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ें मूत्रल, कृमिनाशक और उपदन्श रोग प्रतिरोधक है। इसका रस विरेचक और ऋतुस्रावनियामक है। यह खुजली में भी उपयोगी है।

कंटिआरि

नाम—

हिन्दी—कंटिआरि, करार, खारसा, पोली, पोलियन। लेटिन—Carthamus Oxyacantha. (कार्थेमस ओक्सिकेंथा)

उत्पत्तिस्थान—

पंजाब, बिलोचिस्थान, अफगानिस्थान और पश्चिम में काकेशस तक।

वानस्पतिक विवरण—

यह सफेद शाखाओं वाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते बरछी आकार के रहते हैं। इसके फूल नारंगी और पीले रंग के रहते हैं। इसकी मंजरी गोल और मोटी होती हैं।

गुण—

स्टेवर्ट के मतानुसार इसके बीजों से खींचा हुआ तेल पंजाब में उपचार के उपयोग में लिया जाता है।

कटेरी बड़ी

नाम—

संस्कृत—बृहती, सिंहीका, क्रान्ता, वार्ताकी इत्यादि। हिन्दी—बड़ी कटाई, बरहन्टा उभीभोरींगणी। बङ्गाली—व्याकुड, बृहती। मराठी—थोर डोरली। गुजराती—ऊभी मोरींगणी। मारवाड़ी—ऊभी-कटाली। फारसी—उस्तरगार, बादञ्जान जङ्गली। अरबी—बालुंजान जङ्गली। लेटिन—Solanum Indicom (सोलेनम इण्डीकम)

वर्णन—

बड़ी कटाई का पौधा गज भर का होता है। इसके पत्ते बेंगन के समान होते हैं इसलिये इसको बेंगन कटेरी भी कहते हैं। इसका फल आंवले के बराबर होता है। कच्ची हालत में उस पर काले और हरे धब्बे रहते हैं। पकने पर यह बहुत पीला हो जाता है। इसका जायका कड़वा होता है। इसकी शाखाओं और पत्तों पर बड़े तेज कांटे होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी हिस्सों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से बड़ी कटाई मल रोधक, हृदय को हितकारी, पाचक,

कफ-वात नाशक, कडवी तथा मुख की अरुचि को नष्ट करने वाली है। यह कुष्ट, ज्वर, श्वास, शूल, खासी और मन्दाग्नि को दूर करने वाली है। इसके फल कडवे, तीखे, हलके तथा कुष्ट, कृमि, कफ और वात नाशक हैं।

इसकी सफेद जाति जिसको श्वेत बृहतिका कहते हैं अञ्जन के योग से अनेक प्रकार के नेत्र रोगों को नाश करने वाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। कुछ लोग तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क मानते हैं। यह वनस्पति पेट में कब्ज पैदा करती है। दिल को कूवत देती है। भूख बढ़ाती है कफ और खून के फिसाद को दूर करती है। पेट और मलद्वार के कीडों को नष्ट करती है। खासी, दमा, सीने के दर्द और कुष्ट रोग में भी यह मुफीद है। पेट का दर्द, गुड गुडाहट और वायुगोला में भी यह लाभदायक है। इसकी धूनी बवासीर के लिये बेनजीर है।

ऐसे आदमियों के लिये जो अपनी मर्दानगी को खो चुके हैं अगर इसकी ताजा जड की छाल साढ़े तीन तोला लेकर गाय के दूध में जोश देकर पिलाई जाय तो थोड़े ही दिनों में मर्दानगी फिर से हासिल हो जाती है। लेकिन ऐसे टाइम में खटाई और बादी की चीजों से बिलकुल परहेज करना चाहिये।

इसके फल को काट कर उसके टुकड़ों में नमक मिला कर खाने से छाती से कफ निकल कर पुरानी खासी मिट जाती है। इसको जड का शीरा पीने से दमे की तकलीफ कुछ ही दिनों में जाती रहती है।

ऐसी औरतो के लिये जिनका गर्भ हमेशा गिर जाया करता है या जिनके पेट में बचा मर जाया करता है, उनको पीपल और बडी कटेरी की जड को पीस कर भैंस के दूध के साथ देने से सब शिकायतें मिट जाती है।

सूजाक के रोग में इसका साढ़े बारह तोला काढ़ा दिन मे दो बार पिलाने से लाभ होता है।

इसकी जड अन्तः प्रयोग में लिये जाने पर तीव्र उत्तेजना पैदा करती है। दात के दर्द में यह वनस्पति लगाने और धूनी देने के काम में ली जाती है। प्रसूति के कष्ट में भी वाह्य उपचार की तरह इसका उपयोग होता है। यह औषधि मूत्र-निस्सारक और कफ निस्सारक भी है, अत मूत्राघात सम्बन्धी रोगों में तथा कफ से सम्बन्ध रखने वाली खासी दमा इत्यादि बिमारियों में यह बडी उपयोगी है।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, योग रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थकारों ने इस औषधि को साप बिच्छू के जहर में उपयोगी माना है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इस औषधि का प्रत्येक अङ्ग साप और बिच्छू के जहर मे निरुपयोगी है।

———

कटेरी छोटी

नाम—

संस्कृत—कण्टकारी, निदग्धिका, क्षुद्रा, व्याघ्रि। हिन्दी—कटेरी, भटकटैया; रींगणीं, लघुकंटाई। मराठी—रींगणीं, भुई रींगणीं, लघु रींगणीं। गुजराती—भोंयरींगणीं, बैठी भोंय रींगणीं। बङ्गाली—कण्टकारी। तेलगू—रेवटी मुलगा, वाकुड़ू। उर्दू—कटोला। अरबी—बदन जांकरे। लेटिन—Solanum Xanthocarpum (सोलेनम झेन्थोकारपम)

वर्णन—

कटेरी के क्षुप छत्ते की तरह जमीन पर फैले हुए रहते हैं। यह क्षुप कांटेदार होता है। इसके कांटे पीले, मुलायम और चमकीले होते हैं। इसकी शाखाएँ बहुत आड़ी-टेढ़ी होती हैं। इसके पत्ते लम्बे गोल, कटी हुई किनारों के कांटेदार होते हैं। इसका फूल बेंगनी रंग का होता है जिसमें पीले रंग की केशर रहती है। इसके फल कच्ची हालत में सफेद और पकने पर पीले हो जाते हैं। इसके बीज मुलायम रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के अन्दर यह बनस्पति सारक, कड़वी, चरपरी, अग्निदीपक, हलकी, रूखी, गरम, पाचक तथा खांसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, और हृदय रोग को नाश करने वाली मानी जाती है। इसके फल कड़वे, चरपरे, भेदक, पित्त कारक, हृदय को हितकारी, अग्नि दीपक, हलके, वात, कफ नाशक और श्वास, ज्वर, कृमि, प्रमेह और का नाश करने वाले माने जाते हैं।

इस बनस्पति की प्रसिद्धि कफ को नाश करने के सम्बन्ध में बहुत अधिक है। इसीसे कफ, ज्वर, दमा, छाती का दर्द इत्यादि रोगों में इसका विशेष उपयोग होता है। जब छाती में कफ भरा हुआ रहता है तब इसका काढ़ा देने से वह निकल जाता है। इसके फलों के काढ़े में दो माशा सेकी हुई हींग और उतना ही सेंधा नमक डाल कर पीने से भयंकर दमा भी बैठ जाता है। इसी प्रकार इसमें मूत्रल और ज्वर नाशक गुण भी होता है और इसी कारण जलोदर, तिल्ली और लीवर की वृद्धि, सुजाक, मूत्राघात और मूत्राशय की पथरी पर भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में खुश्क और गरम है। किसी-किसी के मत से यह तीसरे दर्जे में खुश्क और गरम है। इसके प्रयोग से कफ, खांसी, दमा और सीने के मर्ज दूर होते हैं। इसके फल में भी वही गुण हैं जो इसकी जड़ में हैं। यह मूत्रक, कोढ़, कब्ज और मसाने की पथरी को दूर करती है तथा पेशाब को साफ लाती है।

मन्दाग्नि और पित्त विकार को नष्ट करने लिये यह औषधि बड़ी प्रभावशाली है। इसका तरीका यह है कि इसके फलों से बीज निकाल कर इन बीजों को सेंधा निमक डाले हुए मट्ठे में औटा कर सूर्य

की धूप में सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक रोज रात को उनको मट्ठे में भिगो कर दिन में सुखा लिया करें। इसके पश्चात् इन बीजों को घी में तल कर खाने से पेट का दर्द, मन्दाग्नि और पित्त के विकार नष्ट होते हैं।

डाढ़ दुखने के अन्दर भी यह औषधि बड़ा लाभ बतलाती है। जब दांत की वेदना बहुत अधिक हो गई हो और अफीम, दालचीनी का तेल, कपूर, हींग तथा इसी प्रकार की औषधियों से लाभ होता हुआ नहीं दिखाई देता हो। ऐसे समय में केवल एक ही बार कटेरी के बीजों का धुँआ लेने से फौरन आराम होता है। इसका धुँआ लेने की तरकीब इस प्रकार है। एक बर्तन में आग भर कर उसमें भोरींगणी के बीज डाल कर उस पर एक ऐसा बड़ा औंधा ढक देना चाहिये जिसके बीच में एक छेद पड़ा हुआ हो। इस छेद में अरण्डी की नली या और कोई दूसरी तरह की नली डाल कर उस नली का मुँह जिस दांत या डाढ़ में दर्द हो उस पर लगा देना चाहिये जिससे वह धुँआ वहां पहुँच जायगा। इस धुँएँ के पहुँचते ही दांत का दर्द आराम होने लगेगा।

इसी प्रकार इसकी जड़, छाल पत्ते, और फल को लेकर उनका काढ़ा बना कर कुल्ले करने से दांतों के सब तरह के दर्द आराम होते हैं।

इस बनस्पति की डण्डी, फूल और फल सभी कड़वे और पेट के आफरे को दूर करने वाले हैं। इसे पैरों की जलन में जिसमें कि छाले भी रहते हैं उपयोग में लिया जाता है। इसके जलते हुए बीजों का बफारा दांतों की पीडा में उपयोगी माना गया है। यह एक लार पैदा करने वाला पदार्थ है। इससे विश्वास होता है कि यह एक उत्तम लाभदायक औषधि है।

बङ्गाल के अन्दर यह औषधि जलोदर रोग में मूत्रल वस्तु की तरह काम में ली जाती है।

पंजाब के अन्दर इसके पत्तों का रस काली मिर्च के साथ आमवात की बीमारी में दिया जाता है।

बी० डी० बसु के मतानुसार इस वृक्ष का काढ़ा सुजाक की बीमारी में लाभदायक है। इसकी फली और फूल आंखों से पानी जाने की बीमारी में फायदा पहुँचाते हैं।

डायमाक के मतानुसार एन्सली ने दक्षिण भारत में इस औषधि का उपयोग कफ निस्सारक औषधि की तरह पाया है। इसके जलते हुए बीजों के धुँएँ के बफारे से दांतों की पीडा बन्द हो जाती है। इन्हें तमाखू की तरह चिलम में रख कर पिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि मूत्रल, कफ निस्सारक और ज्वर नाशक मानी जाती है। इसकी जड़ और गुड़वेल इन दोनों का काढ़ा ज्वर और खांसी में लाभदायक है। यह वस्तु श्वास, पुराने ज्वर और प्रसव पीडा में भी लाभदायक है।

उपयोग—

जुकाम—मौसम के बदलने पर हवा और पानी की खराबी से जो जुकाम और बुखार हो जाया करता है उसको दूर करने के लिये पित्तपापड़ा, गिलोय और छोटी कटेरी का काढ़ा पिलाने से बहुत लाभ होता है।

सुजाक—कटेरी को रात भर पानी में भिगोकर सबेरे मल छानकर मिश्री मिलाकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

दांत का दर्द—कटेरी की जड़, छाल, पत्ते और फल लेकर उनको पानी में जोश देकर उस पानी से कुल्ले करने से दांतो का दर्द दूर होता है।

मिर्गी—कटेरी के दूध को नाक में टपकाने से मिर्गी में लाभ होता है।

नेत्र रोग—कटेरी के पत्तों को पीस कर उनकी लुग्दी आंखो पर बाधने से आंखों का दर्द दूर होता है।

नकसीर—इसको पानी के साथ पीसकर सिर की चान्द पर लगाने से या पत्तों या जड़ को पीसकर उनके रस को नाक में टपकाने से नकसीर बन्द हो जाती है।

बालकों की खांसी—कटेरी के फूलों के केशर के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से बालकों की पाचो प्रकार की खासी मिटती है।

मस्तक शूल—इसके फलों के रस को ललाट पर लेप करने से मस्तक शूल बन्द होती है।

पेशाब की रुकावट—कटेरी के स्वरस को छाछ में मिलाकर कपड़े में छानकर पिलाने से पेशाब की रुकावट फौरन मिट जाती है।

मन्दाग्नि—कटेरी और गिलोय का स्वरस तीन २ पाव लेकर उसमें सेर भर घी डालकर हलकी आंच से पकावें जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छानलें इस घी को एक तोले की मात्रा में सेवन करने से मन्दाग्नि और बात की खासी मिटती है।

धुंध और जाला—इसकी जड़ को नींबू के रस में घिसकर आख में लगाने से आख का धुंध और जाला मिटता है।

मिर्गी—इसकी जड़ और भाग के बीज दोनों को बराबर लेकर बालक के मूत्र में पीसकर नाक में टपकाने से मिर्गी में लाभ होता है।

ध्वज भग—इसके फल के बीज निकाल कर उनको पीसकर कामेन्द्रिय पर मालिश करके ऊपर अरण्डी के पत्तों को बांधने से ध्वज भग और नपुसकता मिटती है।

स्तनों का ढीलापन—कटेरी की जड़, अनार की जड़ और कन्धेरी को पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तन कठोर हो जाते हैं।

हिस्टीरिया—इसके रस को नाक में टपकाने से हिस्टीरिया की बेहोशी जाती रहती है।

बनावटें—

कण्टकारी अवलेह—कटेरी की जड़ दस सेर लेकर टुकड़े करके कूटकर सवा मन पानी में उबालना चाहिये। जब साढ़े बारह सेर पानी बाकी रह जाय तब उसे उतारकर छान लेना चाहिये और फिर उसे हलकी आंच पर चढ़ाना चाहिये। जब पांच सेर पानी रह जाय तब उसमें दो सेर शक्कर और चौंसठ

तोला घी डालकर मन्दाग्नि पर चढ़ाना चाहिये। जब उसकी चासनी चाटने के समान हो जाय तब उसे उतार कर ठंडा करना चाहिये। उसके बाद उसमें गिलोय, चित्रक, चव्य, नागर मोथा, काकडा सींगी, पीपर, कालीमिर्च, सोंठ, जवासा, भारंगी की जड, रासना इन सब औषधियों का चूर्ण चार २ तोला डालना चाहिये। दूसरे दिन चौंसठ तोला शहद, सोलह तोला वंशलोचन और सोलह तोला पीपर का चूर्ण उसमें मिला देना चाहिये। इस अवलेह को छे माशे से डेढ तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन शाम सवेरे चाटने से श्वास, खांसी और हिचकी की बीमारी में बडा लाभ होता है।

भगु हरीतिकी—कटेरी का पचाग (जड, फूल, फल, पत्ते और बीज) चार सौ तोला लेकर उसको साढ़े बारह सेर पानी में उबालना चाहिये, जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसे उतारकर छानकर उसमें पांच सेर गुड़ और सौ बढ़िया मोटी हरडों का चूर्ण डालकर पकाना चाहिये। जब चाटने योग्य गाढ़ी चासनी हो जाय तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर इन तीनों चीजों का चूर्ण चार चार रुपये भर तथा तज, तमाल पत्र और इलायची का चूर्ण नौ नौ माशे डालना चाहिये। दूसरे दिन इसमें चौबीस तोला शहद मिलाकर ढक देना चाहिये। इस अवलेह को भी छे माशे से दो तोले तक की मात्रा में सवेरे शाम लेने से तमाम तरह की खासी और दमे के दर्द में बहुत ही अच्छा असर होता है। इसके अतिरिक्त जठराग्नि की कमजोरी, कामला, लीवर और तिल्ली की वृद्धि, वायुगोला, हिचकी, बवासीर, आफरा, मूत्राघात और सुजाक में भी इसके सेवन से बडा लाभ होता है।

कड़वी

लेटिन—Swertia Paniewlata.

उत्पति स्थान—

पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्तों में ५००० फीट से ८००० फीट की ऊंचाई तक और काश्मीर से नेपाल तक।

वानस्पतिक विवरण—इसका प्रकाण्ड ०.३ से ०.६ तक ऊंचा रहता है। इसकी शाखाएं फैली हुई रहती हैं। इसके पत्ते बरछी नुमा रहते हैं। पत्ते की लम्बाई ४.८ सी० एम० और चौड़ाई ८ मि० मीटर रहती है। इसकी ग्रंथि गोल और खुली हुई रहती है।

गुण—यह वनस्पति असली चिरायते के प्रतिनिधि स्वरूप काम में ली जाती है।

डॉक्टर चोपरा के मत से भी यह असली चिरायते का प्रतिनिधि है।

कड़वी कोठ

नाम—

संस्कृत—गरुडफल, कटुकपित्थ। हिन्दी—कड़वी कोठ। बम्बई—कडूकवठ, गौटि, कावा। कनाड़ी—भुलही, गरुड फल। दक्षिण—जङ्गली बादाम। मराठी—कडूकवठ, कंटेल, खप्टेल। तामील—मरवाई, निरढी मुट्ट।

वर्णन—

कडवी कोठ के वृक्ष दक्षिण में कोकण, मलाबार, गोवा, ट्रावनकोर, इत्यादि प्रान्तों के जंगलों में बहुत होते हैं। यह वनस्पति कुष्ट रोग के सम्बन्ध में सारे ससार में प्रसिद्धि पाई हुई चालमुगरा नामक वनस्पति ही की एक जाति है। कर्नल चोपरा ने अपने ग्रन्थ में चालमुगरा के साथ ही इस वनस्पति का भी वर्णन किया है। मगर इन दोनों जडियों में किंचित भेद होने से इन दोनों का वर्णन इस ग्रंथ में अलग अलग किया जावेगा। कडवी कोठ के वृक्ष के पत्ते सीताफल के पत्तों की तरह पर उनसे कुछ लवे, सुहावने और तेजस्वी होते हैं। फूल सफेद रग के होते हैं जो गुच्छे में आते हैं। इसके फल कवीट के फलों की तरह कठोर होते हैं और उनके अन्दर छोटी बदाम के समान, लवे और छोटे बीज निकलते हैं। ये बीज गोवा में कोष्टो के नाम से बिकते हैं। इन बीजों का तेल खरटेल ऑइल के नाम से प्रसिद्ध है जो चर्म रोगों की एक महौषधि है।

गुण, दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से कडवी कोठ का तेल कृमिनाशक, व्रणशोधक, वेदना नाशक और रक्त शोधक है।

इसके बीज पश्चिमी समुद्र तट पर बहुत समय से कुष्ट और पुराने चर्म रोग, चक्षु रोग तथा घाव की सफाई पर घरेलू औषधि की तौर पर काम में लिये जाते हैं। इन बीजों का तेल जिसे खरटेल ऑइल कहते हैं बिस्फोटक के ऊपर लाभदायक होता है। सिर की गंज में भी इस तेल को कुछ चूने के पानी के साथ मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। कोकण में घोड़ों के बरसाती नामक रोग को दूर करने के लिये इसकी बडी प्रशंसा है।

सर "लिओनार्ड राबर्ट्स" नामके प्रसिद्ध विद्वान ने लेप्रसी अथवा कोढ़ के ऊपर इस औषधि को विशेष रुप से लाभदायक पाया। इसी से आज-कल यह तेल अलेपोलमुग्राम वगैरा इंजेक्शनों के रुप में सफलता पूर्वक उपयोग किया जाता है। साधारण तौर से इस भयङ्कर रोग में यह तेल १० बूँद की मात्रा में भोजन किये के पश्चात् घी अथवा मक्खन के साथ लिया जाता है। इसी प्रकार बाह्य उपचार में शरीर पर इसका मालिश भी किया जाता है। इस प्रकार इसका सेवन करने से तीन महिने में फायदा होने लगता है। यह औषधि चालू हो उस समय शहर से बाहर खुली हवा में रहना चाहिये तथा मासाहार को छोड़ देना चाहिये।

खसरा, खुजली, जलन, विस्फोटक आदि रोगों में इसका कड़वा तेल, गन्धक, कपूर और नींबू के रस के साथ खरल करके उपयोग किया जाता है।

इसका तेल चाल मोगरे के तेल से मिलता जुलता है। दीखने में और रासायनिक विश्लेषणों में भी समान है। चाल मुगरा तेल का विशेष वर्णन आगे के भागों में यथास्थान किया जायगा।

कड़वी तूंबी

नाम—

संस्कृत—कटतूम्बी, इक्ष्वाकु, क्षत्रियवीरा, तिक्तबीजा, पिण्डफला। हिन्दी—कड़वी तूम्बी, गुजराती—कड़वी तूंबडी। मराठी—कडूभोंपळा। बंगाली—तितलाउ। फारसी—कदूतल्ख। तेलगू—चेति आनव। कर्नाटकी—कई सोरे। अंगरेजी—Bitter gourd। लेटिन—L·genaria Vulgaris Cucurbita Lagenaria (Roxburg)।

वर्णन—

कड़वी तूंबी की लताएँ बहुत बड़ी और लम्बी होती हैं। लौकी की बेल की तरह ही इसकी बेल चलती है, इसीलिये इसको कडवी आल भी कहते हैं। इसका फल बडा और बोतल की शकल का होता है। यह वस्तु सारे भारतवर्ष में पाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— राज निघण्टु के मत से कडवी तुम्बी कटु, तीक्ष्ण, (वान्ति जनक) वमन कारक, श्वास को दूर करने वाली, वातनाशक, खांसी को नष्ट करने वाली, शोधक तथा सूजन, व्रण, शूल और विष को नष्ट करने वाली है।

भाव प्रकाश के मतानुसार कडवी तूम्बी शीतल, हृदय को लाभ दायक, कडवी और पित्त, खांसी, विष और वात पित्त ज्वर को दूर करती है।

इसके पत्ते पाक में मधुर, मूत्र निस्सारक, पित्त नाशक, श्वेत प्रदर और योनि तथा गर्भाशय सम्बन्धी तकलीफों में लाभ दायक हैं। कान के दर्द में भी यह फायदा पहुँचाते हैं।

यूनानी मत— यूनानी मत से इसकी तबियत गरम और खुश्क है। यह किसी कदर जहरीली भी है। यह अत्यन्त वमन कारक होती है। इसके द्वारा वमन कराने से दमे और खांसी में बड़ा लाभ होता है। क्योंकि इसके वमन से फेफडे को कुछ तकलीफ नहीं होती। इस को दांतों पर मलने से दांत मजबूत होते हैं।

<u>*पीलिया रोग*</u>—यूनानी हकीम इसको पीलिया रोग में बहुत लाभदायक मानते हैं। सूखी तूंबी को तोड़ने से उसके भीतर मकड़ी के जाले की तरह सफेद परदा होता है इस परदे को निकालकर बारीक पीसकर नाक के जरिये सूँघाने से नाक से पीले रंग का पानी निकलकर पीलिया रोग मिट जाता है। अगर इसका तर और ताजा फल मिल जाय तो उसको चीरकर रात को ओस के अन्दर रख दें। उस पर जो ओस की बूंदें जमा हों उनको लेकर पीलिये के रोगी के नाक में टपकावें और आंख में आंज दें। इससे पीलिये में लाभ होता है।

कडवी तूम्बी को गुड और कांजी के साथ पीसकर लेप करने से बवासीर में लाभ होता है। इस तूंबी में ७ दिन तक पानी भरा रखकर उस पानी को पीने से कण्ठमाला में लाभ होता है। इसके

बीजों को पीसकर लेप करने से लकवे में लाभ होता है। इसके पत्ते और लोघ को पीसकर लेप करने से जखम भर जाता है।

गोल्ड कोस्ट में इसके पत्तों को पीसकर बस्तीक्रिया में प्रयोग करते हैं। गायना में इसका रस तेज विरेचक माना जाता है। इसके बीज जलोदर रोग में भी दिये जाते हैं। कृमि विशेष के उत्पन्न होने पर उन्हे नाश करने के लिये भी इनका उपयोग होता है।

जलोदर रोग और कड़वी तूंबी—जलोदर रोग के अन्दर भी यह वनस्पति बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। इसका एक पका हुआ ताजा फल लेकर उसके सिर पर एक बडी डिग्गी लगाकर उसमें एक तोला लोह भस्म, १ तोला मंडूर भस्म, १ तोला बडी हर्र का चूर्ण, १ तोला सोंठ का चूर्ण सब मिलाकर भर देना चाहिए और उसका मुंह बन्द करके दो महिने तक पडी रखना चाहिये। जब तूंबी सूख जाय तब उसको फोडकर उसके बीजों को दूर कर केवल उसके अन्दर का गर्भ और उसमें भरी हुई औषधियों को अच्छी तरह खरल करके उसमें छोटी पीपर, इन्द्रजौ, बायबिडंग, अजवायन, और भूनी हुई हींग, इन सबका आधा २ तोला चूर्ण मिलाकर घी गवार के रस में खरल करना चाहिये। उसके बाद इसकी छः-छः रत्ती की गोलिया बना लेना चाहिये। रोगी की प्रकृति का विचार करके इसमें से एक से लेकर दो गोली तक सबेरे के टाइम में देकर उस पर ४ तोला गौ मूत्र पिला देना चाहिये।

जङ्गलनी जडी बूंटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि जब तक इस औषधि का सेवन चालू रहे तब तक रोगी को पथ्य में केवल दूध या स्वल्प मात्रा में भात देना चाहिये। नमक और पानी बिलकुल छोड देना चाहिये। पानी के बिना अगर बिलकुल न रहा जाय तो बहुत थोडी मात्रा में उसमें कुछ सोडा मिलाकर देना चाहिये। उक्त ग्रंथकार का कथन है कि इस प्रयोग को विधिसर सेवन करने से जलोदर, पांडु, कामला, इत्यादि रोग बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इस वनस्पति में दो और चमत्कारिक गुण पाये जाते हैं

(१) जिस स्त्री के प्रसव के बाद ओल नही गिरती हो उसको कडवी तूंबी, सांप की कांचरी, कडवी घिलोडी और सरसों का तेल इन सब चीजों को मिलाकर इसकी धूनी देने से वह तुरन्त गिर जाती है।

(२) इसी प्रकार मेंढ की ऊन को जलाकर उसकी राख १ तोला, कडवी तूंबी के गर्भ का रस सौलह तोला और सरसों का तेल ४ तोला इन सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर औटा कर, जब सब चीज जलकर सिर्फ तेल मात्र रह जाय तब उतार कर छान लें। उस तेल को रुई में भिगोकर दुष्ट घाव (व्रण) या नासूर में भरने से वह आराम हो जाता है।

चरक के मतानुसार इसका फल बिच्छू के डंक पर भी उपयोगी है मगर केस और मस्कर के मतानुसार बिच्छू के विष में यह निरुपयोगी है।

चोपरा के मतानुसार यह विरेचक है। यह वृश्चिक दंश में प्रयोग में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का रस होता हैं। जिसे "सेपॉनिन" कहते हैं। इसमें मेदा वर्धक तेल भी रहता है।

—※—

कड़वी तोरई

नाम

संस्कृत - तिक्त कोशातिकी, कृतछिद्रा, जालिनी, कटुकोष्ठकि, इत्यादि। हिन्दी—कडवी तोरई, जंगली तोरई, झिमनी। बंगाली—झिंगा। मराठी—कडु दोडकी, दीवली, कडु शिवाडी। गुजराती—कडु घिसोडी, कडवा तुरया, तेलगू—चेदुबीरा, सेदुबिरकाई। उर्दू—वन्दल। फारसी—तुरएतल्ख। लेटिन—Luffa Amara (ल्युफा एमेरा)

वर्णन—

कडवी तोरई की लताए बरसात में खेतों के अन्दर बहुत उत्पन्न होती हैं। इसके पत्ते तोरई के पत्ते की तरह होते हैं। श्रावण और भादों के महिने में शाम के टाइम पर जब इसके पीले पीले फूल खिल जाते हैं तब बड़े मनोहर मालूम पडते हैं। इसके फल मीठी तोरई के फल से छोटे अर्थात् तीन से छह इंच तक लम्बे होते हैं और एक से डेढ़ इंच तक मोटे होते हैं। ये कच्ची हालत में हरे रंग के और सूखने पर भूरे रंग के हो जाते हैं। फल के मुँह के ऊपर छोटी डण्डीवाला एक छोटा सा ढक्कन होता है जोकि सूखने पर अपने आप अलग हो जाता है। इस फल की गंध उग्र और स्वाद कडवा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, कुछ कडवी, विरेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और विष निवारक होती है। यह आंतों को ताकत देती है, वादी और कफ को दूर करती है तथा पित्त, पांडुरोग बवासीर, कुष्ठ, सूजन, क्षय जनित ग्रंथिया तथा गर्भाशय और योनि मार्ग की ग्रन्थियों को नष्ट करती है। यह चूहे के विष में भी उपयोगी है। इसका फल मुँह की बदबू को नाश करता है। इसके फल और बीजों को सूंघने से सिर का दर्द और नासिका की पीडा दूर होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ का छिलका गर्म-श्रावक, जल निस्सारक, विरेचक और मूत्रल होता है। यह ज्वर, खांसी और बवासीर में फायदा पहुँचाता है। इसके बीज नष्टार्तव में लाभ दायक हैं। इसका फल बहुत ही तेज, वमन कारक और विरेचक होता है। इसका गूदा कुत्ते के काटने पर या अन्य प्रकार के विषैले जन्तुओं के काटने पर पानी के साथ मिला कर दिया जाता है। इसके कोमल फल को भूँज कर और उसका रस निकाल कर सिर दर्द में कनपटियों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसका सूखा फल पीलिया में सूँघने के काम लिया जाता है।

आधुनिक अन्वेषणों के अन्दर यह औषधि मलेरिया बुखार पर बडी लाभदायक सिद्ध हुई है। कभी-कभी तो क्विनाइन और सिनकोना की अपेक्षा भी मलेरिया के विष को नष्ट करने में यह औषधि अधिक सफल होती हुई देखी गई है। इतना ही नहीं बल्कि मलेरिया के असर से बढ़े हुए तिल्ली, लीवर, कामला, सूजन पाण्डु रोग, और जलोदर इत्यादि भी इसके कुछ दिनों के सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

इन रोगों के लिये इसका उपयोग करने की तरकीब जङ्गलनी जडी बूँटी नामक ग्रन्थ में इस प्रकार लिखी हुई है। कडवी तोरई के एक सूखे हुए फल को लेकर उसकी ऊपर की छाल को दूर करके जो जाली के सरीखा हिस्सा बाकी रहता है, उसके बीज वगैरा साफ करके, उसको पाव भर ठण्डे पानी में एक काच के प्याले में रात भर भिगों देना चाहिये। सवेरे उस पानी को छान कर उसमें से चार रुपये भर पानी पीने से दस्त, उल्टी वगैरह होकर कोठा साफ हो जाता है और कफ, पित्त, विष वगैरह निकल कर पाण्डु, तिल्ली, कामला, कोढ, बवासीर, सूजन, जलोदर, गुल्म, बुखार इत्यादि रोग दूर होते हैं। इसके फल का स्वरस अथवा इसकी जाली से तय्यार किया हुआ पानी नाक के जरिये सुंघाने से नाक बहकर कामले का दर्द नष्ट हो जाता है। अगर एक बार के सुंघाने से अच्छी तरह से दर्द नष्ट नहीं हो तो चार २ दिन के अन्तर से दो-तीन बार इस नस्य का प्रयोग करना चाहिए और भोजन में केवल घी और भात लेना चाहिये। अगर नाक के अधिक बहने से गले या सिर में दर्द होना शुरू हो जाय तो थोडा गाय का घी जरा गरम करके पिलाना या सुंघाना चाहिये।

इस वनस्पति में विष नाशक गुण भी विद्यमान हैं। इसके एक फल को पाच तोले पानी में भिगोकर उस पानी को पिलाने से दस्त और उल्टिया होकर साप, पागल कुत्ता और चूहे का विष नष्ट होता है।

डाक्टर मोहीउद्दीन शरीफ लिखते हैं कि कडवी तोरई का फल उल्टी लाने वाला है परन्तु इसका कौनसा भाग अधिक उपयोगी होता है, इसकी जानकारी लोगों को न होने से वे सारे फल को भिगोकर उस पानी को रोगी को पिला देते हैं। इस प्रकार इस फल को देने से पेट में अत्यन्त काट होती है और पेट की क्रिया अनियमित हो जाती है। अनुभव से मालूम हुआ है कि इसके बीजों का गूदा सबसे अधिक उपयोगी वस्तु है। भारतवर्ष में इसके बीजों की मगज अच्छी से अच्छी उल्टी लाने वाली औषधि है। अंग्रेजी औषधि इपिकाक के बराबर मात्रा में यह औषधि देने से उसीके समान गुण करती है। इसलिये पाच से दस ग्रेन तक की मात्रा मे इसे देने से कफ निकालने का और बीस से तीस ग्रेन तक की मात्रा में इसका चूर्ण देने से उल्टी लाने का काम करती है। इसके बीज का मगज पीस कर पानी में घोलने से एक प्रकार का प्रवाही तैय्यार होता है जिसको मैं बहुत वर्षो से इपिकाक के बदले व्यवहार करता आया हूँ। यह औषधि उल्टी लाने के अतिरिक्त इपिकाक की तरह संग्रहणी और अतिसार पर भी बहुत अच्छा असर करती है।

अनन्त वात के रोग पर भी जिसमें कि दूसरी सब औषधिया व्यर्थ हो जाती हैं यह औषधि अच्छा असर बतलाती है। इस रोग में इसके हरे फलों का रस निकाल कर अथवा सूखे फलों की जाली का भिगोया हुआ रस तय्यार करके उसमें बावटा का आटा भूंदकर रोटी के आकार का पुल्टिस बनाना चाहिये। फिर उस रोटी को एक तरफ से सेक कर दूसरी तरफ की कच्ची बाजू को सिर पर बाध कर इसी के पानी से भीगा हुआ कपडा उस पर फैलाया रखना चाहिये। इस प्रकार दस बारह दिन करने से अनन्त वात के रोगी को बडा लाभ होता है।

रस रत्नाकर नामक ग्रन्थ के कर्ता महात्मा नित्यनाथ का कथन है कि कडवी तोरई के बीज का चूर्ण १ सेर, सोंठ एक सेर, तिल का तेल ४ सेर, पानी १६ सेर, इन सब को मिला कर धीमी आंच पर पकाना चाहिये। जब पानी का भाग जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल को लगाने से गरमी या उपदंश के असाध्य घाव, दुष्ट व्रण तथा भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है। दूसरे इलाजों से नहीं मिटने वाले व्रण इस औषधि से मिट जाते हैं।

राज मार्तण्ड नामक ग्रन्थ के कर्ता लिखते हैं कि गुह्य स्थान के बालों को निकालकर उस स्थान पर कडवी तोरई के बीजों का तेल लगाने से वहां पर फिर कभी बाल नहीं उगते।

चन्द्र चकोरी नामक ग्रन्थ के कर्ता लिखते हैं कि बैठने की गादी में रुई के बदले कडवी तोरई के फलका भूसा भरकर उस गादी पर रोज बैठने से बिना किसी प्रकार की कोई दूसरी औषधि लिए ही बवासीर का भयंकर रोग जड मूल से नष्ट हो जाता है। अगर ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन शाम को पानी से भरे हुए एक लोटे में कडवी तोरई के चार फल डालकर उस पानी से सवेरे आबदस्त लेने से चार छः महिने में बवासीर नष्ट हो जाता है।

यद्यपि इस बनस्पति में अनेकों अमूल्य गुण रहे हुए हैं फिर भी यह अत्यन्त तीव्र, दस्त, उल्टी लाने वाली होने से इसका उपयोग करने में बडी सावधानी और सम्हाल रखने की जरूरत है। कमजोर गठन के और हृदय रोग के बीमारों को यह औषधि कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि इससे उनके हार्ट फेल होने का डर रहता है। अगर इस औषधि के उपद्रव अधिक बढ जाय तो गाय का घी पिलाना और सुंघाना चाहिए।

कोमान के मतानुसार यह सारी बनस्पति विरेचक और वामक गुणों वाली है। यह चर्म-रोग और श्वास में उपयोगी बताई जाती है। इसका काढ़ा श्वास के रोगियों को दिया गया, जिससे काफी कफ निकल कर रोगियों को फायदा हुआ।

उपयोग —

कुत्ते का विष—कडवी तोरई के गिर को पानी में पीस कर पिलाने से वमन और विरेचन होकर कुत्ते का विष उतर जाता है।

पीलिया—इसके सूखे फल के चूर्ण को सुंघाने से पीलिया में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—कडवी तोरई की जड, जसूंद की जड और सारिवा का दूध तथा जीरे को शकर के साथ देने से मूत्र कृच्छ्र में लाभ होता है।

आंख की फूली—इसके बीजों के मगज को मीठे तेल में घिसकर अञ्जन करने से आंख की फूली दूर होती है।

बवासीर—कडवी तोरई और हल्दी का लेप करने से या कडवी तोरई के चूर्ण को गुदा पर मलने से बवासीर खिर जाता है।

कड़वी नई

नाम—

संस्कृत—कटुनाही हिन्दी—कडवीनई, आकाशगदा, राक्षसगदा। गुजराती—कडवीनई, नाहींकुन्डा। मराठी—गजफल, कडवीनई। फारसी-लूफा। अरबी—अक्कानुलफिल। लेटिन—Corallocarpus Epigeous (कारलो कारपस एपीजीवस)

वर्णन—

कडवी नई की बेलें बरसात के दिनों में बहुत पैदा होती है। इसकी बेल की डण्डी हरी चिकनी और चमकती हुई होती है। इसके पत्ते तिकौने और पाच कौने होते हैं। इसमें नर और मादा दोनों जाति के फूल कुछ हरी झाई लिए हुए पीले रग के निकलते हैं। इसके फल कडवी पाडर के समान अणीदार, सिन्दुरी और नीचे ऊपर हरे रग के होते हैं। इसकी बेलों के नीचे एक प्रकार का कन्द निकलता है। यह बाहर से भूरा और भीतर से सफेद होता है। इसका स्वाद कडवा चिकना और खटास लिए हुए होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

औषधि के रूप में इसका कन्द ही लिया जाता है। आयुर्वेदिकमत से यह सूजन को नष्ट करने वाला, विषनाशक, कृमिघ्न, रेचक, रक्त-शोधक और वामक होता है।

आधुनिक अन्वेषणों के अन्दर इस औषधि मे और भी कई गुणों का पता लगा है। जिसमें सूजन के रोग, चर्मरोग, कारबकल, उपदंश, कण्ठमाल इत्यादि रोगों पर यह बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

जिसके शरीर मे विस्फोटक, खुजली, गरमी व खून-विकार के रोग फूट निकले हों, उसको कडवी नई के ताजा कन्द को ६ माशा की मात्रा में पानी में घोटकर सवेरे पिलाने से दो चार उलटी और एक या दो दस्त होते हैं और दिन भर खराब स्वाद की डकारे आती रहती हैं। यद्यपि इससे रोगी को घबराहट होती है, मगर हिम्मत और विश्वास के साथ इसका सेवन करने से और पथ्य में केवल भात, घी और शक्कर लेने से थोड़े ही समय मे बडा लाभ होता है। जगल नी जड़ी बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि एक ऐसे रोगी को जिसके हाथ और पैरों से कोढ चूना शुरु हो गया था और जो कष्ट के मारे आत्महत्या कर रहा था उसको सात दिन तक यह औषधि देनेसे सब जखम सूख गये।

कारबकल तथा अन्य प्रमेह पीडिकाओं पर भी जोकि अत्यन्त दुष्ट और त्रासदायक होती हैं, यह औषधि बड़ा चमत्कारिक गुण बतलाती है। इन बीमारियों मे कडवी नई के कन्द का चूर्ण ६ रत्ती से १॥ माशे तक की मात्रा में लेकर गुड़ में उसकी गोली बनाकर, अथवा हरे कन्द को ६ माशे की मात्रा में पानी के साथ घिसकर उसमें थोड़ा गुड मिलाकर पिलाने से घंटे आध घन्टे में रोगी को दस्त और उलटी शुरु होती है। इस प्रकार तीन दिन तक प्रयोग करने से कारबङ्कल की भयङ्कर गठाने भी पिघल जाती हैं। जिस समय इस औषधि का प्रयोग चालू रहे उस समय बाह्य उपचार

की तरह इस कन्द को पानी में घिसकर उसमें थोड़ा नमक मिलाकर दर्द के स्थान पर लगाना चाहिये और भोजन में केवल गेहूँ की लूखी रोटी, गुड़ और मूंग का पानी देना चाहिए। तेल, मिर्च, हींग बिलकुल नहीं देना चाहिए। यहां तक कि जिस घर में रोगी सोया हो उसके पास इनका छौंक भी नहीं देना चाहिए। क्योंकि इन चीजों को खाने से अथवा इनके बघार की गन्ध लगने से रोगी का गला एकदम बन्द हो जाता है और उससे बोला नहीं जाता। अगर ऐसी भूल होजाय अथवा अधिक दस्त उल्टी होने से रोगी घबराने लगे तो उसे २ रुपये भर गाय का घी और इलायची के बीजों का डेढ़ माशे चूर्ण मिलाकर देने से रोगी को आराम मालूम होने लगता है। इस औषधि के प्रयोग से प्रमेह से होने वाले कारबङ्कल, फोड़े तथा दूसरी पीठिकाएं दूर हो जाती हैं।

सूजन के ऊपर भी यह औषधि अच्छा असर दिखलाती है। इस रोग में रोगी को पहले गुड़ के पानी के साथ ३,४ माशे निसोत का चूर्ण देना चाहिए। उसके बाद कुछ दिनों तक प्रतिदिन सवेरे शाम नौ नौ रत्ती कड़वी नई का चूर्ण देना चाहिए। उसके बाद इसकी मात्रा बढ़ाकर डेढ़ डेढ़ माशा कर देना चाहिए। इसके साथ इसके कन्द को पानी में पीसकर सूजन के ऊपर भी लगाना चाहिए। इससे सूजन के अन्दर बड़ा लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर अर्थात् पुराने बुखार के ऊपर भी यह औषधि काम करती है। जब शरीर में हमेशा बुखार बना रहता हो और वह किस कारण से रहता है यह समझ में न आता हो तो उस हालत में इसके कन्द का चूर्ण तीन रत्ती की मात्रा में लेकर उसमें उतनी ही लींडी पीपर का चूर्ण मिलाकर दिन में दो बार देने से थोड़े दिनों में अच्छा लाभ होता है।

सांप के जहर और अफीम के जहर पर भी यह लाभदायक मानी जाती है। इस प्रकार के जहरों में इसके कन्द को पानी में घिसकर पिलाने से दस्त और उल्टी होकर जहर का नाश हो जाता है।

ऐन्सली के मतानुसार यह औषधि पुराने अतिसार के अन्दर लाभदायक मानी जाती है। यह इसके कन्द के चूर्ण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह चौबीस घण्टे के अन्दर सवा २ माशे की मात्रा में दी जाती है। इसे ८।१० दिन तक लगातार देना चाहिये। ऊपर लिखी हुई तादाद में देने से इससे एक दो पतले दस्त आयेंगे। यह कृमिनाशक भी मानी जाती है। गठिया की बीमारी में इसे बाहर प्रयोग में लेते हैं। इसको जीरा, प्याज और अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर मलहम तयार कर लेते हैं। इस मलहम को पुराने आमवात रोग पर लगाने के काम में लेते हैं। डेकन और मैसूर में इसकी जड़ की सांप के विष को दूर करने के सम्बन्ध बड़ी तारीफ है। इसे पिलाते भी हैं और काटे हुए हिस्से पर लगाते भी हैं।

कोमान के मतानुसार इस लता की जड़ धातु परिवर्तक और मृदु विरेचक है। यह प्रायः पुराने पेचिश में और उपदंशीय सन्धिवात में उपयोगी है। इसकी जड़ को पीसकर और उसका काढ़ा बनाकर जीर्ण आंतरिक प्रवाह में व पेचिश में देते हैं। श्लेष्मिक आंतरिक प्रवाह के रोगियों को इससे काफी फायदा हुआ, किन्तु इस काढ़े से तीव्र रक्तातिसार रोग से पीड़ित रोगियों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेचिश और सर्पदंश में उपयोगी है। इसमें Bryonin (ब्रियोनिन) के सरीखे कटु तत्व मौजूद रहते हैं।

मश्कर और केस के मतानुशार यह सांप के काटने पर और बिच्छू के काटने पर निरुपयोगी है।

उपयोग—

उपदंश—रुधिर को शुद्ध करके उपदंश के विकार को मिटाने के लिए इसका प्रयोग बहुत अच्छा है। इसकी चार माशे चूर्ण की फक्की दिन मे एक बार देना चाहिये। उपदंश की पिछली अवस्था में इसकी चार माशे की फक्की दिन में एक बार ८।१० दिन तक देने से प्रतिदिन एक दो ढीले दस्त होकर उपदंश की चादी मिट जाती है। (अनूभूत चिकित्सा सागर)

गठिया—जीरा, प्याज और कड़वी नई के कन्द को अरण्डी के तेल में पीसकर लेप करने से पुरानी गठिया मिटती है।

सांप का जहर—इसकी जड के चूर्ण की फक्की लेने से और उसको घिसकर ढंक पर लगाने से सांप के जहर में लाभ होता है।

कड़वी परवल

नाम—

संस्कृत—अमृतफला, बीजगर्भा, ज्वरनाशन, ज्योत्स्ना, कचुघ्नी, कच्चुरा, कडपटोल, कर्कशछदा, कास भजन, कास मर्दन, कुष्टारि इत्यादि। हिन्दी—कडवी परवल, जंगली खिंकोडा। बम्बई—जंगली परवल, कडु परवल, पुडोली, रानपरूल। गुजराती—कडवी पडवल, कडवी पटोल। मराठी—कडु परवल, जङ्गली परवल। उत्तर पश्चिमी प्रांत—बान पटोल, जङ्गली चिचोडा। कनाडी—किरी पोडला। तामील—पुडेल, पेय पुडल। तेलगू—अदवी पोला, चेटी पटोल। उर्दू—पटोल। लेटिन—Trichosanthas Cucumerina (ट्रिको सेंथस कुकुमेरिना)

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष, सीलोन, मलाया प्रायद्वीप और उत्तरी आस्ट्रेलिया में पैदा होती है। यह हर वर्ष पैदा होने वाली एक लता है। इसकी डालियाँ कुछ रुएँ दार होती हैं। इसके पत्ते कटे हुए और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल नर और नारी दोनों प्रकार के होते हैं। नर पुष्प की पंखुडिया सफेद रहती है। इसका फल मीठे परवल के फल की तरह ही होता है। इसके दोनों तरफ तीखी नोक रहती हैं। कच्चा फल हरा होता है और उस पर सफेद धारिया रहती हैं। पकने पर यह फल लाल हो जाता है। इसके बीज कुछ चपटे रहते है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड विरेचक तथा सिरदर्द, फोड़े और खासी को दूर करने वाली होती है। इसके पत्ते पित्त पित्त नाशक होते हैं। इसका फल कडवा, गरम, विरेचक,

ज्वरघ्न, कृमि-नाशक, अग्निवर्द्धक, प्यास तथा श्वास को दूर करने वाला है। पित्त, खासी, खुजली, धवल रोग, रक्त विकार, जलन, कोढ, फोड़े, अग्नि विसर्प, नेत्र रोग और त्रिदोष में भी यह लाभ दायक होता है। इसका तेल खांसी में उपयोगी है।

यह वनस्पति हृदय को बल देने वाली, धातु परिवर्तक, ज्वर नाशक और आंतों के कृमियों के लिये लाभ दायक है।

चक्रदत्त के मतानुसार इसके पत्तों का रस व इसका काढ़ा पित्त ज्वरों में बहुत ही लाभ दायक है। भावप्रकाश के मतानुसार इसकी जड का काढ़ा माता की बीमारी में जिसमें पित्त का भी प्राबल्य हो, देने के काम में लिया जाता है।

बम्बई में इस औषधि की ज्वर निवारक वस्तु के रूप में बड़ी प्रशंसा है। ज्वर को नष्ट करने के लिये अदरक, चिरायता और शहद के साथ इसका काढ़ा दिया जाता है। कोकण में इसके पत्तों का रस यकृत के ऊपर मालिश किया जाता है। पार्यायिक ज्वरों में भी इसका रस शरीर पर मसला जाता है।

सीलोन मे इसकी जड का काढा कृमियों को नष्ट करने के लिये दिया जाता है। यह चर्म रोगों में तथा पित्तजन्य रोगों में भी उपयोगी माना जाता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार यह वस्तु धातु परिवर्तक, रक्त शोधक, चर्म रोग नाशक और पित्त ज्वरों को नष्ट करने वाली तथा विरेचक है। पीलिया और जलोदर की बीमारी में भी यह वस्तु लाभ दायक है। टारबिथ (Tarbith) के साथ से देने पर यह औषधि पीलिया और जलोदर में विशेष रूप से फायदा पहुँचाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वर नाशक, विरेचक, पाचक, धातु परिवर्तक और पौष्टिक है।

उपयोग—

धातु परिवर्तक क्वाथ—कड़वी परवल के पत्ते, गुडवेल, चिरायता, नीम का छिलका,र खैर, पित्त पापडा, अडूसे की जड और नागरमोथा, इन सब औषधियों को दो दो तोल लेका सेर भर पानी में औटाना चाहिये। जब पाव भर पानी शेष रह जाय तब उसको मलकर छान लेनर चाहिये। इस क्वाथ के तीन हिस्से कर दिनमें तीन वार देना चाहिये। यह क्वाथ धातुपरिवर्तक है। खाज खुजली, फोड़े, फुन्सी, इत्यादि चर्म रोगों को नष्ट करता है। पीलिया और जलोदर की बीमारी मे भी यह लाभदायक है।

आँतों के कृमि—इसके बीजों के चूर्ण की फक्की देने से आतों के कीड़े मरते हैं।

ज्वर—(१) चिरायते के अर्क के साथ इसके बीजों का चूर्ण देने से ज्वर छूट जाता है।

(२) इसके पत्तों के अर्क का सारे शरीर पर मालिश करने से निरन्तर रहने वाला ज्वर छूट जाता है।

अम्ल पित्त— कड़वी परवल, नीम की छाल, और मेनफल का काढ़ा बनाकर शहद और सेंधे निमक के साथ पिलाने से वमन होकर अम्लपित्त मिट जाता है।

कफ और पित्त की वमन--पटोल और सोंठ की लुग्दी में घी को सिद्ध करके उस घी का सेवन करने से पित्त और कफ की वमन मिटती है।

कड़ूची (कासरकाई)

वर्णन—

यह एक करेले की जाति की वनस्पति होती है। खजाइनुल अदविया के मतानुसार इसकी बेल अक्सर ज्वार के खेतों में बरसात के शुरू में पैदा होती है, शाखें जमीन पर फैलती हैं, पत्ते छोटे २ और कंगूरेदार, सब्ज माइल और नरम होते हैं। फूल पीले और छोटे होते हैं। फल के ऊपर सल होते हैं। इसका छिलका पतला होता है, इसके बीज सख्त और गोल होते हैं। कई लोग इसको करेला समझते हैं मगर यह उनकी ग़लती है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह पित्त नाशक, अग्निवर्धक, कब्ज को दूर करने वाला और आंख की बीमारी में मुफीद है। इसकी जड़ प्रसूति के बाद में होने वाली खराबियों को दूर करती है। इसका लेप कण्ठमाला में लाभ पहुँचाता है तथा यह बवासीर में भी लाभ पहुँचाती है। ऐसा कहा जाता है कि इसकी बेल के आसपास सांप नहीं आता।

जिसकी कै में खून आता हो उसके लिये यह वनस्पति नुकसान दायक है।

कठर पात

वर्णन -

यूनानी मत— नुस्खा सईदी में लिखा है कि ये एक प्रकार के पत्ते होते हैं। इनका रंग स्याह और सुर्खी माइल होता है। ये तमाखू के पत्तों से बहुत मिलते जुलते, हैं मगर उनमे छोटे होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

यूनानी मत— यूनानी मत से यह औषधि गले के वरम में खास तौर से मुफीद है। जिसके गले में वरम आ गया हो वह यदि थोड़ा सा कठर पात सोते वक्त मुँह में रखले तो कुछ दिनों में उसकी सूजन उतर जाती है। (ख० अ०)

कतबचा

नाम—

अरबी—कतवरा।

वर्णन —

यह एक क्षुप जाति की वनस्पति है। इसका पौधा एक गज तक लम्बा होता है। शाखाएं पतली और सख्त होती हैं। पत्ते अलसी की तरह और नरम होते हैं। पत्तों का रंग काली झाँई लिये हरा

होता है। इसके फूल नीले, सफेद और पीले होते हैं। उनकी बनावट अलसी के फूलों की तरह होती है। स्वाद में यह वनस्पति कड़वी होती है। इसकी एक जाति और होती है जो सख्त जमीन में ऊगती है, इसमें पत्ते नहीं होते और इसकी डालियों को तोडने से दूध निकलता है। (खजाइनुल अदविया)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह औषधि कफ निस्सारक है और जोड़ों के दर्द में मुफीद है। इसको पीस-कर कुछ गरम करके लेप करने से सरदी के दर्द में फायदा पहुँचाता है। यही लेप दाद पर करने से दाद भी नष्ट हो जाता है। इसकी दूसरी जाति को पीसकर योनि में रखने से गर्भ गिर जाता है। इसलिये गर्भवती स्त्री को इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

मात्रा—इसकी पहिली जाति की मात्रा ७ माशे की है और दूसरी जाति की ५ माशे की है।

कत्था

नाम—

यह खेर नामक वृक्ष जिसे लेटिन मे एकेशिया कटेचू कहते हैं। उससे प्राप्त किया जाता है। इसका वानस्पतिक वर्णन और नाम खेर के परिचय में देखना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कत्था कसेला, गरम, कड़वा, रुचि कारक, अग्नि दीपक दांतो को दृढ़ करने वाला, चरपरा तथा कफ, वात, व्रण, कण्ठ रोग, सब प्रकार के प्रमेह, कृमि, मुखरोग १८ प्रकार के कुष्ठ, शरीर की स्थूलता और बवासीर को नष्ट करता है।

चरक के मतानुसार कत्थे का काढा कुष्ट में देने से और इसी को धोने के उपयोग में लेने से बडा लाभ होता है। सुश्रुत खैर के छिलके को सभी प्रकार के कुष्ट रोगों में काम में लेने की सलाह देते हैं। चक्रदत्त के मतानुसार कफ के साथ खून जाने में और अन्य रक्तश्राव में इसके (खेर के) फलों का चूर्ण शहद के साथ देने से लाभ होता है। हारीत के मतानुसार मसूड़े और दांतों की पीडा में कत्थे का उपयोग हमेशा लाभ दाई होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह कब्ज और खुश्की पैदा करने वाला होता है। इसका मञ्जन मसूड़ों और दांतों को मजबूत करता है। इसका चूर्ण जखम पर भुरकाने से जखम जल्दी आराम होते हैं, इसको पानी में जोश देकर पीने से पेट के कीड़े मर जाते हैं। तथा मामूली दस्त बन्द हो जाते हैं। आंतों के घाव और मरोडी के लिये भी यह मुफीद है। कुष्ट, सुनाक और फोड़े फुन्सी के लिये इसका शर्बत और लेप फायदा पहुँचाता है।

इसका अधिक इस्तेमाल पुरुषार्थ को नष्ट करता है। अगर १० तोले कत्था और थोडासा कपूर

एक साथ खा लिया जाय तो मनुष्य कतई नामर्द हो जाता है। इसको मुँह में रख कर चूँसने से लटका हुआ "काग" अच्छा हो जाता है और उसकी वजह से होने वाली खांसी भी मिट जाती है। इसको पानी में गला कर उसकी पिचकारी देने से श्वेत प्रदर और सुजाक में लाभ पहुँचता है।

कत्था तीन प्रकार का होता है। एक भूरा कत्था जिसको पपडिया का कत्था कहते हैं; जो बहुत हल्का, सुर्खी माइल और आसानी से टूटने वाला होता है। औषधि के काम में विशेष कर यही कत्था काम में आता है। दूसरा लाल और तीसरा स्याह रंग का कत्था होता है। यह विशेष करके औषधि के काम में नहीं आते।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह खेर की लकडी से प्राप्त किया हुआ सत्व है, इसके गहरे बादामी रंग के ढेर के ढेर तयार किये जाते हैं। पाच से पन्द्रह ग्रेन तक की मात्रा में स्वतन्त्र रूप से अथवा दाल चीनी और अफीम के साथ यह अतिसार को रोकने के लिये दिया जाता है। मसूड़ों के पकने पर, गले की तकलीफ में या दातो के दर्द में कत्था, दालचीनी और जायफल की टिकिया बनाकर मुँह में रखी जाती है। वेसलिन के साथ मिलाकर यह फोडों पर भी लगाया जाता है। इसमें केटेचिन (Catechin) और टेनिन एसिड नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

के० एल० डे के मतानुसार इसका टिंक्चर दुष्ट विद्रधि नामक फोड़े पर बडा उपयोगी होता है। यह संकोचक और पौष्टिक हैं। अतिसार में यह बहुत ही उपयोगी है। चाहे यह चूर्ण के रूप में लिया जाय, चाहे संकोचक पदार्थ या अफीम के साथ में लिया जाय। मसूड़े, मुँह के व्रण और लार के जाने पर भी यह बहुत उपयोगी है। स्वरभङ्ग, गले की पीडा और आवाज के बिगड जाने पर यह टिकियाओं के काम में लिया जाता है।

उपयोग —

अतिसार—(१) कत्था ५ रत्ती, दालचीनी ५ रत्ती इन दोनों चीजों को पीस कर सिरके में घोंट कर ४ गोली बना लेना चाहिये। इसमें से दिन में एक गोली तीन बार देने से अतिसार में लाभ होता है।

(२) कत्था तीन ड्राम, दालचीनी एक ड्राम, उबलता हुआ पानी १० औंस इनको मिलाकर दो घण्टे तक पडा रहने दो। बाद में छानलो। इसमें से १ औंस की खुराक दिन में तीन बार लेने से अतिसार में लाभ होता है।

फोड़े और फुन्सी पुराने पीब बहते हुए फोड़े पर मोम के साथ इसका लेप बनाकर लगाने से लाभ होता है।

नासूर—इसके लेप में नीला थूथा मिलाकर नासूर पर लगाना चाहिये।

जखम—जखम पर इसका चूर्ण भुरकाने से खून का बहना बन्द हो जाता है। आतशक की टांकियों पर इसका चूर्ण भुरकाने से लाभ होता है।

सूखी खांसी—२ रत्ती कत्था और दो रत्ती हलदी इनमें मिश्री मिलाकर फकी लेने से सूखी खांसी मिटती है।

सङ्खिये का जहर—दो-तीन तोले कत्थे को पानी में पीस कर पिलाने से संखिये का जहर उतर जाता है। मगर इतनी बडी मात्रा मे कथ्था लेने से पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है।

मुँह के छाले—सफेद कत्था और कलमी शोरा बराबर लेकर महीन पीस कर भुरकाने से मुंह के छाले अच्छे होते हैं।

बवासीर—अरीठे के छिलके की राख और पपडिया कत्था को समान भाग पीस कर रख लेना चाहिये। इस चूर्ण में से १ रत्ती चूर्ण मक्खन में मिलाकर देने से और नमक, मिर्ची, तेल, खटाई छोड देने से बवासीर में गिरने वाला खून बन्द हो जाता हैं।

कान का पीप—कत्थे का चूर्ण कान में भुरकाने से कान का बहता हुआ पीव बन्द हो जाता है।

मसूड़े का दर्द—दो-ढाई रत्ती कत्थे की टिकिया बनाकर मुंह में चूसने से मसूडो के दुसाध्य दर्द भी मिटते हैं।

(२) कत्थे को पांच गुने पानी में औटाकर जब पानी का आठवां भाग शेष रह जाय तब उसमें जायफल, कपूर और सुपारी को पीस कर गोली बना कर मुँह में रखने से मुख पाक इत्यादि सब मुँह के रोग मिटते हैं।

दन्त मञ्जन—कत्था, फिटकरी और कसीस के चूर्ण का मञ्जन करने से दांत और मसूड़े मजबूत होते हैं। मगर ज्यादा दिनों तक इसको लगाने से दात काले पड जाते हैं।

——※——
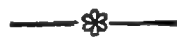
कत्था (चिनाई)

नाम—

हिन्दी—कथकुथा। बम्बई—चिनाई काथा। तेलगू—अकुदकुरा। लेटिन—Uncaria gambir (अनसरिया गेम्बीयर)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का कत्था होता है जो अनसरिया गेम्बियर नामक एक प्रकार की नाजुक लता से पैदा होता है। यह लता मलाया, वोर्नियो और सुमात्रा में पैदा होती है। इसके पत्ते फिल्लीदार और गोल नुक्कीदार होते हैं। ये शुरु में गोल रहते हैं। इनकी नीचीबाजी नसों पर कुछ रुआं सा रहता है। इसकी फलियाँ बहुत ही सिकुड़ी हुई रहती हैं।

आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रन्थो में इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गेम्बियर एक प्रसिद्ध संकोचक वस्तु है। भारतवर्ष के बाजारों में यह जावा सुमात्रा और सिंगापुर से आता है। यह सफेद कत्थे के नाम से मशहूर है मगर भारत में होने वाले कत्थे से यह भिन्नता रखता हैं। ब्रिटिश फर्माकोपिया में जहाँ २ कत्थे का उल्लेख है, वहां २ इसी

वस्तु का बोध होता है। इसका स्वाद कटु और संकोचक है। इसका ऑफिशियल टिन्कचर पानी के साथ मिलाकर गले की तकलीफ और मुखशोध में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। अतिसार और विशूचिका रोग में इसे चॉक और अफीम के साथ में दिया जाता है।

कतरान

वर्णन—

यह एक प्रकार का गाढ़ा, प्रवाही तेल होता है। जिसको हिन्दी में 'चडियल' का तेल कहते हैं खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह शेरबीन या सनोवर नाम के दरख्त से प्राप्त होता है। यह शक्ल में भूरे रंग का गाढ़ा और तारकोल की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—शेख के मतानुसार यह चौथे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसमें शरीर के अङ्गों को सुन्न करने की तासीर है। यह सरदी के दर्दों में लाभ पहुँचाता है। सर्दी के सिरदर्द में इसको पेशानी पर लेप करने से बडा फायदा होता है। आखो के आसपास इसका लेप करने से आख की रोशनी बढ़ती है और कानों में टपकाने से कान के कीड़े मरजाते हैं दांत पर मलने से दात का रोग दूर होता है। थोडी मिकदार में गुदा के अन्दर रखने से गुदा के कीड़े मरजाते हैं। खुजली पर इसकी मालिश करने से लाभ होता है। सम्भोग के पूर्व मूत्रेंद्रिय पर इसको लगाने से स्त्री के गर्भ नहीं रहता।

बिच्छू के डङ्क पर भी इसको लगाने से लाभ होता है। इब्ने जहूर कहता है कि दीवानों को अगर यह हमेशा चटाया जाय तो उनको लाभ होता है।

यह औषधि बाह्य प्रयोग मे ही मुफीद है। इसको अधिक मात्रा मे खाने से हाजमा बिगड जाता है। पेट और सिर में सख्त दर्द होता है, पेशानी का रग स्याह हो जाता है इत्यादि, अनेक उपद्रव इसके खाने से पैदा होते हैं। इसलिये इसको खाने के काम मे नहीं लेना चाहिये। (ख० अ०)

कताद

नाम—

अरबी—कताद।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है जिसके कांटे बहुत तेज होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। खजाइनुल अदविया के लेखक लिखते हैं कि मैंने इस दरख्त की तस्वीर देखी है। इसके कांटे सीधे

नोकदार और बहुत लंबे होते हैं। इन कांटों की वजह से दरख्त बडा खौफनाक मालूम होता है। गिलानी के मतानुसार क़तीरा इसी दरख्त का गोंद होता है। मगर खजाइनुल अदविया के मतानुसार क़तीरा, खडिया नामक वृक्ष का गोंद है, जिसका हाल आगे लिखा जायगा।

गुण दोष और प्रभाव--

यूनानी मत— शेख के मतानुसार इसके दरख्त का मिजाज सर्द और तर है मगर जड बहुत गरम है। किसी २ लेखक के मतानुसार यह गरम और तर है।

इसकी जड को घिसकर शहद या सिरके में मिलाकर चेहरे पर मलने से चेहरे की झांई मिट-जाती है। इसके पत्तों के काढ़े को शकर मिलाकर पीने से पुरानी खांसी, दमा, और तपेदिक में लाभ पहुँचता है। काढ़े की मात्रा ८ से १० तोला तक है इसकी जड में इतनी चिकनाई होती है कि यह बिना तेल के भी मशाल की तरह जलती है। (खजाइनुल अदविया)

कतालिब

नाम—

अरबी—कतालिब।

वर्णन—

यह एक किस्म का वृक्ष होता है। जिसका आकार प्रकार अमरूद की तरह होता है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों से बहुत नाजुक और छोटे होते हैं। इसकी छाल का रंग कुछ सुर्खी माइल होता है। इस पर दरारें होती है, फूल कुछ सफेद होता है। फल आलू बुखारे की तरह होता है, । जो कच्ची हालत में हरा और पकने पर जाफ़रानी हो जाता है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव —

यूनानी मत—यह पहले दर्जे में गर्म और खुश्क है। किसी किसी के मत से दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इस औषधि में विष नाशक प्रभाव भी रहता है, जिसकी वजह से इसका प्रयोग तेज विषों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। आंख पर इसका लेप करने से नजले का पानी साफ हो जाता है। इसके पत्तों का रस रोगन गुल में मिलाकर कण्ठमाला पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्तों को पीसकर सूंघने से मिरगी में लाभ होता है। इसके पत्तों के चूर्ण में शकर मिलाकर १० माशे की मात्रा में खाली पेट खाने से दस्त बन्द हो जाते हैं। इसके पत्तों का काढा पीने से और उनको पीसकर लेप करने से फोड़े फुन्सी में बहुत लाभ होता है। (खजाइनुल अदविया)

क़तीरा

वर्णन—

यह एक किस्म का गोंद होता है। खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह खडिया नामक पेड से प्राप्त किया जाता है। खडिया का पेड बडे क़द का होता है। इसकी छाल का रंग सफेद होता है

और अन्दर से लाल रहता है। इसके पत्ते बहुत बड़े तिकोने, फूल सुर्ख (लाल) आम के मोर की तरह होते हैं, मगर इनमें खुशबू नही रहती। फल गोल, बड़े बेर की तरह होता है। उसके ऊपर कोंच की फली की तरह रुएं होते हैं। इसमें तीन से लेकर ६ तक बीज निकलते हैं। इन बीजों पर एक सख्त और चिकना छिलका होता है। बीज का आकार घुंगची (चिरमी, चरमू) के बराबर होता है। इस बीज को लोग मेढ़ कडी कहते हैं। इसके फूल कार्तिक महिने में और माघ फागुन में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी ग्रंथकारों के मत से यह पहिले दर्जे में सर्द और खुश्क है। किसी २ के मत से यह सर्द और तर है। यह खून को गाढ़ा करता है। आंखों की बीमारी में लाभदायक है। बकरी के दूध के साथ देने से हर प्रकार के रक्त श्राव को बन्द करता है। खांसी और छाती तथा गले की खुश्की और फेफड़े के जखम में भी यह लाभदायक है।

जमाल गोटा या और किसी तेज जुलाब के लेने से अगर दस्त बन्द न हो तो कतीरे को दही के साथ देने से फौरन शान्ति होती है। यह आंखों को ताकत देता है।

सुजाक, पथरी, अथवा और किसी वजह से अगर मूत्र नाली में रुकावट पैदा हो जाय तो उस समय इस औषधि को देने से बड़ा लाभ होता है।

इसका लेप करने से चेहरे की झाई दूर होकर चमड़ी मुलायम होती है। गंधक के साथ इसको पीस कर लेप करने से खुजली और खसरे में फायदा होता है।

यह वस्तु गुर्दे के रोगियों के लिये हानि कारक है। इसके प्रतिनिधि तुख्म कद्दू और बबूल का गोंद है। इसकी मात्रा तीन माशे से सात माशे तक है। (ख० अ०)

कथई

नाम—

बरमा—कथई। मराठी—लोखडी। मलयालम—करिनेटा। तामील—निम्म। लेटिन—Samadera Indica. (समेड्रा इण्डिका)

वर्णन—

यह वनस्पति बम्बई, कोकन, मद्रास प्रेसीडेंसी के पश्चिमी भाग, मलाबार और ट्रावनकोर के निरन्तर हरे रहने वाले जंगलों में पैदा होती है। यह एक छोटे किस्म की झाड़ी है। इसकी शाखाएं मोटी होती हैं। इसके पत्ते बड़े होते हैं। इनकी नोक तीखी रहती है और ये मुलायम रहते हैं। इसके फूल थोड़ी तादाद में लगते हैं। इनकी फलियां चपटी और फिसलनी होती हैं। इन फलियों में बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल ज्वर नाशक वस्तु की तौर पर काम में ली जाती है। इसके गूदे से निकाला हुआ तेल आमवात में बाह्य उपयोग मे लाभदायक होता है। इसमें ग्लूकोसाइड, सेमैडेरिन और अन्य कटुतत्व पाये जाते हैं।

इसके पत्तों को पीसकर अग्निविसर्प पर लगाते हैं। इसका शीत निर्यास कृमिनाशक है। यह सफेद चींटियों को नाश करने वाला होता है।

कंथारि

नाम—

संस्कृत—कन्थारि, कन्थरी, गृध्रनखी, तीक्ष्णकण्टका, क्रूरगन्धा, इत्यादि। हिन्दी— कन्थारि कन्थार। गुजराती—कन्थारो, कन्थार, कालोकन्थारो। कच्छी—कन्थार, कारो कन्थार। कर्नाटकी—कांतरू। पंजाबी—हयूगरना, हयूस। तामील—करिन्दू, करुञ्जरी। तेलगु—नलउई। लेटिन—Capparis Sepiaria (केपेरिस सिपिएरिया)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष, सीलोन, इण्डोचायना, मलाया और ऑस्ट्रेलिया के खुश्क प्रान्तों में पैदा होती है। इसकी बेलें खेत की वाडों पर, बबूल पर और थूहर की झाडियों पर फैलती हैं। इसकी बेलें अत्यन्त तीक्ष्ण और कठोर अनीदार कांटों वाली होती हैं। इसके पत्ते लम्ब गोल, संकड़े और छोटे होते हैं। चैत्र वैशाख महिने में इनके सपेद रंग के छोटे फूलों की गुच्छियां आती हैं। इसके फल गोल, मुलायम और पकने पर काले रंग के हो जाते हैं। इस वनस्पति की दो तीन जातियां होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह वनस्पति कडवी, उष्ण, पौष्टिक, अग्निवर्धक, रुचिकारक, कफवात को दूर करने वाली, ज्वर निवारक, धातु परिवर्तक, चर्म रोग नाशक, तथा अर्बुद, प्रदाह और मास पेशियों की पीडा में फायदा पहुँचाती है। इसकी पीसी हुई जड गोवेरक (१) नामक सर्प के काटने पर नाक के द्वारा सुंघाई जाती है।

आंख की सूजन पर इसकी जड को अफीम के साथ पीसकर आंख पर लगाई जाती है, जिससे सूजन बिखर जाती है। उदर शूल पर इसकी जड को काली मिरच के साथ पिलाई जाती है। रक्त विकार और चर्म रोगों पर इसके पत्तों का काढा दिया जाता है।

कद्दू

नाम—

संस्कृत—कुष्मांड, पीतफला, पीत कुष्माड। हिन्दी—कद्दू, गोल कद्दू, लाल पेठा, काशी फल, कोल्हा, कुम्हडा। बंगाली—कुह्मडा। मराठी—तांबला मोपला। गुजराती—पतकोलू, शाकर कोलू। फारसी—बादरंग। लेटिन—Cucurbita Mascima (कुकुरबिटा मेस्किमा)

वर्णन—

कद्दू एक बेल का फल है। इसकी बेलें लम्बी-लम्बी होती हैं। इसके पत्ते बड़े और कटे हुए

रहते हैं। इसका फल बहुत बड़ा होता है। यह सारे भारत वर्ष में पैदा होता है। इसकी तरकारी सब दूर उपयोग मे ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से यह भारी, पित्त जनक, मन्दाग्निकारक, कफ नाशक और वात को कुपित करने वाला है।

इसका फल मूत्रल, पौष्टिक और तृषा को नाश करने वाला है। यह वात, पित्त कारक और कफ नाशक है तथा क्षुधा को नष्ट करता है।

इसके बीज विष नाशक पदार्थ की तौर पर उपयोग में लिये जाते हैं। इनका तेल स्नायु मण्डल के लिये एक पौष्टिक पदार्थ माना गया है। इसके फल का गूदा पुल्टिश के तौर पर भी उपयोग में लिया जाता है।

इसके बीज माल्टा में पद्दूदाने (एक प्रकार के पेट के कीडे) को एक खास औषधि मानी गई है। इन कृमियों के लिए यह बहुत सुरक्षित औषधि समझी जाती है।

गायना में यह फल स्निग्धता पैदा करने वाला, ज्वर निवारक और प्यास बुझाने वाला माना जाता है। इसका गूदा दाह, खाज और प्रदाह पर लगाने के काम में लिया जाता। यह नासूर और फोड़ों में भी उपयोगी है। मस्तक शूल और स्नायुशूल में भी यह लाभ दायक है। इसके बीज कृमिनाशक माने गये हैं। ये विशेष तौर से Teniacides नामक कृमियों को नाश करने में कारगर होते हैं।

वाग्भट्ट के मतानुसार लाल कद्दू दूसरी औषधियों के साथ बिच्छू के जहर को दूर करने के उपयोग में लिया जाता है। पके कद्दू के बींट को तोड़ कर उसे घिस कर बिच्छू के डङ्क पर उसका लेप करदें।

केस और महस्कर के मतानुसार कद्दू का कोई भी हिस्सा बिच्छू के डङ्क पर उपयोगी नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज कृमि नाशक हैं। इनका तेल स्नायु मण्डल के लिये पौष्टिक माना गया है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके बीजों में रेजिन, फिक्स ऑइल, शूगर और स्टार्च नामक पदार्थ पाये जाते हैं। इसके बीज एक प्रकार की उत्तम कृमि नाशक वस्तु हैं। इनको कुछ पानी के साथ पीस कर खाली पेट पिलाने से तथा उसके बाद करीब १० बजे जुलाब दे देने से सब कृमि निकल पड़ते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह कब्जियत को दूर करने वाला, मूत्रल, बवासीर में लाभ दायक, प्रमेह को दूर करने वाला, प्यास को बुझाने वाला और भूख को बढाने वाला है। इसका अध पका फल, कफ को दूर करने वाला, पित्त नाशक, तथा फोडे फुन्सियों को लाभ दायक है। यह मेदा के लिये नुकसान दायक है।

कद्दू के बीज—कद्दू के बीज दूसरे दर्जे में सर्द और पहले दर्जे में तर है। ये गरमी से पैदा हुए दोषों को दूर करते हैं। पेशाब की चिनक और मसाने की सोजिश को मिटाकर ये पेशाब साफ लाते हैं। दिल और दिमाग को कूवत देते हैं। छाती की जलन और मुँह से खून आने की बीमारी में मुफीद है। मूर्छा को दूर करते हैं। इनके मग़ज को पीस कर फटे हुए होठों पर लेप करने से होठ अच्छे होते हैं। इनके प्रतिनिधि तुख्म खयारेन और तुख्म तरबूज है। इनके दर्प को नाश करने वाली सौंफ है। इनकी मात्रा १० माशे की है।

कद्दू का तेल—कद्दू के बीजों का तेल मलने से बदन में तरी ताजगी पैदा होती है। दिमाग की खुश्की दूर होती। अनिद्रा रोग दूर होता है। मालीखोलिया, (एक प्रकार का उन्माद) वहम, उदासी पट्ठों की ऐंठन, कान की सूजन, खांसी, ज्वर इत्यादि रोगों में यह मुफीद है।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह प्यास बुझाता है। जिगर की गर्मी और पित्त से पैदा हुई बैचेनी को दूर करता है। सुद्दे खोलता है। पेशाब ज्यादा लाता है। पेट को साफ करने वाला है। पीलिया और उन्माद में लाभ पहुँचाता है। मेदे को नुकसान दायक है। पेट दर्द वालों के लिये हानिकारक है। यह बादी पैदा करता और पेट को फुलाता है। इसलिये सर्द मिजाज वालों को इसका विशेष खाना मुनासिब नहीं है। पित्त प्रकृति वालों को इसे अनार और खट्टे अङ्गूर के साथ खाना चाहिये। तपेदिक वालों के लिये इसकी तरकारी बहुत मुफीद होती है। कच्चा कद्दू मेदे के लिये बहुत नुकसान दायक है। अगर जवान आदमी भी उसे खाते तो उसको बहुत नुकसान पहुँचाता है।

मतलब यह कि यह गरम और पित्त प्रकृति वालों को लाभदायक और सर्द तथा कफ और वात प्रकृति वालों को नुकसान दायक है। यह मेदे को खराब करने वाला, भूख को नष्ट करने वाला और मसाने को नुकसान पहुँचाने वाला है।

इसके दर्प को नष्ट करने के लिये, राई, पोदीना, रोगन जैतून, लहसन, गरममसाला और गरम जवारिशों का उपयोग करना चाहिये।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि तरबूज है।

उपयोग—

पीलिया—कद्दू का ऐसा छोटा फल जिसका फूल भी न गिरा हो, लेकर आटे में लपेट कर उसका भुरता कर के उस भुरते के रस को आंख में आंजने से पीलिया रोग में लाभ होता है।

दिमाग की गर्मी—कद्दू को इमली और शक्कर के साथ जोश देकर मल छानकर पीने से दिमाग की गरमी का सिरदर्द और पागलपन में लाभ पहुँचता है।

बवासीर—इसका सूखा छिलका पीसकर खाने से आँतों और बवासीर से खून का आना रुकता है।

आमाशय की दाह—इसके फल को भूँजकर उसका रस निकाल कर पीने से जिगर, मेदा, हृदय, फुफ्फुस और आमाशय की दाह को दूर होती है।

कद्दू सफेद

नाम—

संस्कृत—कुष्माण्ड, पुष्पफल, बृहत्फला, सुफला इत्यादि, हिन्दी—पेठा, कुम्हडा, सफेदकोला बगाली—कुम्हडा गाछ। गुजराती—कहटालू कोंजू, भूरू कोंजू। मराठी—कोहोड़ा, भोपला। तेलगी-पुल्लाहा, वडिका, गुम्मडि। फारसी—भूरा कद्दू। लेटिन—Benincasa Cerifera (बेनिनकेसा सेरीफेरा) Cucurbita pepo (क्यूकरबिटापेपो)

वर्णन—

भूरा कोल्हा या पेठा भारतवर्ष में सब दूर बोया जाता है तथा विशेष कर साग, सब्जी और मिठाई बनाने के काम में लिया जाता है। इसकी बडी लम्बी लम्बी बेलें होती हैं। इन बेलों के बडे बड़े हाथ हाथ भर के लम्बे फल लगते हैं। इन फलों का रग ऊपर से भूरा और सफेद होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कुष्माण्ड वीर्य वर्धक, पुष्टि कारक, वस्ति शोधक, बल कारक, स्वादिष्ट, हृदय को हितकारी तथा मूत्राघात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, अरुचि, वायु, पित्त, रुधिर विकार इत्यादि रोगों को नष्ट करने वाला है। कच्चा पेठा अत्यन्त शीतल, दोष कारक और पित्त कारक है। पक्का पेठा किंचित शीतल, दीपन, हलका, स्वादिष्ट, वस्तिशोधक, त्रिदोष-नाशक और पथ्य है।

वृन्द के मतानुसार इसके रस में लाख डालकर पीने से रक्त क्षय नष्ट होता है। और लाख के बदले तीन रत्ती जवा खार और तीन रत्ती सेकी हुई हींग डालकर पीने से मूत्र-कृच्छ्र नष्ट होता है।

इसी प्रकार रक्त पित्त की व्याधि जिसमें उल्टी और दस्त के द्वारा खून गिरता है उसमें इस फल की कोई भी बनावट देने से निशक रूप से फायदा होता है। क्योंकि रुधिर की उष्णता और पित्त के कोप को शान्त करने के लिये यह एक अकसीर औषधि है।

भावप्रकाश के कर्त्ता लिखते हैं कि सफेद कद्दू के टुकड़े करके धूप में सुखा कर, उनको मिट्टी की एक हाडी में डालकर, उस हाडी पर ढकना ढककर, उस ढकने की दर्जों को कपड मिट्टी से बन्दकर, चूल्हे पर चढ़ाकर इतनी आच देना चाहिये जिससे उन टुकड़ों की एक दम राख न हो जाय वाल्कि वे सब अंगारे हो जाय, उसके बाद उस हाडी को नीचे उतार कर ठण्डी करके उन कोयलों को को पीसकर उस चूर्ण में उसीके बराबर वजन का सोंठ का चूर्ण मिला लेना चाहिये। भोजन के पश्चात् इस चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में जल के साथ लेने से पेट में शूल चलने का दर्द फिर वह चाहे कितना ही पुराना और असाध्य क्यों न हो शान्त हो जाता है।

इसी प्रकार पेठे की जड़ का चूर्ण करके गरम जल के साथ लेने से खासी और दमे का दारुण रोग भी शीघ्र शान्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मधुमेह और उन्माद रोग में भी यह फल बहुत फायदेमन्द सिद्ध हुआ है। औषधि संग्रह के रचयिता डाक्टर वामन गणेश देसाई लिखते हैं कि

"उन्माद अर्थात पागलपन में जब रोगी के नेत्र लाल हो जाते हैं। नाड़ी तीव्र गामी हो जाती है और रोगी बेकाम और तूफानी हो जाता है। ऐसे समय में पेठे का रस देने से दस्त साफ होकर के बीमार को अच्छी तरह से नींद आ जाती है। अगर पेठे के रस के साथ घी ग्वार का रस, बच और ब्राम्ही भी मिला दी जाय तो विशेष लाभदायक हो जाता है। इस कार्य में पेठे के रस की मात्रा पाच तोले से दस तोले तक दी जाती है।

"क्षय रोग के अन्दर कभी कभी फेफड़ों की राह से खून गिरना शुरू हो जाता है ऐसे समय में पेठे का रस देने से फायदा होता है। क्षय रोग की प्रथमावस्था में मोती की भस्म के साथ इसका ताजा रस देने से बहुत लाभ होता है। शरीर के किसी भी हिस्से से रक्तस्राव होता हो उसको बन्द करने के लिये इसका उपयोग होता है"।

<u>पेठे का रस और क्षयरोग</u>—तिब्बत के लामा लोग केवल पेठा खिला करके क्षय के असाध्य रोगियों को पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। चीन के क्षयरोग के अस्पतालों में लामा चिकित्सकों को ही प्रधानता दी जाती है। क्योंकि पेठे के विविवत् प्रयोगों के द्वारा कठिन से कठिन क्षयरोग को नष्ट करने में वे सिद्धहस्त होते हैं। कलकत्ते के अन्दर भी एक लामा वैद्य क्षय रोग के लब्ध प्रतिष्ठित चिकित्सक है, पर उनकी फीस बहुत भारी होने से साधारण जनता फायदा नहीं उठा सकती।

जिस प्रकार तिब्बत के लामा लोग क्षय की चिकित्सा में सिद्धहस्त होते हैं, उसी प्रकार बंगाल के सथाल लोग भी इस बीमारी के लिये सिद्धहस्त माने जाते हैं। ये लोग क्षय निवारण के लिये पेठे के साथ लकखोरी नामक बनस्पति का उपयोग करते हैं। लकखोरी लाजवन्ती के आकार की एक बनस्पति होती है। इसके पोधे कांटेदार और फूल सफेद होते हैं। इसके पत्ते बबूल के पत्तों से मिलते हुए होते हैं। स्पर्श करने से यह लाजवन्ती की तरह ही मुरझा जाती है। इस लकखोरी के स्वरस में अथवा इसके क्वाथ में पेठे को पकाकर बल और पाचन शक्ति की तरफ लक्ष्य रखकर उचित मात्रा में रोगी को खिलाया जाता है। ज्यों-ज्यों भूख बढ़ती जाती है त्यों-त्यों इसकी मात्रा बढाई जाती है। इसके सिवाय दूसरे सब खानपान बन्द करदिये जाते हैं। जब पानी की प्यास लगती है तब पानी के बदले बकरी का दूध पिलाया जाता है। इस प्रयोग में पेठे अच्छे पके हुए और एक वर्ष के पुराने लेना चाहिए। इस औषधि के सेवन से पेशाब अधिक प्रमाण में उतरता है। भूख बहुत बढने लगती है और धीरे-धीरे रोगी की दशा सुधरती चली जाती है। लकखोरी नामक बनस्पति बङ्गाल के जङ्गलों में बहुत प्रमाण में पैदा होती है।

क्षय रोग की ही तरह मधुमेह अर्थात् शर्करा प्रमेह में भी यह औषधि बहुत फायदेमन्द साबित हुई है।

डीमक का कथन है कि मधुमेह रोग के अन्दर यह औषधि बहुत सफल साबित हुई है।

इसके दस तोला रस में पचास रत्ती केशर और उतने ही साठी चांवल के छिलके मिलाकर सवेरे शाम देने से और भोजन में केवल जौ की रोटी देने से मधुमेह आराम होता है।

डॉक्टर खोरी का कथन है कि इसका ताजारस शक्कर और केशर के साथ देने से उन्माद, मृगी, वायु के दर्द और मधुमेह में लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर हैं। किसी-किसी के मत से तीसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह प्यास को बुझाने वाला, जिगर की गरमी और पित्त को शान्त करने वाला मूत्रल और पेट को साफ करने वाला है। इसके सेवन से पीलिया रोग में भी लाभ होता है। उन्माद और पागलपन में इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है। पित्त-जनित ज्वर में इसका इस्तेमाल मुफ़ीद है। सर्द मिजाज़ वालों के लिये इसका खाना मुनासिब नहीं है। तपेदिक वालों के लिये इससे बेहतर और कोई दूसरी तरकारी नहीं है। हृदय, फुफ्फुस और आमाशय की जलन को शमन करने में यह बेमिसाल है, इसका सूखा छिलका पीसकर खाने से आतों और बवासीर से खून का आना रुक जाता है।

उपयोग—

खांसी और दमा—इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की गरम जल के साथ देनेसे भयंकर श्वास और खांसी मिटती है।

हैजा—इसके छः माशे फूल पीसकर खिलाने से हैजे में लाभ होता है।

कृमिरोग—इसके बीजों का सवा तोला तेल पिलाकर थोड़ी देर के बाद हलका जुलाब देने से आंतों के सब कृमि बाहिर निकल आते हैं।

रक्तश्राव—इसका स्वरस पिलाने से हर प्रकार के रक्तश्राव में लाभ होता है।

पथरी और मूत्र कृच्छ्र—पेठे के चार तोला स्वरस में थोड़ी सी हींग और थोड़ा सा यवक्षार मिलाकर पिलाने से वस्ति और मूत्रेन्द्रिय के शूल, पथरी और मूत्र कृच्छ्र में लाभ होता है।

मृगी—पेठे के अठारह भाग रस में एक भाग घी और एक भाग मुलेठी की लुगदी डालकर मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब सब चीज जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसे छानकर रख लेना चाहिए। इस घी से मृगी रोग में बड़ा लाभ होता है।

बनावटें—

✓ *खण्ड कुष्माण्ड अवलेह*—पीपल आठ तोला, सोंठ आठ तोला, सफेद जीरा आठ तोला, धनिया दो तोले, तेजपात दो तोले, छोटी इलायची के बीज दो तोले, काली मिर्च दो तोले, दालचीनी दो तोले इन सब चीजों को कूट पीस छानकर रख लेना चाहिए। फिर एक वर्ष का पुराना बढ़िया मोटा पेठा लेकर उसका पांच सेर गूदा निकालकर उसको कलई की कढ़ाई में दस सेर जल में उबालना चाहिए। जब आधा पानी शेष रहजाय तब उसे उतारकर उसमें से पेठे के टुकड़े निकाल लेना चाहिए। उसके पश्चात् खादी के कपड़े में पेठे के गूदा को रखकर अच्छी तरह निचोड़ लेना चाहिए। जिसमे जल का शेष अंश भी निकल जाय। फिर उन टुकड़ों को धूप में सुखाकर तेरह छटांक घी में भूनना चाहिए।

जब भुनते भुनते शहद जैसा हो जाय। तब उस पेठे के निचोड़े हुए पानी को आग पर चढा देना चाहिये और उसमें उबाल आने पर उसमें घी में भुना हुआ पेठा और पाच सेर मिश्री पीसकर डाल देना चाहिये और जब चासनी अवलेह की सो होजाय तब उसे उतारकर उसमें पीपर आदि का ऊपर लिखा हुआ चूर्ण मिला देना चाहिए तथा साढे छः छटाक शहद भी उसमें मिला देना चाहिये।

इस अवलेह की मात्रा दो से चार तोले तक की है। इसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है, मैथुन शक्ति की वृद्धि होती है। रक्त पित्त, दाह, प्यास, प्रदर, कमजोरी, दुबलापन, खांसी, श्वास, वमन, हृदय रोग, स्वरभङ्ग, क्षत, क्षय इत्यादि रोग नाश होकर के आनन्द की वृद्धि होती है।

कुष्माण्ड पाक—पेठे का अढाई सेर गूदा निकालकर पाच सेर पानी डालकर मिट्टी के बर्तन में पकाओ। जब अढाई सेर जल रह जाय तब उसे उतारकर निचोड़ लो। फिर उसे सिल पर पिट्ठी बनालो बाद में उसे आधा सेर घी मे भू जकर लाल होने पर उतार लो, उसके बाद सोंठ २ तोले, पीपर २ तोले, सफेद जीरा २ तोले, धनिया छः माशे, छोटी इलायची छः माशे, काली मिर्च छः माशे, तेजपात ६ माशे, दालचीनी ६ माशे इन सबको पीस छानकर उसी पिट्ठी मे मिलादो। फिर अढाई सेर मिश्री की चासनी बनाना चाहिए। जब चासनी गाढी हो जाय तब यह पिट्ठी उसमें डालकर दस मिनिट तक और हिलाना चाहिए। फिर उसके बाद नीचे उतारकर ठण्डा होने पर उसमें एक पाव भर शहद और कुछ थोड़े से चादी के वरक मिलाकर उसको जमा देना चाहिए। इस पाक को ४ तोले की मात्रा में सवेरे के टाइम में खाने से समस्त प्रकार के वीर्यदोष, धातु क्षीणता, नामर्दी, रक्त प्रदर इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य का कथन है कि बीस वर्ष से हम इसको आजमा रहे हैं और यह बडा लाभ दायक सिद्ध हुआ है।

कदम्ब

नाम

संस्कृत—कदम्ब, सुरभि, हरिप्रिय, जीर्णपर्ण इत्यादि। हिन्दी—कदम्ब। गुजराती—कदम्ब। मराठी—कदम्ब। बंगाली—कदम। तेलगू—कदीमी। लेटिन—Anthocephalus Cadmaba

वर्णन—

भारतवर्ष के अन्दर सुगन्धित पुष्पों में कदम्ब का बड़ा महत्व है। इसका पुष्प भगवान कृष्ण को बडा प्रिय था। यह एक प्रकार का मध्यम आकार का वृक्ष होता है जो भारतवर्ष के पहाडों में स्वाभाविक तौर से बहुत पैदा होता है। इसका पुष्प सफेद और कुछ पीले रंग का होता है। इस फूल पर पंखडिया नहीं होती बल्कि सफेद-सफेद सुगन्धित तन्तु इसके चारों ओर उठे हुए रहते हैं। इसका फल गोल नींबू के समान होता है।

कदम्ब की कई तरह की जातियां होती हैं। जिनमें राज कदम्ब, धारा कदम्ब, धूलि कदम्ब, भूमि कदम्ब इत्यादि जातियां उल्लेखनीय है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल तेज, कड़वी, मृदु और कसैली होती है। यह कामोद्दीपक, शीतल, दुष्पच्य, दूध बढाने वाली, संकोचक, विष निवारक और घाव को पूरने वाली होती है। गर्भाशय की शिकायतों, रक्त रोग, वात, कफ, पित्त और जलन में यह लाभ दायक है। इसका फल गरम, कामोद्दीपक और पकने पर पित्त कारक है।

महर्षि चरक के मतानुसार इसकी छाल सर्पदंश में उपयोगी है।

कोकन में इसके छिलटे का ताजा रस बच्चों के मस्तक के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र के बैठ जाने पर मालिश करने के काम में लिया जाता है। नेत्रों के प्रदाह में भी इसकी छाल के रस का अफीम और फिटकरी के साथ उपयोग किया जाता है। इसके पत्तों का काढा, (मुखक्षत) मुँह के छाले और मुँह की सूजन के कुल्ले करने के काम में लिया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसकी छाल पौष्टिक, ज्वर निवारक और संकोचक है। यह सर्प के विष में भी लाभ दायक है। इसको सिन्कोटेनिक एसिड (Cinchotannic Acid) नामक संकोचक तत्व रहता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसका फल ज्वर, तृषा और रक्त दोषों को निवारण करने वाला है। आयुर्वेदीय चिकित्सक इसका उपयोग ज्वर की बीमारी में करते आये हैं। जहां आजकल सिंकोना का प्रयोग होता है, ऐसी जगह पहिले इसका उपयोग होता था। इसके पत्तों के ताजा रस की खुराक एक से दो ड्राम तक और पीसी हुई छाल की खुराक छः से पन्द्रह ग्रेन तक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी कच्ची कोंपलें सर्द, हाजमा और पचने में हलकी होती है। ये बद हजमी के अन्दर फायदा पहुँचाती है। बच्चों के बदन पर लाल चकत्ते (Arrisiples) पड़ने की बीमारी में भी फायदे मन्द है। इसके फल गरम, चिकने, क्षुधावर्धक और वीर्य तथा कफ को बढाने वाले होते हैं। इसके पके हुए फल बादी, पित्त और कफ में लाभ पहुँचाते हैं। इसके फूल और पत्ते रक्त विकार और पित्त की बीमारी में लाभ दायक है। फोड़े फुन्सी और गले के दर्द में भी लाभ दायक है। औरतों के स्तनों को भी कड़ा करता है।

उपयोग—

ज्वर—इसकी छाल का काढा पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

मुंह के छाले— इसके पत्तों के क्वाथ से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

कदम

नाम -

हिन्दी—कदम, कलाम, करी, केइम। बम्बई—कगेई। मराठी—कदम्बे। राजपुताना—हरी। तेलगू—निरुकदीमी। लेटिन—(Mytragyna Parvifolia-Stephgyre Parvifolia) माइट्रागायना परवीफोलिया -

वर्णन—

इस वनस्पति के पाते गोल और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसके फूल हरे, पीले और खुशबूदार रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

केम्बेल के मतानुसार सन्थाल लोगों मे इसकी छाल और जड, ज्वर और उदरशूल में दी जाती है। इसकी छाल का लेप मान्स-पेशियों की पीड़ा पर लगाने के काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर और उदरशूल में लाभदायक है।

कंतगुरूकमई

नाम—

संस्कृत—कन्तनगुर, कुण्डली, त्रिकन्तजटा। हिन्दी—कण्टगुर कमई। मद्रास—संगनजेदी। दक्षिण—सूकापात। तामील—अंजि, कुण्डली मुजंगु। तेलगू—पुट्ठ, तेलउप्पी। लेटिन—Azima Tetracantha (एज़िमा टेट्रेकेंथा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाडीनुमा वृक्ष है। इसके कई शाखाएँ होती हैं। यह हरी और पत्ते वाली होती है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले, खुरदरे और चमकीले होते हैं। इसके काटे भी लम्बे होते हैं। इसके सफेद फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। इसका फल गोल, मुलायम, सफेद और खाने लायक होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इण्डियन मेडिसनल प्लाट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड का छिलटा आमवात में उपयोगी माना जाता है। इसके पत्ते उत्तेजक माने जाते हैं और ये प्रसूता स्त्री को देने के लिये काम में लिये जाते हैं। इनका उपयोग करने की रीति इस प्रकार है। इसके पत्ते और नीम के पत्ते दोनों बराबर मात्राओं में लेकर उनमें कुछ पिसी हुई ईंट मिलादेते हैं। फिर इसे अच्छी तरह से पीसकर दो दिन तक प्रसूता स्त्री को दिन में दो बार देते हैं और खाना बंद कर देते हैं। तत्पश्चात् छः दिन तक स्त्री को पकाये हुए कुछ चाँवल और काली मिर्च का पानी दिन मे एकबार दिया जाता है। दिन में खाने के बाद स्त्री को सोने नहीं दिया जाता। अगर उसे प्यास लगती है तो पान और सुपारी खाने को दिया जाता है। ७ दिन के बाद उसे मामूली खाना दिया जाता है।

इसके पत्ते खाने के साथ में आमवात की औषधि के रूप में दिये जाते हैं। इन पत्तों का रस कफ की पीडा को दूर करने के लिये भी दिया जाता है। माता के बाद में इसके पत्तों को लगाने के काम में भी लेते हैं, क्योंकि ये सब प्रकार के व्रणों को पूरने वाले होते हैं।

इसकी जड, पत्ते व छिलटों का काढा बच, अजवायन और नमक के साथ में जीर्ण रक्तातिसार को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसकी जड के छिलके से प्राप्त किया हुआ रस डेढ़ औंस की मात्रा में १ औंस बकरी का दूध मिलाकर जलोदर के रोगी को मूत्रल औषधि की तौर पर दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि मूत्रल है। और इसका प्रयोग आमवात, जलोदर, मन्दाग्नि और जीर्ण रक्तातिसार में उपयोगी होता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्ते उत्तेजक होते हैं ये प्रसूता स्त्री को प्रसूति के बाद में दिये जाते हैं। इसके पत्तों का ताजा रस खांसी में लाभदायक है। इसकी जड मूत्रल और उत्तेजक है। यह अन्य वस्तुओं के साथ में जलोदर रोग में दी जाती है।

सर्जन मेजर लिओनल के मतानुसार इसकी छाल का काढा जूडी बुखार में ज्वर निवारक वस्तु की तौर पर दिया जाता है। इसके पत्ते व्रण पूरक माने जाते हैं। ये मसूरिका के बाद में काम में लिये जाते हैं।

इण्डियन मेडिकल गजट सन १८८६ में डाक्टर पी० एस मुडुस्वामी लिखते हैं कि इसके पत्ते उत्तेजक माने जाते हैं और ये प्रसूता स्त्री को प्रसूति के बाद तुरन्त ही दिये जाते हैं।

कन्त

नाम—

शिमला—कन्त। कुमाऊ—कन्द। झेलम—गुदिकुम। रावी—गुदि। सतलज—कनद। लेटिन—Meconopsis Aclueata (मेकॉनोपेसिस एक्यूलिएटा)

उत्पत्तिस्थान—काश्मीर, गढवाल, कुमाऊ में ११ हजार फीट से १५ हजार फीट तक की ऊँचाई पर।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक प्रकार की वनस्पति है। इस पर छोटे फैले हुए कांटे रहते हैं। इसके फूल छोटे और नाजुक पुष्प वृन्त पर लगे रहते हैं। इसमें चार पँखडिया रहती हैं। इसकी फली लम्बी व मोटी रहती है।

गुण—

इसकी जड निद्रा लाने वाली और विषैली मानी जाती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह निद्रा लाने वाली है।

कन्तूरयून

वर्णन—

यूनानी ग्रन्थो में कन्तूरयून की दो जातियां मानी गई हैं। एक कन्तूरयून सगीर और दूसरी कन्तूरयून कबीर।

कतूरयून सगीर यह क्षुप जाति का बहुशाखी पौधा होता है। इसकी दो जातियां होती हैं। एक कन्तूरयून सहरी और दूसरी कन्तूरयून जङ्गली। इनके फूल लाल और कुछ नीले रंग की झांई लिये हुए होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव--

यूनानी मत से यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह रेचक, पित्त, कफ नाशक और सूजन को दूर करने वाली होती है; पेशाब और मासिक धर्म को साफ करती है; दिमाग के लिये मुफीद है; मिरगी और सास की तङ्गी को दूर करती है। यह पेट दर्द को फायदा करती है और गठिया में लाभदायक है। सौंफ के पानी के साथ इस्तेमाल करने से आंख के सब रोगों को फायदा पहुँचाती है।

यह औषधि जिगर और आंतो के लिये नुकसान दायक है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये बबूल का गोंद, कतीरा और कासनी लेना चाहिये। इसकी मात्रा ताजी की तीन माशे से छः माशे तक और सूखी की दस माशे तक और इनेमा में देने के लिये ३ माशे की है। (ख० अ०)

कन्तूरयून कबीर—यह कन्तूरयून की एक बड़ी जाति है। इसका पौधा तीन गज तक बढ़ता है। शुरु से ही इसमें कई शाखें निकलती हैं। इसका फूल गोल और सुनहरी रंग का होता है। इसकी शाखों पर फल लगते हैं। इन फलों के अन्दर खस-खस के डोड़े की तरह बीज रहते हैं। ये बीज चरपरे होते हैं। इसकी जड़ लाल रंग की होती है। (खजानुल अदविया)

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि फेफड़े को साफ करती है; दमे में लाभ दायक है; मुँह से खून गिरने की बीमारी मे भी यह फायदा पहुँचाती है। इसके प्रयोग से बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है। गर्भाशय की यह बीमारियों में लाभदायक है। इसका चूर्ण नासूर में भरकर बांध देने से नासूर भर जाता है। पुरानी खांसी में भी यह फायदा पहुँचाती है। पेट के कृमियो को भी यह नष्ट करती है। इसकी मात्रा ७ माशे तक है। (ख० अ०)

कन्दौरी

नाम—

संस्कृत—बिम्बाफल, रक्तफला, तुण्डी, ओष्ठोपमफला। हिन्दी—कन्दूरी, कन्दौरी। मराठी-बिम्बी, गोडतोंडली, कोंडवली। बङ्गाली—तेलाकुचा। गुजराती—गलेडू, गडुरा, घोलामीठां। अरबी-कबरे हिन्द। फारसी—कुंदूरा। तेलगू—दोंडतिरो। तामील—कोवे। लेटिन—Coccinia Indica. Cephalandra Indica.

वर्णन—

कन्दौरी की लताएँ होती हैं। इसकी शाखाएँ बहुत रहती हैं। इसकी बेलें बरसात के अन्दर पैदा होकर फलती फूलती हैं। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के, फूल गुल चांदनी की तरह और फल परवल की

तरह होते हैं। इसके बीज कागजी नींबू के बीज की तरह होते हैं। इसका फल कच्ची हालत में हरा सफेद धारी दार और पकने पर लाल हो जाता है। अलङ्कार साहित्य में यह फल बिम्बा फल के नाम से मशहूर है और इसकी उपमा सुन्दरी स्त्रियों के होठों के साथ दी जाती है। यह फल दो जाति का होता है। एक कडवा और एक मीठा। इसमें से मीठी जाति तरकारी बनाने के काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मीठी कन्दौरी मधुर, शीतल, भारी, स्तनों में दूध पैदा करने वाली, कफ पित्त नाशक तथा दाह ज्वर, रक्त पित्त, खासी, श्वास और क्षय रोग को हरने वाली है।

इसके फल भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मल स्तम्भक, स्तनों में दूध पैदा करने वाले, दुष्पच्य, वात कारक, संकोचक और ज्वर निवारक हैं। ये कोढ़, वात, शरीर की जलन, बच्चों की खासी, वायु नलियों के प्रदाह, श्वास, क्षय, पीलिया, रक्त विकार और पित्त जन्य प्रदाह को दूर करते हैं।

इसके पत्ते मीठे, तिक्त, शीतल, आंतों को सङ्कोचन करने वाले होते हैं। ये ग्राही, वात कारक तथा कफ और पित्त को दुरुस्त करने वाले होते हैं। इसके फूल खुजली को मिटाने वाले तथा पित्त और पीलिया की बीमारी में मुफीद हैं।

कड़वी कन्दौरी—आयुर्वेदिक मत से इसकी कड़वी जाति का फल कड़वा, चरपरा, विरेचक विष निवारक और वमन कारक है। यह कफ, पित्त, मुँह से दुर्गन्ध आना, अरुचि, खासी और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इस बेल के पत्ते सर्द और खुश्क तथा इसके फल सर्द और तर हैं। यह वनस्पति पित्त और खून के विकार और बदन के सब हिस्सों की सूजन में मुफीद है तथा पित्त, कफ, रक्त विकार, दमा, क्षय तथा खासी में फायदेमन्द है। यह अक्ल को कम करने वाली तथा बुद्धि नाशक है। इसके पत्तों का शाक सर्द, मीठा, हजम होने में हलका, काबिज, कसैला और कफ तथा पित्त को मिटाने वाला है। इसकी जड़ सर्द, वीर्य बढ़ाने वाली तथा प्रमेह, बहुमूत्र और सरदर्द को मिटाने वाली होती है। इसके पत्तों का खालिस रस सुजाक की बीमारी में मुफीद है।

बेलफोर और एकिनसन के मतानुसार इस वनस्पति के पत्ते चर्मरोग और सुजाक में उपयोगी हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पत्ते तेल के साथ उबाल कर दाद, खुजली, विसर्पिका इत्यादि चर्म रोगों में काम में लिये जाते हैं। इनका तेल घावों के ऊपर भी लगाया जाता है। इस वस्तु का उपयोग प्राचीन स्नायु रोग और पुराने नासूरों पर भी किया जाता है। इसके पत्ते और छाल का काढ़ा कफ निस्सारक, आक्षेप निवारक, बच्चों की खासी और वायु नली सम्बन्धी जुकाम में उपयोगी है।

सुश्रुत के मतानुसार इसका फल सांप और बिच्छू के जहर में लाभदायक है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प और बिच्छू के जहर में बिलकुल निरुपयोगी है।

कन्दोरी और मधुमेह रोग—आज कल के नवीन अन्वेषणों से यह मालूम हुआ है कि यह औषधि मधुमेह रोग के अन्दर बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। बंगाल और कलकत्ते के वैद्य लोग मधुमेह अर्थात् पेशाब में शक्कर जाने की बीमारी में इस औषधि को बहुत प्रभावशाली मानते हैं। इस वनस्पति का हरा रस निकालकर कलकत्ता मेडिकल कालेज हास्पिटल के रोगियों को दिया गया। इसका परिणाम अच्छा पाया गया। शक्कर की मात्रा बहुत कम हो गई और कई रोगी तो बिलकुल दुरुस्त हो गये। कई वर्षों के पहिले डिपार्टमेंट आफ फिजिओलॉजी में इस औषधि के परीक्षण किये गये थे, मगर उसके परिणाम अब अप्राप्य हैं। मधुमेह रोग में इस औषधि के उपयोगी होने का विश्वास आयुर्वेदिक चिकित्सकों में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वे प्रायः इसके ताजे रस को जो कि इसकी जड़ों और पत्तों से प्राप्त होता है, स्वतंत्र रूप से अथवा अन्य औषधियों के साथ में उपयोग करते आ रहे हैं।

कर्नल चोपरा का कथन है कि "इस वनस्पति का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें एन्झिम और (Enzyme) हरमोन (Hormone) नामक तत्व तथा कुछ उपक्षार पाये जाते हैं। इस औषधि से प्राप्त एन्झिम्स और एलकेलाइडस का खरगोशों के ऊपर परीक्षण किया गया, किन्तु इनमें शक्कर को कम करने का गुण नहीं पाया गया। हरमोन को भी खरगोश के ऊपर अजमाया गया और बराबर सात रोज तक रक्त की परीक्षा की गई किन्तु कोई विशेष फरक नहीं हुआ।

अस्पताल में पड़े हुए बीमारों पर भी इस की परीक्षा की गई। इस वनस्पति के और इसकी जड़ के रस को दिया गया, किन्तु शक्कर की मात्रा में कुछ भी अन्तर नहीं आया। बाद में इन्सूलीन (Insulin) की मात्रा देने पर मूत्र के साथ शक्कर का जाना बिलकुल बन्द हो गया।

इस वनस्पति के देने से शक्कर की मात्रा में जो भी लाभ मालूम पड़ा, उसके दूसरे कारण भी हो सकते हैं। इस देश में जो मधुमेह की बीमारी प्रचलित हैं उसमें अधिकतर ऐसी होती है कि जिसमें शक्कर कभी २ जाया करती है। इस किस्म के बीमार प्रायः बिना औषधि के प्रयोग के ही आराम हो जाते हैं। अनुकूल खान पान और शारीरिक परिश्रम में कमी होने पर ऐसे बीमार आराम हो जाया करते हैं। सिर्फ एक ही उदाहरण ऐसा पाया जाता है कि जिसमें इस वनस्पति के ताजा रस के प्रयोग से लाभ हुआ। इसकी ५ खुराक देने पर ही शक्कर की मात्रा आधी रह गई। इसके बाद औषधि का देना बन्द कर दिया गया, किन्तु बीमारी में सुधार होता गया और ११ दिन के बाद बीमारी नाम मात्र की रह गई। इस विषय में विशेष जांच करने पर यह पाया गया कि वह बीमार बिलकुल प्रारंभिक अवस्था में था। दूसरे बीमार के ऊपर इसे अजमाया, मगर न तो उसमें शक्कर की मात्रा कम हुई और न उसका वजन बढ़ा। खाद्य की मात्रा कम करने पर शक्कर की मात्रा में भी अन्तर हुआ। इससे मालूम होता है कि इस वनस्पति का ताजा रस मधुमेह की बीमारी में शक्कर की मात्रा कम करने में लाभदायक नहीं है। इसमें पाये जाने वाले पदार्थों में कोई भी पदार्थ शक्कर की मात्रा कम नहीं कर सकता है।"

दत्त के मतानुसार इसकी जड़ की गठानों का रस मधुमेह की बीमारी पर कविराज लोग दूसरी औषधियों के साथ देते चले आये हैं। स्वयं दत्त ने कई बीमारों को इस औषधि के इस्तेमाल से आराम

किया। वे ऐसे कई बीमारों को बतलाते हैं जिन्होंने कि इसकी जड के रस को बंगेश्वर या सोमनाथ रस के साथ लिया और उन्हें लाभ हुआ। इसका निकाला हुआ ताजा रस १ तोला बंगेश्वर या सोमनाथ रस की १ गोली के साथ प्रतिदिन दिया जाना चाहिये।

औस्तंग आयुर्वेदिक कालेज के निर्माता यामिनिभूषण मधुमेह की बीमारी में इसका उपयोग लिया करते थे और इसमें वे सफल भी हुए थे। उनका कहना है कि इसका ताजा रस १/१ औंस की मात्रा में प्रतिदिन प्रातः काल में लिया जाना चाहिये।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि यद्यपि कर्नल चोपरा और ट्रापिकल स्कूल के अन्य विद्वान मधुमेह की बीमारी में इसको निरुपयोगी बतलाते हैं। फिर भी अन्य कई प्रतिष्ठित और जिम्मेदार विद्वानों का समर्थन इस रोग के सम्बन्ध में इस औषधि को प्राप्त है।

उपयोग—

विरेचन—इसकी जड की छाल के दो माशे चूर्ण की फक्की लेने से अच्छी तरह से दस्त लग जाते है।

जबान का जख्म—इसके हरे फलों को चूसने से जबान का जख्म मिटता है।

प्रमेह और बहुमूत्र—इसकी जड़ की छाल का ताजा रस एक तोले की मात्रा में प्रतिदिन प्रातः काल देने से प्रमेह और बहुमूत्र रोग में लाभ होता है।

कर्ण रोग—इस वनस्पति के रस को तेल और पानी के साथ मिलाकर कान में डालने से लाभ होता है।

कदलय

नाम—

हिन्दी—कदलय। बंगाली—कोडलिया, कूललिय। गुजराती—फोणोपानडियो। बम्बई—जंगली मेथी, रानमेथी। मराठी—रणमेथी। लेटिन—Desmodium Triflorum (डेसमोडियम ट्रिफ्लोरम) तेलगू—मुनुदुमुदु।

वर्णन—

यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसका तना नाजुक होता हैं। इसके पत्ते तीन तीन साथ लगते है। इसका पौधा मेथी की तरह होता है। फूल एक से लगाकर पांच तक के गुच्छे में होते हैं। इसके पापडे लम्बे और चौड़े रहते है। इनके ऊपर की किनारी एक कटी हुई और एक सीधी रहती है। यह भारत के गर्म प्रान्तों में सब दूर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु दुग्धवर्धक, पाचक और क्षुधा रोपक होती है।

वेट के मतानुसार इसके ताजे पत्ते अच्छे न होनेवाले घाव और नासूर पर लगाये जाते हैं।

ये दूध बढाने वाले होते हैं। इसके पीसे हुए पत्ते कमल के साथ में खराब घावों और खुजली पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। देहातों में इस बनस्पति का ताजा रस बच्चों की खांसी में दिया जाता है।

सीलोन में यह पेचिश के काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह दूध को बढानेवाला है और आमातिसार और आक्षेप में काम लिया जाता है।

——❀——

कनकचंपा

हिन्दी—कनकचम्पा, कठचम्पा, कदियार। बंगाल—कनकचम्पा। बाम्बे—कनकचम्पा, कर्णिकार। ब्रम्हा—थमजमवइसोक। कनारीज-कनकचम्पक, राजतरु। कोकनी-कनोकचम्पो। नेपाल-हटिपैला। संस्कृत—कर्णिकार, मुश्कुद, पदोत्पल, परिव्याधि। तामील—वेनगू। तेलगु—मत्सकन्द उरीया—कोनोकचम्पा, मुशुकुन्दो।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक फिसलने छिलटे वाला ऊँचा वृक्ष होता है। इसके छिलके का रंग राख के रंग सरीखा होता है। इसके कोमल हिस्सों पर हलका रुआं रहता है। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। इसके पत्ते २५ से ३५ सेंटीमीटर तक लम्बे और २५ से ३० से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये ऊपर के तरफ फिसलने और पीठ पर कुछ रुंए दार होते हैं। इनके पत्र मन्द दस से तीस से० मी० तक लम्बे रहते हैं। इसके फूल सुगन्धित, सफेद और स्वतन्त्र या जोड में रहते हैं। इसकी फलियां दस से पन्द्रह से० मी० तक लम्बी रहती है। इसके बीजे दबे हुए और पतले रहते हैं। इसका पका फल काफी समय तक वृक्ष पर ठहरा रहता है।

उत्पति स्थान—

यह हिमालय के नीचे के हिस्से मे व पहाडियों पर ४००० फीट की ऊंचाई तक, बंगाल, चटगाव, खासिया पहाड़ियाँ, मनीपुर, टेनासिरम, ब्रह्मा और उत्तरी कनाडा में पैदा होता है। बाम्बे प्रेसीडेंसी में यह काफी तादाद में बोया जाता है और स्याम में भी पैदा होता है।

गुण—

आयुर्वेद—इसका फूल कडवा, कसैला, पौष्टिक, मृदु विरेचक व कृमिनाशक होता है। यह कफ, प्रदाह, रक्त सम्बन्धी तकलीफें, उदर पीडा व जलोदर को निवारण करता है। व्रण, कुष्ट, मूत्राशय सम्बन्धी तकलीफे, व अर्बुद में भी यह लाभ दाई है। इसके पत्तों के ऊपर का बींट घाव का खून बन्द करने के लिये उपयोग में लिया जाता है।

इसके फूल पौष्टिक वस्तु की तौर पर काम में लिये जाते हैं। कोकन में इसके फूल और इसका छिलका जलाकर कमल के साथ मे मिलाकर छोटी माता की फुन्सियों के पीव को बन्द करने के काम मे लिया जाता है।

चोपरा के मतानुसार इसके फूल और इसका छिलका छोटी माता की फुन्सियों के पीव को बन्द करने के लिये काम मे लिया जाता है। इसके पत्ते रक्तस्राव को बन्द करने के लिये उपयोगी हैं।

कनकौवा

नाम—

अरबी—कनकौवा, बकलतअलगराब।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति है, जो बगीचों और तर जगहों में पैदा होती है। इसके पत्ते जुडमा होते हैं। इसकी एक जाति ऐसी होती है जिसके पत्ते कौवे की चोंच की तरह होते हैं, इसलिये कई जगह इसको कौवाशाक भी कहते हैं। (खजाइनुल अदविया)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह औषधि कफ पैदा करती है। पित्त का नाश करती है। मिजाज़ को खुश रखती है, मूत्रेंद्रिय को बल देती है। सर्दी पैदा करती है, आखों के मर्ज और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में मुफीद है। (ख० अ०)

कनगरच

नाम—

फारसी—कनगरचद। अरबी—तराव अलका।

वर्णन—

यह एक प्रकार का गोंद है जो कनगर या हर्शिप नामक झाड़ से निकलता है। कई लोग इसे सरसों का गोंद समझते हैं। मगर यह उनकी गलती है। (ख० अ०)

गुण, दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। यह एक वमनकारक वस्तु है। इस गोंद को थोड़ी-सी शिकञ्जवीन और शहद के साथ देने से यह कफ और पित्त को आसानी से वमन के द्वारा निकाल देता है। इसका लेप सूजन को आराम करता है।

यह दिमाग को नुकसान कारक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये घी का उपयोग करना चाहिये। इसका प्रतिनिधि मेनफल है। इसकी मात्रा तीन माशे से सात माशे तक है। (ख० अ०)

कनफूल

नाम—

पंजाब—बारन, दूदल, दूधचथल, दूदली, कनफूल, रदम, शामुकी। सिन्ध—बाथुर बुथर। डेकन—पाथरी। लेटिन—Taraxacum Officinale (टेरेक्सेकम आफिशीनेल)

उत्पत्ति स्थान—यह हिमालय में एक हजार फीट से अठारह हजार फीट की ऊँचाई तक प्रायः सभी स्थानों में होती है।

वानस्पतिक विवरण—इस वनस्पति का रस दूधिया होता है। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। ये तीखी नोक वाले और कटे हुए रहते हैं। इसके फूल पीले होते हैं। इसकी मंजरी मुलायम होती है।

गुण—इसकी जड़ मूत्रल, पौष्टिक और मृदु विरेचक रहती है। यह खास करके मूत्राशय और यकृत की बीमारियों में काम में आती है, यूरोप में इन प्रयोगों में यह विशेष रूप से ली जाती है।

हक्सबूलर के मतानुसार बिलोचिस्तान में किरोनी नामके स्थान पर इसके पत्ते बफारा देने के काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मूत्रल है। यह यकृत की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसमें कटुतत्व पाया जाता है। यह हिमालय में और उटकमण्ड की पहाड़ी पर होती है। इसके सिवाय यह बाहर से भी मंगवाई जाती है। देशी जड़ बाहर से आई हुई जड़के मुकाबिले में छोटी रहती है। किन्तु गुणों में उत्तम होती है। इसकी जड को पीसकर दस से लगाकर पन्द्रह ग्रेन तक की खुराक में उत्तेजक और यकृतरोगनाशक औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसकी जड के काढ़े को एक या दो औंस की खुराक में पीलिया, यकृत और अपचन रोग में भी उपयोग में लेते हैं।

कनफुटी

नाम—

संस्कृत—करन्ही, कर्णस्फोटा, नागना, पर्वतागी, ज्योतिष्मती, इत्यादि। मराठी—कनफुटी, कपालफोडी। बंगाल—लता फटकरी, नयाफटकी, नोआफुटकी, सिवझुल। बाम्बे—बोधा, कनफुटी। कनाड़ी—अग्निवल्लि, कक्करलता, कङ्कु। गुजराती—करोलियो। पोरबन्दर—कगडोलियो। तामील—कोटेव्हान, मुडकटन, सोलियान, तेलगू—बुडाकाकरा, केसरीतिग, ज्योतिष्मतीतिग। लेटिन-Cordiospermum Halicacabum (कार्डियोस्परमम हेलिकेकबम)

वर्णन—

यह एक प्रकार की वर्ष जीवी वनस्पति होती है। कई लोगों के मत से यह मालकांगनी की ही एक उपजाति होती है। इसकी शाखाएँ बडी नाजुक और फिसलनी होती हैं। इसके पत्ते तीखी नोकवाले, फूल सफेद, फलिया गोल, लम्बी और चपटी तथा बीज गोल, काले और फिसलने वाले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड पसीना लाने वाली, मूत्रल, विरेचक और वमनोत्पादक होती है। ज्वर में भी इसका उपयोग किया जाता है। चरक और सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश में भी उपयोगी है। चरक, वाग्भट्ट के मतानुसार यह बिच्छू के जहर में भी लाभ दायक है।

एंसली के मतानुसार इसके पत्तों को अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर आमवात और कटि वात के रोगियों को पिलाया जाता है। इसके सेंके हुए पत्ते ऋतुस्राव नियामक माने गये हैं। यह सारी वनस्पति आमवात पर घी और पानी के साथ पीसकर लगाई जाती है। इसके पत्तों को गुड के साथ मिलाकर तेल में उबालकर आंखों के फोड़ों पर लगाने के काम में लेते हैं।

इस वनस्पति के पञ्चाग के दूध के साथ मिलाकर सूजन और अर्बुद की सख्त जगह पर लगाने से वह जगह मुलायम हो जाती है। इस वनस्पति का रस मासिक धर्म को नियमित करने के काम में लिया जाता है। सुजाक और फुफ्फुस सम्बन्धी पीडा में यह शान्तिदायक माना गया है। कान के दर्द को दूर करने के लिये इसे कान में भी डालते हैं।

भूलु लोग इस वनस्पति को कई कामों में लेते हैं। इसके पत्ते और छाल का शीत निर्यास, आमातिसार, रक्तातिसार में, वस्ति क्रिया के काम में लिया जाता है। सिरदर्द में इसके पत्तों को कुचल कर उनका धूम्रपान करते हैं। मूत्राशय की तकलीफ में इसके पत्तों का पुल्टिस बनाकर गुदा पर बांधते हैं। उपदंश जन्य घावों पर भी इसके पत्तों का लेप किया जाता है।

इण्डो चायना में यह वनस्पति कृमि नाशक और प्रमेह निवारक मानी गई है। मेडागास्कर में इसकी जड वमनकारक, विरेचक मूत्रल और पसीना लाने वाली मानी जाती है। इसकी जड और पत्ते रक्तार्श, नष्टार्तव, सुजाक, आमवात और आंतों के कृमियों के नाश करने के काम में लिये जाते हैं।

कोमान के मतानुसार इसका काढ़ा पुरातन आमवात के रोगियों को दिया गया, मगर उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

राबर्ट्स के मतानुसार सीलोन में इसका स्वरस साप के जहर को उतारने के लिये पिलाया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह औषधि वमनकारक, विरेचक और अग्नि वर्धक है। यह नष्टार्तव और उपदंश में भी काम में ली जाती है। इसमें सेपानिन नामक पदार्थ पाया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसकी जड़, लकडी और पत्ते सभी सांप और बिच्छू के जहर में निरुपयोगी हैं।

डॉक्टर यू० सी० दत्त के मतानुसार इसका निम्न लिखित प्रयोग ऋतुस्राव नियामक होता है।

उपयोग—

करवी के पत्ते, पोटेसियम कारबोनेट, बच्छ की जड और कसन की जड का छिलका इन चारों चीजों को समान भाग लेकर, दूध में पीस कर एक ड्राम की मात्रा में प्रतिदिन लेने से मासिक धर्म खुल कर हो जाता है। यह सारी वनस्पति आमवात और कटिवात पर भीतरी और बाहरी प्रयोग में ली जाती है।

कनरू कोंदई

नाम—

हिन्दी—कोंदई, कोंदारि। गुजराती—लोद्रि। पंजाब—दजकर, जिदकर, खटई, किमो, शेरावनी, फगल। बाम्बे—अत्रुन, तम्बट। कनाडी—मिर्दि, मिरिदि। मध्यप्रदेश—रैंच। मलायलम—कुरमुलि। मद्रास—कनरू। तामील—कोदुमुन्डि, सोतङ्कला। तेलगू—कनारेगु। उड़िया—बोनिसो, कनकुई। लेटिन-Flacourtia Sepiaria (फ्लेकोरशिया फ्लेपिआरिया)

उत्पत्ति स्थान—

कुमाऊ, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तरी ब्रह्मा, अण्डमान, पश्चिमी प्रायद्वीप के सूखे जङ्गल, मद्रास प्रेसिडेन्सी, खास करके कारोमण्डल का समुद्र तट और दक्षिण।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक बहुत कांटेदार छोटी झाड़ी है। इसके कांटे सीधे और तीखे रहते हैं। कभी-कभी इसकी शाखाएँ भी होती हैं। उनमें कई पत्ते और फूल रहते हैं। इसके फूल छोटे और हरे होते हैं। फल मुलायम और लाल होता है। पकने पर इसका रंग गहरा हो जाता है।

गुण—

इसके पत्तों और जड़ का शीत निर्यास सर्प दंश में दिया जाता है। इसके छिलके तिल्ली के तेल में मिलाकर एक लेप बनाते हैं जो कि आमवात में उपयोगी है।

मेडागास्कर में इसके पत्तों का निर्यास सर्पदंश में दिया जाता है। इसके छिलटे को पीस कर तेल में मिलाकर गठिया पर लेप करने के काम में लेते हैं। इसकी जड़ की राख मूत्राशय की बीमारियों में उत्तम मानी जाती है।

केस और मस्कर के मतानुसार इसके पत्ते और जड़ दोनों ही सर्पविष प्रतिरोधक नहीं हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्तों का शीत निर्यास सर्पदंश में काम में लिया जाता है।

कनहान (कुहान)

वर्णन—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह एक छोटी जाति का पौधा होता है। यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क रहता है। इसके सूंघने से दिमाग़ में गर्मी पैदा होती है। इस बूटी में खास विशेषता यह है कि इससे बिच्छू बहुत डरता है। जहां यह बूटी रहती है वहां बिच्छू नहीं आता। अगर इसके पत्ते बिच्छू पर डाल दिये जाय तो वह मर जाता है। इसके अतिरिक्त यह वस्तु हाजमे को बढ़ाती है। इसकी मात्रा ४ माशे से ६ माशे तक की है। (ख० अ०)

कनावेरी

नाम—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार इसे खुरासानी में वरगश्त, फारसी में वरनद, नजनद। अरबी में अमूल व कमूल कहते हैं।

वर्णन—

यह एक किस्म की शाक होती है जो वसन्त ऋतु में पैदा होती है। इसके पत्ते पालक के पत्तों की तरह मगर उनसे बड़े होते हैं। फूल सफेद और छोटा होता है। इसके फलियां लगती हैं जिनमें बीज होते हैं। इसका जायका चरपरा होता है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क है। यह सीने और फेफड़े गन्दगी को दूर करती है। जिगर, फेफड़े और तिल्ली के सुद्दे को खोलती है। यह मूत्र निस्सारक और दुग्धवर्धक है व कब्ज को दूर करती है। यह पीलिया में लाभदायक है। इसका लेप बवासीर में फायदा पहुँचाता है, वरम को दूर करता है; चेहरे को झाई को मिटाता है। इसके पत्तों का लेप करने से और इसके रस के सिद्ध किये हुए तेल को मलने से बहक सफेद (Pityriasis) मिट जाती है। (ख० अ०)

कनेर

नाम—

संस्कृत—अश्वमारक, चन्दन, करवीर, हरिप्रिय, गौरिपुष्प इत्यादि। हिन्दी—कनेर। बंगला—कर्वी, लाल करवी। गुजराती—कनेर। मराठी—कण्हेर, पाढरी, ताम्बडी। तेलगू—गनेरु करवीरम्। फारसी—खरजेहरा। अरबी—डिफली, सुमुल, हिमारदखली। लेटिन—Nerium Odorum (नीरीयम ओडोरम)।

वर्णन—

यह एक बड़ा हमेशा हरा रहने वाला झाडी नुमा पौधा होता है। भारतवर्ष की पुष्पवाटिकाओं में यह अक्सर बोया जाता है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और लम्बे रहते हैं। इसके फूल लाल, गुलाबी, और सफेद रंग के होते हैं। देव पूजा मे आने के कारण भारतवर्ष में कनेर का पुष्प बहुत प्रसिद्ध है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से सफेद कनेर कटु, तिक्त, कसेली, तीक्ष्ण वीर्य, आंतों को सिकोड़नेवाली, तथा प्रमेह, कृमि, कुष्ठ, घाव, बवासीर और वात रोग को नष्ट करने वाली है। यह

नेत्रों को हितकारी, हलकी, तथा कृमि, कुष्ट और विस्फोट रोग को दूर करने वाली एवं घोड़े के प्राणों को हरने वाली होती है। इसकी जड की मात्रा १/८ रत्ती से एक रत्ती तक की है।

लाल कनेर शोधक, चरपरी, पचने के समय कडवी और कुष्ट मे लाभदायक होती है। सब प्रकार की कनेर अत्यन्त जहरीली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से कनेर सहरी और जंगली दो किस्म की होती हैं। जंगली कनेर के पत्ते खुरपे की तरह और बहुत पतले होते हैं। इसकी शाखें पतली और जमीन पर बिछी हुई होती है। इसमें पत्तो के पास काटे होते हैं। सहरी या बस्तानी कनेर में काटे नहीं होते। एक जल कनेर होती हैं जो तालावों या नदियों के आसपास होती है।

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। इसकी जड कडवी, कामोद्दीपक, पौष्टिक, और पेट की पुरानी पीडाओं के लिये मुफीद होती है। जोड़ों के दर्द में भी यह लाभ दायक है। यह बहुत विषैली है। सर्प विष को भी दूर करने का इसमें माद्दा है। इसके फूल स्वाद में कडवे होते हैं। ये प्रदाह, मज्जा और जोडों के दर्द, कटिवात, शिर दर्द और खुजली में लाभदायक होते हैं।

चर्म रोगों के लिये इसका तेल यूनानी हकीम बहुत लाभदायक मानते हैं। उनका कथन है कि इसका तेल खुजली को १ घण्टे के अन्दर कम कर देता है। एक प्रकार की खुजली जो नाभि के नीचे से एडियों तक होती है और जिसमें बहुत खुजली चलती है, यहा तक कि खुजाते २ चमडा काला हाथी के चमड़े की तरह हो जाता है। किसी दवा से इसमें लाभ नहीं पहुँचता, ऐसे वक्त में कनेर का तेल बडा लाभ पहुँचाता है। इस तेल को निकालने की तरकीब यह है—सफेद कनेर के तीन सेर पत्तों को लेकर छोटे २ टुकड़े करके बड़े बरतन में पानी के साथ डालकर तीन पहर तक जोश दें। फिर आच से उतार कर ऐसे बरतन में सबको डाल दें जिसमें ठडा पानी भरा हो। जब सब पत्ते पैदे के नीचे बैठ जाय तब पानी पर कुछ तैल सा तिरता हुआ नजर आयगा। उसको हाथ से या रुई के फाये से लेकर एक कटोरे मे इकट्ठा करलें। फिर इस तेल में नीला थूथा तीन मासे, सफेदा ७ मासे, फिटकडी तीन मासे, मुर्दासिंग चार मासे और रस कपूर ६ मासे बारीक पीसकर मिलादें और फिर खुजली के ऊपर इसकी मालिश करे।

यूनानी हकीम इस औषधि के स्तम्भक गुण के भी बड़े कायल हैं। उनका कहना है कि सफेद फूलों वाली कनेर को जड़ को गाय के दूध में जोश दे। फिर उस दूध का दही जमाकर उसका मक्खन निकाल कर थोडी २ मात्रा में खाने से मनुष्य को काम शक्ति और स्त्री सहवास में स्तम्भन शक्ति बहुत अधिक बढती है।

सफेद कनेर की डाली से दतून करने से हिलते हुए दात मजबूत होते हैं और दांतों को बड़ा लाभ होता है। इसके फूलों को मलने से चेहरे की सुन्दरता बढ़ती है।

शार्ङ्गधर के मत से इसकी जड़ को पानी के साथ पीस कर उपदंश के घावों पर लगाने से लाभ होता है।

कनेर पीली (Thevetia Neriefolia)

यह कनेर की एक जाति है जिसके फूल पीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

हृदय के ऊपर (Heart Disease) इसकी क्रिया "डिजीटेलिस" नामक अंगरेजी औषधि की तरह ही होती है। इसलिये इसको कभी भी भूखे पेट न लेकर कुछ भोजन किये के बाद ही लेना चाहिये। बहुत छोटी मात्रा में यह हृदय को अत्यन्त बल देने वाली वस्तु है। मगर अधिक मात्रा में यह हृदय पर घातक असर करती है जिससे शरीर ठण्डा पड़ जाता है। नाड़ी की गति एकदम कम हो जाती है, बायँठे आने लगते हैं और हृदय तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया बन्द हो जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

चोपरा और मुकर्जी ने इसके रासायनिक विश्लेषण करके जनवरी सन् १९३३ के इंडियनी मेडिकल रिसर्च में निम्न लिखित तथ्य प्रगट किये।

(१) पीली कनेर का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व जो कि एक प्रकार का ग्लुकोसाइड है, थेवेटिन (Thevetin) कहलाता है।

(२) थेवेटिन मेंढ़क, चूहे, सूअर, बिल्ली, और अन्य प्राणियों के लिये विषैला है। यह सबक्यूटेनिअस इंजेक्शन में दिये जाने और नेत्र शुक्र रोग के ऊपर लगाये जाने पर कोई भी प्रदाहिक असर नहीं करता है।

(३) थेवेटिन का पाचन क्रिया के ऊपर कोई भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। श्वास क्रिया पर भी इसका कोई सीधा प्रभाव नहीं है।

(४) थेवेटिन का मूत्राशय, गर्भाशय, बृहदंत्र के मज्जा और रक्तवाहिनी नलियों पर उत्तेजक असर होता है।

(५) थेवेटिन का रक्त प्रवाह क्रिया पर साफ २ असर होता है। इसका असर डिजीटेलिस की जाति की औषधियों ही की तरह होता है।

(६) इस क्रिया के दो कारण मालूम होते हैं। एक तो यह कि हृदय की मज्जाओं पर इसका असर होता है। दूसरा यह कि रक्त क्रिया प्रणाली पर भी इसका असर होता है। यह प्रभाव कम ज्यादा मात्रा के अनुपात से हृदय के स्नायु व पेशियों पर दृष्टि गोचर होता है।

(७) इसमें हृदय को ताकत देने वाले गुण मौजूद हैं। साथ ही इसके जहरीले गुण भी बहुत प्रभावशाली हैं। इन दोनों को प्रथक्करण करके इसका उपयोग में लिया जाना बहुत ही कठिन है।

मद्रास प्रेसिडेंसी कालेज के वी० डे० ने इसके अन्दर थेवेटिडाइन नामक एक और ग्लुकोसाइड का विश्लेषण किया इन के मत को "कलकत्ता स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन्स" ने भी पुष्ट किया।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके जहरीले गुण के कारण यह वस्तु चिकित्सा शास्त्र में अधिक तादाद में काम में नहीं ली जाती है। आयुर्वेद में ज्वर दूर करने के लिये इसकी छाल के टिंक्चर काम में लिये जाते हैं इसको अन्तः प्रयोग में उपयोग में लेना बहुत खतरनाक है। क्योंकि यह वस्तु अपने जहरीले प्रभाव को दिखलाये बिना नहीं मानती। इसके बीजों में पाये जाने वाले ग्लूकोसाइड हृदय की पेशियों पर बहुत तेज असर दिखलाते हैं।

कनेर के विषका प्रभाव—

अधिक मात्रा में कनेर खाने से पेट फूलता है, आंखे उबल आती हैं, नाड़ी की गति एक दम क्षीण हो जाती है, बायंठे आते हैं और हृदय की धड़कन और श्वासोच्छ्वास की क्रिया बन्द होने लगती है। ऐसी स्थिति में एक यूनानी हकीम के मतानुसार छाछ और इसबगोल का लुआब, रोगन बादाम शीरीं, कतीरे का लुआ, इत्यादि वस्तुयें खिलाने से तथा तरावट चीजों का इस्तेमाल करने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—

(१) *खुजली और चर्म रोग*— कनेर के पत्ते या फूल को पानी में जोश दें। फिर इस पानी से आधे वजन का जैतून का तेल लेकर उस पानी मे डाल दें और जोश दें। जब पानी जल करके केवल तेल मात्र रह जाय तब उसमें चौथाई वजन मोम मिला कर उतार लें। इस तेल को हर प्रकार की खुजली पर मालिश करने से खुजली में बडा लाभ होता है।

(२) टपकाया हुआ दही, पीला गन्धक और कनेर के पत्ते समान भाग लेकर बारीक पीस कर बकरी की चर्बी में मिला कर तर खुजली पर मलने से एक हफ्ते में खुजली मिट जाती है।

(3) इसकी जड के काढ़े में राई का तेल डालकर औटावें। जब पानी जल कर तेल मात्र रह जाय तब उसको उतार कर छानलें। इस तेल को चर्म रोगों पर मलने से बडा लाभ होता है।

(४) अंगूर के सिरके में इसकी जड को पीस कर दाद पर लगाने से दाद बहुत जल्दी आराम हो जाते हैं।

नेत्र रोग—हरी सौंफ और काकंज के रस के साथ इसको पीस कर आंख में लगाने से नजला पलकों की मुटाई, जाला, फूली इत्यादि नेत्र रोग आराम होते हैं।

नपुंसकता—कनेर की जड को कटाली के रस में खरल करके इन्द्री (लिंग) पर लेप करने से नपुंसकता मिटती है और लिंगेन्द्रिय पुष्ट होती है।

जोड़ों का दर्द— इसके पत्तों को औटा कर और पीस कर तेल में मिला कर मालिश करने से जोडों का दर्द दूर होता है।

बनावटें—

वात नाशक तेल— सफेद कनेर के पत्ते, असगन्ध के पत्ते, सरसों के पत्ते, आंवडे के पत्ते, सेंजने के पत्ते इन सबो को समान भाग लेकर, कूट कर इनका ४ सेर रस निकाल लेना चाहिये।

इस रस में १ सेर काले तिल का तेल डाल देना चाहिये तथा कनेर के पत्ते, असगन्ध के पत्ते, सहजने के पत्ते और आक के पत्ते, बछ, आंबा हलदी, मेदा लकडी और सज्जीखार, राई और सूँठ इन सबों को पीस कर बनाई हुई लुग्दी तेल के बीच में रख कर हलकी की आच से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसमें तीन माशे बछनाग, तीन माशे अफीम, व छः माशे कपूर का चूर्ण डाल कर छान लेना चाहिये। इस तेल का मालिश करने से सब प्रकार के लकवा, गठिया वगैरे रोगों में लाभ होता है। (जङ्गलनी जडी बूँटी)

चर्म रोग नाशक तेल—कनेर की जड का क्वाथ आधा सेर, गौमूत्र आधा सेर और काली तिल्ली का तेल एक पाव इन सबों को मिलाकर हलकी आंच पर चढ़ाना चाहिये इसमें चित्रक की जड और बाय बिडङ्ग पांच-पाच तोला लेकर, पानी के साथ पीस कर उसकी लुग्दी भी उस तेल के बीच में रख देना चाहिये। मन्दाग्नि से पकते हुए जब सब चीजें जल कर केवल तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस की मालिश से खुजली, खसरा इत्यादि चर्म रोग आराम होते हैं।

स्तम्भन शक्ति—कनेर की जड की छाल, इलायची के बीज, केशर, सरपंखाकी जड, लवंग, मोच रस, जायफल, रुमीमस्तगी, भांग, अकलकरा, पीपर, अफीम, भीमसेनी कपूर, कस्तूरी, बिधायरे के बीज, ज्वार की जड, जावित्री, धतूरे के बीज, खुरासानी, अजवायन और रस सिंदूर, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर नागरबेल के पान के रस में खरल करके काली मिरच के बराबर गोलिएँ बना लेना चाहिये। स्त्री सहवास के दो घण्टे पूर्व इसमें से एक गोली को पान के साथ खाकर ऊपर से दूध पीने से बहुत स्तम्भन होता है।

श्वेत ताम्र भस्म—शुद्ध किये हुए १ रुपये भर बढिया तावे का जाडा पतरा करके उस पतरे के वजनके बराबर ही, शुद्ध सोनामुखी नामक उपधातु को लेकर उसे बारीक पीसकर एक मिट्टी के सरावले में उसको आधी बिछाकर, उस पर तावे का पत्रा रखकर शेष आधी सोनामुखी को उस पतरे के ऊपर बिछा देना चाहिये। फिर उस सरावले पर एक दूसरा सरावला ढककर कपड मिट्टी करके, गज पुट में रखकर फूक देना चाहिये जिससे काले रग की भस्म तैयार होगी। इस भस्म को कलिहारी की जड़—जो कि कंद की तरह होती है—के रस में खरल करके टिकडी बनाकर, सरावसंपुट में रखकर गजपुट में फूंक देना चाहिये। इस प्रकार ७ बार करना चाहिये। उसके पश्चात् (नागफनी थूंहर) लाल डोडे के रस में उसको घोटकर, टिकड़ी बनाकर सुखालेना चाहिये। उसके पश्चात् आंकडे के दूध में सपेद कनेर के फूल को खरल करके उसकी लूग्दी में उस टिकडी को रखकर, सरावसंपुट में कपड मिट्टी करके गज पुट में फूंकना चाहिये। इस प्रकार इसके २१ पुट देना चाहिये जिससे सुन्दर, सफेद रंग की ताम्रभस्म तैयार हो जायगी।

जन साधरण में तावे की सफेद भस्म के अलौकिक गुणों के सम्बध में अत्यन्त अतिशयोक्ति की भरी हुई "किंवदन्तियां" प्रचलित हैं। वास्तव में यह भस्म अत्यन्त प्रभावशाली और चमत्कार पूर्ण तथा भरा उग्र होती है। इसलिये इसका उपयोग अत्यन्त अनुभवी वैद्यों को, राजा महाराजाओं या

श्रीमंत लोगों के बीच ही करना चाहिये। साधारण ज्ञानवालों को इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसकी मात्रा १ से २ चावल तक की है जिसको १० तोला घी के साथ देना चाहिये। इतने पर भी यदि गर्मी ज्यादा मालूम पडे तो दूध और घी को मिलाकर पीना चाहिये। इसका प्रयोग ७ दिन से अधिक नहीं करना चाहिये। यह भस्म नपुंसकता, कुष्ट, पक्षाघात, उदररोग, वातरक्त, इत्यादि रोगों को दूर करती है। इसको लेते समय, तेल गुड़, खटाई, दही, लाल मिरची इत्यादि चीजें खाने में नहीं लेना चाहिये।

कनोचा

नाम

हिन्दी—कनोचा, कनोका, हजारमनी। गुजराती—कनोछा। अरबी- मरूर। फारसी—मररशात्। तेलगू- नलौसरेकि। लेटिन– Phyllanthus maderas patensis (फाइलेंथस मेडेरस पेटेंसोस)

वर्णन—

यह वनस्पति फिसलने वाले प्रकाण्ड वाली होती है। इसके पत्ते फैले हुए रहते हैं। ये मुलायम अण्डाकार और गोल होते हैं। इसकी फलिया गोल और दबी हुई रहती हैं। इसके बीज बदामी रंग के सुर्खी माइल होते हैं। यह वनस्पति भारत और सिलोन के शुष्क भाग, अफ्रिका के गरम भाग तथा अरब, जावा, चीन और आस्ट्रेलिया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक निघण्टों में इस औषधि का वर्णन नहीं मिलता है।

यूनानी मत– यूनानी मत मे इसके बीज दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर हैं। किसी २ के मत से यह गरम और खुश्क है। इसके पत्ते कफ निस्सारक और ज्वर निवारक होते हैं। ये पथरी में लाभ पहुँचाते हैं। इसके बीज बद जायका, पेट के अफरे को दूर करने वाले और आंतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। ये यकृत के लिये पौष्टिक, मूत्रल और पसीना लाने वाले होते हैं। खांसी, कर्ण रोग, शूल, नेत्रों की पीड़ा और जलोदर में भी ये लाभ दायक हैं।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार फोड़ों को पकाने के लिये अलसी के बीजों की अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है। आंतों के फोडे और जख्म में भी ये बीज बडे मुफीद हैं। अगर इनको पीस कर शहद में मिला कर सख्त से सख्त वरम पर लगाये जाय तो उसे भी पका देते हैं।

इनके लुआब को चमेली के तेल के साथ बाही मुँह पिलाया जाय, तो मिती आराम हो जाती है।

कनोचे के बीज तिल्ली के लिये मुजिर या हानि कारक हैं। इनके दर्प को नाश करने के लिये गुलेनार मुफीद है। इसका प्रतिनिधि लुआब के लिये तुख्म रिहा और फोड़ा पकाने के लिये अलसी

के बीज हैं। इनकी मात्रा सात माशे की है, मगर दूसरी औषधियों के साथ चार माशे से अधिक की मात्रा नहीं देना चाहिये।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह वस्तु लुआबदार होती है और इसके गुण भी दूसरी लुआब दार वस्तु की तरह होते हैं।

कनोचा

नाम –

पंजाबी—कनोंचा। बिलोची स्थान—गंचा। लेटिन—Salvia Spinosa (सेलविया-स्पीनोसा)

वर्णन--

यह औषधि मेसोपेटोमियां, सीरिया और अरब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रंथों में इस औषधि का उल्लेख नहीं पाया जाता।

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसके बीज पंजाब के बाजार में मिलते हैं। इनको पानी में डालने से एक प्रकार का लुआब तैय्यार हो जाता है। इस लुआब को पीने से सुजाक और मूत्र-नली की सूजन में लाभ पहुँचता है।

हक्स बूलर के मतानुसार इसके बीज पीस कर दन्त पीडा को दूर करने के लिये दांतों पर लगाये जाते हैं।

कनोर

नाम—

हिन्दी--बंखोर, गुगु,बनोर, दंकर। काश्मीर—हनदुन, बाकरा। कुमाऊ—किशिंग, पंगर। पंजाब—बनखोर, कनेर। लेटिन—Aesculus Indica (एस्क्यूलस इण्डिका)

उत्पत्ति स्थान—

सिन्ध नदी के आस पास काफिरी स्थान में ७ हजार फीट से ८ हजार फीट की ऊंचाई तक, पश्चिमी हिमालय में ४ हजार से ६ हजार फीट को ऊंचाई तक, सिंध से नेपाल तक गीले और छायादार स्थानों में।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक बड़ा वृक्ष है, इसके छिलटे पर रंकड़ी धारियां बनी रहती हैं। इसके छोटे पौधे मखमली होते हैं। इसके फूल २.५ से० मी० लम्बे और छोटे रहते हैं। इसके फल लम्बे रहते हैं।

ये गोलाई लिये होते है। इनमें एक से लगाकर तीन तक बीजें रहते हैं, ये गहरे बादामी और चमकीले होते हैं।

गुण—

इसका फल घोड़ो के उदर शूल या पेट के दर्द में उपयोग में आता है। इसके बीजों का तेल आमवात और गठिया पर मालिश करने से लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फल घोड़ो को पेट के दर्द में दिये जाते हैं।

कपास

नाम—

संस्कृत—अनभिका, सूत्रपुष्प, तुण्डकेरिका, कार्पासी, कार्पासदरिणी। हिन्दी—कपास, रुई। बंगाली—कपास, तुला। गुजराती—कपास, रुई। तामील—कपसिन। तेलगू—वदरी, वदरिका, कासिम। अरबी—कुतुन, कुतुनसुत्त। फारसी—कुतुन। इंग्लिश—Cotton Plant। लेटिन—Cossypium Herbaceum।

वर्णन—

कपास और रुई सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इस देश में इसकी खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती है। व्यापारिक दृष्टि से भारतवर्ष रूई के व्यापार का सारी दुनिया में दूसरे नम्बर का केन्द्र है। इसके पौधे तीन फीट से ५ फीट तक लम्बे होते हैं। इसकी शाखाएँ हरी होती हैं। इसके पत्ते में ५ अणीयें होती हैं। इसके फूल पीले और लाल रंग के होते हैं। कपास दो तरह का होता है। एक सफेद दूसरा काला। एक नरियावाडी कपास होता है, जिसके पेड़ बड़े बड़े होते हैं और जिसके फल फूल बारहों महीने आते हैं। इसकी रूई नरम व बिनोले हरे होते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कपास के फूल मीठे, शीतल, पौष्टिक, और दूध बढ़ाने वाले होते हैं। ये पित्त और कफ को दूर करते हैं। प्यास को बुझाते हैं तथा भ्रांति, चित्त की अस्थिरता और बेहोशी को दूर करते हैं। इसके पत्ते वात को दूर करते और खून को बढ़ाते हैं। ये मूत्र निस्सारक और कान की सभी प्रकार की तकलीफों को दूर करने वाले होते हैं। इसके बीज अर्थात् बिनोले दूध बढ़ाने वाले और कामोद्दीपक होते हैं। इस वनस्पति के सभी हिस्से चर्म रोगों में, सांप और बिच्छू के जहर में तथा गर्भाशय की पीड़ाओं में उपयोगी हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। मगर कई यूनानी हकीम इसे सर्द और कई तर मानते हैं। यूनानी हकीमों के मतानुसार यह गर्भपातक औषधि है और कहीं कहीं इसका उपयोग गर्भपात के लिये किया जाता है। इसकी लकड़ी की धूनी जुकाम को दूर करती है। इसके पत्ते खुरपे के शाग के साथ देने से गठिया में लाभ होता है। इसके पत्ते और जड़ का काढ़ा हिस्टीरिया रोग में मुफीद है।

इसके फूलों का शरबत सभी प्रकार के उन्माद और वहम की बीमारी में लाभदायक होता है। दाह, खाज और खुजली में इसका पुल्टिस बांधा जाता है। आंखो की जलन में इसका सेक मुफीद है। इसके बीज कामोद्दीपक, स्नायुमण्डल को ताकत देनेवाले, कफनाशक और हलके विरेचक होते हैं।

योग रत्नाकर, वृहन्निघण्टु रत्नाकर और सुबोध वैद्यक के अनुसार इसकी जड़ और पत्ते का रस सर्पदंश में उपयोगी माना जाता है।

केश और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सांप और बिच्छू के जहर में निरुपयोगी है।

रासायनिक विश्लेषण –केमिकल सोसायटी जरनल के सन् १६०६-१३ और १६ के अङ्कों के अनुसार इस वनस्पति में बेटाइन और कोलाइन नामक पदार्थ पाये जाते हैं। इसके फूलों में ग्लुकोसाइडल पिगमेंट और गोसीपेटिन नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

इण्डियन ड्रग्ज और ड्रेट्स नामक ग्रन्थ के कर्ता का कथन है कि युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में, कपास के बीज इकांतरा, तिजारी, चौथिया इत्यादि मुद्दती बुखारों के लिये एक अत्यन्त लोकप्रिय इलाज है। १ सेर कपास के बीज को १० सेर पानी के साथ उबाला जाता है और जब दो सेर पानी शेष रह जाता हैं, तब उसको उतारकर छान लेते हैं। इसमें से एक बड़ा चम्मच भर कर के रोगी को सर्दी चढ़ने के पहिले दिया जाता है, जिस से बड़ा लाभ होता है।

इसकी जड़ में ऋतु उत्पादक गुण है। इससे कष्टार्तव में अथवा सर्दी के कारण बन्द हुए मासिकधर्म को- खोलने में यह बड़ी उपयोगी है। गर्भकष्ट के समय यह वनस्पति अर्गट नामकी विलायती दवा से भी विशेष उत्तम है। कष्ट प्रसव के समय इसको देने से बिना किसी उपद्रव और अनिष्ट के बच्चा हो जाता है।

मटेरिया मेडिका आफ इंडिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी लिखते हैं कि इसकी जड़ की छाल का काढ़ा गर्भस्राव और ऋतुस्राव को बढ़ाने के लिये उपयोगी हैं। प्रसव के समय में इसको देने से पीड़ा होने की क्रिया में वृद्धि होकर सुख से बच्चा पैदा हो जाता है। इसी प्रकार नष्टार्तव, कष्टार्तव, और गर्भाशय से खून बहना वगैरह बीमारियों पर भी यह औषधि दी जाती है।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों के श्वेत प्रदर और पुरुषों के प्रमेह रोग पर भी यह औषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। इन रोगों में इसको देने की विधि इस प्रकार है –

नरम कपास के पत्तों का रस एक सेर, भोय काम के पत्ते एक सेर, कोठी के पत्तों का रस एक सेर पाषाण भेद पांच तोला, रूमी मस्तगी २॥ तोला, माजूफल का चूर्ण ढाई तोला, गिलोय-सत्व एक तोला, नाग केशर आधा तोला, इन सब चीजों को दो सेर पानी में डालकर रात भर भिगो रखना चाहिये। सवेरे उसको मल छानकर उसमें से पाव तोले की मात्रा में दिन में तीन बार शक्कर डालकर लेने से ७ दिन में प्रमेह और प्रदर का पुराना और हठीला दर्द भी नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग चालू रहे तब तक बीमार को सांठी चावल का भात और मूंग के पानी के सिवाय दूसरी कोई वस्तु खाने को नहीं देना चाहिये।

धतूरे के विष के ऊपर भी यह औषधि अपना अच्छा प्रभाव दिखलाती है। चार तोला कपास के बीजों को सोलह गुने पानी के साथ औटाकर जब चार तोला पानी शेष रहजाय तब छानकर पिला देना चाहिये। आधे-आधे घण्टे के अन्तर से ऐसी चार-चार तोले की खुराक जब तक धतूरेका विष नष्ट नहीं होजाय तब तक बराबर देते रहना चाहिये।

अत्यार्तव या गर्भपात की वजह से स्त्री की जननेंद्रिय में से खून का बहना बन्द करने के लिये बाह्योपचार की तरह भी रुई बहुत सफलता के साथ कामियाब होती है। धन्वन्तरी नामक मासिक-पत्र में इस विषय का एक अनुभव प्रकट हुआ था। वह इस प्रकार है।

"उस समय मैं बड़ोदे में अहमदावादी पोल मे रहता था। जिस मोहल्ले में मैं था, उसमें एक पाटीदार की स्त्री को सात महिने के गर्भपात की वजह से बेहद रक्तश्राव होने लगा, उसी समय उसके इलाज के लिये एक अनुभवी मिडवाइफ को बुलाया गया। परन्तु उसकी चिकित्सा से भी रक्त श्राव बन्द न हो सका। तब बड़ोदे के चीफ मेडिकल ऑफिसर सर भालचन्द्र को बुलाया, मगर उनकी चिकित्सा से भी रक्तश्राव बन्द न हुआ। तब उसके घर के लोग घबरा कर पड़ौसी के नाते मेरे घर आये। मैंने बीमार को देखकर सोचा कि खाने की दवा का असर होते हुए देर लगेगी और इस बाई की जान जोखम में पड़ जायगी। आखिर मेरे मन मे तत्काल कुछ ध्यान आया और मैंने तुरन्त पींजी हुई रुई मगाकर उस बाई की जननेन्द्रिय में दबा कर भरने को कहा, जिससे डाट लग कर खून का आना रुका और उसी समय तत्काल भीतरी उपचार की तरह अद्रक के रस में शुद्ध की हुई अफीम की मात्रा उसे दी, जिससे उसको स्थाई फायदा हो गया। इस प्रसंग के पश्चात् जब जब अत्यार्तव या गर्भपात की तरह से होने वाले रक्तश्राव को बन्द करने की जरूरत पड़ती है तब २ मैं इसी उपाय को सफलता पूर्वक काम में लेता हूँ"।

उपयोग--

✓ *धातुदौर्बल्य*—बिनोले की मींगी की दूध में खीर बनाकर खिलाने से धातुदौर्बल्य व मस्तिष्क की कमजोरी में बहुत लाभ पहुँचाता है।

आग से जलना—इसकी मींगी को पीस कर लेप करने से आग की जलन मिटती है।

मूत्रदाह—इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से पेशाब होते समय की जलन और पीड़ा मिटती है।

पागलपन—इसके फूलों का शरबत पिलाने से पागलपन मिटता है और चित्त प्रसन्न होता है।

घाव—रुई की भस्म को भुरभुराने से घाव और टाकियां बहुत जल्द आराम होती हैं।

अण्डवृद्धि—बिनोले की मींगी और सोंठ को जल के साथ पीस कर लेप करने से अण्डवृद्धि मिटती है।

आमातिसार—इसके पत्तों का रस पिलाने से आमातिसार में लाभ होता है।

कष्टार्तव—इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से मासिक धर्म के समय होने वाला कष्ट मिट जाता है।

दन्त पीड़ा—बिनौलों को औटा कर उस पानी से कुल्ले करने से दांतों की पीड़ा मिट जाती है।

श्वेत प्रदर—इसकी जड़ को चावलों के पानी के साथ पीस कर पिलाने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

बद गांठ—इसके बीजों को पीस कर, गरम कर, टिकिया बना कर बद गाठ पर बांधने से बद गांठ बिखर जाती है।

कामला—६ माशे बिनौले रात को पानी में भिगो देवे प्रातःकाल उनको पीस कर व छान कर और सेंधा निमक मिलाकर पीने से कामला रोग में लाभ होता है।

बाल रोग—अच्छे पके हुए बिनोले लेकर उनको पानी में उबालना चाहिये और उनके वजन के बराबर अरण्डी के बीज लेकर उनको जरा सेक कर, उनके छिलके उतार लेना चाहिये। फिर इन दोनों बीजों को कूट कर एक मटकी में आधे हिस्से तक पानी भरकर आग पर चढा देना चाहिये जब वह अच्छी तरह उबलने लगे तब ये दोनों कुटे हुए बीज उसमें डाल देना चाहिये। थोडी देर में इनका तेल पानी के ऊपर तिरता हुआ दृष्टि गोचर होगा। उसे रुई के फाये से लेकर इकट्ठा कर लेना चाहिये और फिर दो-चार दिन तक सूर्य की धूप में पड़ा रहने देना चाहिये। जिससे उसमें का पानी का अंश उड़ कर शुद्ध और साफ तेल रह जायगा। इस तेल को बालक के बलाबल के अनुसार तीन माशे से १ तोले तक की मात्रा में शक्कर के साथ देने से पेट का सड़ा हुआ मल निकल कर साफ हो जाता है और बालक आरोग्य लाभ करता है।

कपीला

नाम—

संस्कृत—कंपिल्लकः, रक्तांगः, रंजनः, बहुपुष्प, लघुरत्नक इत्यादि। हिन्दी—कबिला, कमीला। गुजराती—कपिलो। मराठी—कपिला। बङ्गाली—कमलागुण्डी। पञ्जाबी—कमीला। तेलगू—कंपिल्लमुकुंमा, चन्दिरम। अरबी—क़िंबिल। फारसी—कंबेला। लेटिन—Mallotus Philippineusis (मेलोटस फिलीपाइंसिस)

वर्णन—

कपिले के वृक्ष हिमालय में काश्मीर से पूर्व की ओर बङ्गाल और बर्मा तक और सिंध से दक्षिण की ओर सीलोन तक होते हैं। इसका वृक्ष से २०।३० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिण्ड की गोलाई तीन से चार फुट तक होती है। इसकी शाखाएँ अक्सर जड़ से ही निकलती है। इसके पत्ते गूलर के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसकी छाल चौथाई इंच मोटी होती है। इसके फूल सफेद और पीले होते हैं। इसके फल मकोय के दाने की तरह लगते हैं। यह फल गरमी में पकते है। जब वे पक कर लाल पड जाते हैं तब पहाडी लोग इनको पेडो पर से तोड कर गड्ढे में डालकर कूटते हैं

कूटने से जो रवा गिरता है। उसको चलनी में छान कर साफ कर लिया जाता है। इसी को कपिला कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत--आयुर्वेदिक मत से कपिला दस्तावर, चरपरा, गरम, व्रण नाशक, कफ, खांसी और कृमियों को दूर करने वाला तथा गुल्म, उदर रोग, आफरा और पथरी को नष्ट करने वाला होता है। इसके पत्ते शीतल और कड़वे होते हैं। यह भूख बढाने वाले और ग्राह्य हैं। इसके फल से तैयार किया हुआ चूर्ण कृमि नाशक, घाव पूरक और विरेचक माना गया है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। कुछ हकीमों के मत से सर्द और खुश्क है। इसके फल के ऊपर की ग्रन्थिया और रूआं कृमि नाशक और रक्तस्राव रोधक है। यह आतों की तकलीफ को कम करता है तथा दाद, खाज और चर्म रोगों में मुफीद है।

बोमान के मतानुसार इसके पके हुए फल के ऊपर पाया जाने वाला लाल पदार्थ कृमि नाशक है। यह विरेचक है। पेट में पाये जाने वाले गोल, लम्बे चुरने और सूत्र कृमियों (नारू) पर यह बहुत ही मुफीद है। इसका द्रव निस्सरण तीन ड्राम की मात्रा में दिया गया और उसके बाद अरण्डी के तेल का जुलाब देने से सब कृमि बाहर निकल आये।

कर्नल चोपरा का कथन है कि अरेबियन वैद्य इस औषधि के कृमि नाशक गुणों को दसवीं शताब्दी से जानते हैं। यूरोप मे इसका प्रचार गत साठ वर्षों से हुआ है। कुछ समय पहले यह औषधि कृमि नाशक वस्तु की तरह हो गई थी और ब्रिटिश तथा यूनाइटेड स्टेट्स फरमा कोपिया में इसका नाम सम्मिलित कर लिया गया। किन्तु अनुभव से इसके गुण अनिश्चित पाये गये और इसकी विश्वस्तता कम होती गई। वेरिंग के मतानुसार यह औषधि आतों में पाये जाने वाले परजीवी कीटाणुओं पर बहुत ही कम असर दिखलाती है। गोल कृमि अर्थात् चुरनियों पर इसका कुछ असर होता है।

रासायनिक संगठन—

कपिला एक सुन्दर हलके लाल रग का गन्ध और स्वादहीन पदार्थ है। यह ठण्डे पानी में नहीं घुलता है। उबलते हुए पानी में थोडा बहुत घुलता है और अलकोहल और ईथर में पूरी तरह से घुल जाता है। इसमें सब से महत्व का तत्व रॉटलेरिन (Rctt l erın) रहता है। इसके अतिरिक्त Isorottlerin नामक तत्व भी इसमें पाया जाता है इसके अतिरिक्त इसमें कुछ वालेटाइल आइल, स्टार्च, शूगर, टेनिन तथा ऑक्सेलिक और साइट्रिक एसिड भी पाये जाते हैं।

सेम्पर ने सन् १६१० में इसे मेंढकों तथा अन्य प्राणियों पर अजमाया। उन्होंने इन प्राणियों पर इसके असर को देखा, उससे मालूम हुआ कि यह वस्तु आन्त्रस्थली अर्थात् आतों पर अपना असर दिखाती है। यह वहा की क्रिया मे उत्तेजना पैदा करती है। जिसके फल स्वरूप विरेचक प्रभाव पैदा हो जाती है। यह वनस्पति खासकर गोल कृमियों को दूर करने के काम में ली जाती है। इसे दूध, दही या शहद के साथ दो से तीन ड्राम तक की मात्रा में दी जाती है। औषधि लेने के बाद कुछ जी घबराता है, कुछ पेट में दर्द होता है और फिर दस्त शुरु होकर के कृमि निकल जाते हैं।

सन् १९२३ में वेश और महरकर ने इसको अजमाया मगर उनकी दृष्टि से यह औषधि कृमि-नाश करने में बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध हुई।

उपयोग—

नारू– हलीला काबुली, बहेड़ा, आवला, सोंठ, निसोद और कपीला यह छै चीजें समान मात्रा में लेकर चूर्ण करके तीसरे हिस्से शकर की चाशनी में मिलाकर माजूम बनाना चाहिये। इस माजूम को छः सात माशे की मात्रा में प्रतिदिन लेने से नारू की पैदाइश रुकती है। बीस दिन तक इस औषधि को बराबर लेने से इस बीमारी का माद्दा उखड़ जाता है।

जखम— आधा सेर तिल का तेल गरम करके उसमें एक छटांक कपिला अच्छी तरह मिलाकर जखम पर लगाने से जखम सूख जाता है।

दाद, खाज—रोगन गुल के साथ कपीला को लगाने से दाद, खाज और फुन्सियों को बहुत फायदा होता है।

सिर की गंज— धोए हुए घी के साथ कपीले को लगाने से सिर की गंज में बहुत लाभ होता है।

कृमि—आठ माशे की खुराक में इसको शहद के साथ चाटने से तमाम कृमि नष्ट हो जाते हैं।

पसली का दर्द—८ माशे कपीला और एक माशे हींग को पानी में पीसकर और चने के बराबर गोलियां बनाकर उस में से एक दो गोली गरम पानी के साथ लेने से पसली का दर्द और पेट के कीड़े दूर होते हैं।

मुजिर—(नुकसान कारक) यह आंतों और मेदे के रोगों के लिए मुजिर है। इसके दर्प को नाश करने के लिए मस्तगी, अनीसून और कतीरा है। इसके प्रतिनिधि वाय विड़ंग और तरमस हैं। इसकी खुराक तीन माशे से ७ माशे तक है।

कपूर

नाम—

संस्कृत—कपूर, घनसारः, चन्द्रसंज्ञः, सिताभ्रः इत्यादि। हिन्दी—कपूर। गुजराती—कपूर। मराठी—कापूर। बंगाली—कर्पूर। तेलगी—कर्पूरम। अरबी—काफूर। फारसी—कापूर। लेटिन—Comphora Officinarum (कंफोरा ऑफिसीनेरम)

वर्णन—

कपूर के वृक्ष चीन और जापान देश में अधिकतर पैदा होते हैं। इस वृक्ष की गिनती तज की जाति में ही होती है। इसकी छाल ऊपर से खुरदरी और भीतर से चिकनी होती है। इस वृक्ष के मोर आते हैं और उन पर मटर के समान फल लगते हैं। इनके बीजों में कपूर के समान सुगन्ध आती है। इस वृक्ष की छाल को खोदने से एक प्रकार का दूध निकलता है। उसी दूध से कपूर तय्यार किया जाता है।

इस वृक्ष के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के वृक्षों से कपूर प्राप्त किया जाता है। भारतवर्ष के अन्दर केले के झाड़ से पैदा होने वाला कपूर उत्तम माना गया है। दस्तूरूल अतब्बा में लिखा है कि जो कपूर केले के तने से निकलता है। वह निहायत सफेद और उत्तम होता है, उसके बड़े बड़े और चौड़े चौड़े टुकड़े होते हैं और जो पत्तों में से निकलता है वह उससे कमजोर होता है तथा जो जड़ में से निकलता है वह खराब और बालू रेत की तरह होता है।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में और भी कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनसे कपूर प्राप्त किया जा सकता है।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि "जंगल की साधारण महत्व की वस्तुओं के परीक्षण से यह बात मालूम पड़ती है कि केरुस केम्फोरा नामक (Kaurus Covphora) वृक्ष भारतवर्ष के अन्दर पैदा नहीं होते हैं। फिर भी ब्लूमिज (Blumeas) जाति के प्रतिनिधि वृक्ष यहां पर काफी तादाद में पैदा होते हैं। ब्लूमीज की कई प्रकार की जातियां जैसे ब्लूमीयाबालसेमीफेरा, कुकरौंदा, ब्लूमीयालेसीरा, ब्लूमीया डेंसीफ्लोरा, ब्लूमीया मेलकोमी, ब्लूमिया ग्रेंडिस इत्यादि, ब्लूमीया की कई जातियां नेपाल से सिक्किम तक पैदा होती हैं। इसी प्रकार दक्षिणी पठार में १७०० से लगाकर २५०० फीट की ऊंचाई तक भी पैदा होती है। इन जातियों के वृक्षों में से कपूर कॉफी तादाद में पैदा हो सकता है।

ब्लूमिया बेल सेमिफेरा (कुकरौंदा की एक जाति) आसाम और बरमा में कॉफी तादाद में पैदा होता है। मेसन का मत है कि बरमा में ब्लूमियाबेलसेमीफेरा इतना अधिक पैदा होता है कि उससे आधे संसार की कपूर की मांग पूरी की जासकती है।

डीमक ने कॅंफोरेसियस ब्लूमिया की तरफ जन साधारण का ध्यान आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त ब्लूमिया की और कई अन्य जातिया होती हैं। जिनमें कि कपूर की बहुत तेज गन्ध आती है और उनमें से कपूर प्राप्त भी किया जा सकता है। बङ्गाल के मैदानों में पाई जाने वाली लिम्नोफिला, मीटी श्रालाइडस (अम्बुज, अम्बुली) नाम की वनस्पतियों से भी बङ्गाल में कपूर प्राप्त किया जाता है।

इतने उत्तम साधनों के रहते हुए भी भारतवर्ष अपनी कपूर की मांग के लिये विदेशों पर ही निर्भर है। जो कपूर देशी कपूर या इण्डियन केंफर के नाम से प्रसिद्ध है वह भी असल में चीन का कपूर है जो कि भारत में शुद्ध किया जाता है। ब्लूमिया कॅंफर की थोड़ी तादाद के अतिरिक्त और कोई भी जाति का कपूर ऐसा नहीं है जो भारत में पैदा हुआ कहा जा सकता है।

उन्नसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में ऐसे पौधों की खेती का प्रयत्न किया गया था कि जिनसे कपूर प्राप्त हो सके। ड्राय बेलेनाप्स कॅंफोरा नामक वृक्ष की खेती यहां पर करने की कोशिश की गई थी। इसके अतिरिक्त बोर्निओ और सुमात्रा के कपूर के वृक्ष जिससे कि बरास पैदा होता है, उनको भी यहां पैदा करने का प्रयत्न किया जा चुका है। लखनऊ हार्टीकल्चरल गार्डन्स की सन् १८८२-८३ की रिपोर्ट में यह बतलाया गया है कि "जो भी कपूर के वृक्ष यहां पर लगाये गये थे, उनका परिणाम बहुत अच्छा

हुआ ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि अगर इस विषय में काफी उत्साह लिया जाय तो व्लूमीज जाति से पैदा होने वाले कपूर से या ड्रायवेलोंनांप्स नामके वृक्षों से कपूर पैदा करने में व्यापारिक सफलता प्राप्त हो सकती है।

कपूर का वृक्ष हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष है। यह वृक्ष कोचीन, चायना से शघाई तक और हैनान से दक्षिण जापान तक होता है। पहले यह चीन मे बहुत पैदा होता था, मगर अब वहां की पैदाइश बहुत कम हो चुकी है। इस समय जापान और फारमूसा ही इसकी पैदायश के मुख्य केन्द्र हैं। कपूर के सभी वृक्षों में से कुछ गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है। इसको वैज्ञानिक तौर से साफ करने पर कपूर निकलता है। लकड़ी और जड से जो तेल प्राप्त होता है वह अधिक उपयोगी रहता है। उसमें कपूर के अतिरिक्त "साफरल" नामक एक पदार्थ और रहता है। कपूर का महत्व इस बात से विशेष है कि यह सेल्यूलाइट और उससे सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का मुख्य अंग है। सेल्यूलाइट एक हलका, जलन शील, रासायनिक पदार्थ है जिससे आजकल खिलौने इत्यादि अनेक वस्तुएं बनती हैं। इसका ७० प्रति सैकड़ा हिस्सा तो खिलौने वगैर बनाने के काम में चला जाता हैं और शेष हिस्सा औषधियों के उपयोग मे लिया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—सुश्रुताचार्य के मत से कपूर कडवा, सुगन्धित, शीतल, हलका, लेखन, तथा तृषा, मुख शोष (विरसता) और अरुचि को दूर करने वाला है।

भाव प्रकाश के मतानुसार कपूर शीतल, वीर्यजनक, नेत्रों को हितकारी, हलका, सुगन्धित, मधुर और कडुआ होता है। यह कफ, पित्त, विष, दाह, तृषा, अरुचि, मेद और दुर्गन्ध का नाश करता है। कपूर पक्व व अपक्व के भेद से दो प्रकार का होता है। झाड के रस को पकाकर जो कपूर बनाया जाता है उसे पक्व कहते हैं और जो बिना पकाये हुए तय्यार किया जाता है उसे अपक्व कहते हैं। पकाये हुए कपूर से बिना पकाया हुआ कपूर बहुत साफ और बढिया होता है। इसकी कीमत भी बहुत अधिक होती हैं। कई लोगों के मत से इस बिना पकाये हुए कपूर को ही भ्रास या भीमसेनी कपूर कहते हैं।

आयुर्वैदिक मत से कपूर कई प्रकार का होता है। उसमें भीमसेनी कपूर हिमकपूर, उदयभास्कर कपूर, चीनीया कपूर, शकराबास कपूर, इत्यादि भेद विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

राजनिघट्टु कार का कथन है कि स्वच्छ भागरे के पत्तों के समान छोटे छोटे टुकड़े वाला, वजन में हलका, स्वाद में तिक्त, ठण्डा, अत्यन्त सुगन्धित, हृदय को प्रिय, तेल रहित कपूर, अत्यन्त उत्तम और राजाओं के योग्य होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार के नकली कपूर फोडे और घाव को पैदा करने वाले होवे हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी तबियत तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। मगर कुछ यूनानी हकीमों के मतानुसार इसमें कुछ गर्मी की तासीर भी है। हकीम गिलानी के मता-

नुसार जो कपूर निहायत खालिस और साफ होता है, जिसको हिन्दू लोग भीमसेनी कहते हैं, वह बहुत गरम होता है, यहां तक कि उसकी गर्मी तीसरे दर्जे से भी बढ़ी हुई रहती है। कुछ लोगों की राय है कि जब तक कपूर मेदे में रहता है, तब तक सर्द रहता है और जब वह जिगर की तरफ जाता है तब गरम हो जाता है।

यूनानी मत से कपूर दिल और दिमाग को कूवत देने वाला तथा क्षय, जीर्णज्वर, निमोनिया, अतिसार और फेफड़े के जखम को लाभ पहुँचाने वाला होता है। यह जिगर, गुर्दे और पेशाब की सोजिश में लाभ पहुँचाता है। चर्म रोगों के ऊपर भी इसकी क्रिया बहुत लाभदायक होती है। जहरीले और फैलने वाले फोड़े-फुन्सियों को इसके इस्तेमाल से बड़ा लाभ पहुँचता है। नकसीर का खून बन्द करने के लिये यह बड़ा लाभदायक है। कपूर के अन्दर कृमिनाशक गुण भी बहुत अच्छी तादाद में मौजूद हैं। इसकी खुशबू से रोगोत्पादक कीड़े मरजाते हैं और खराब हवा साफ हो जाती है। हैजे की बीमारी को नष्ट करने के लिये यह औषधि अपना प्रधान अस्तित्व रखती है।

इसका पहिला असर फैलने वाला और फुर्ती पैदा करने वाला होता है। दूसरा असर यह होता है कि यह खून में मिलकर सब अंगों की बढ़ी और घटी हुई कूवत को सुव्यवस्थित कर देता है। धनुर्वात अर्थात् टेटीनस रोग में भी यह बड़ा लाभदायक होता है। इसकी ज्यादा मात्रा बेहोश करने वाले तेज जहर की तरह होती है। इसके अतिरिक्त बुखार, सूजन, दमा, कुक्कुरखाँसी, दिलकी धड़कन, दिल का फूल जाना, पेशाब की रुकावट नहीं रहना, औरतों का भूतोन्माद, गठिया, जोड़ों का दर्द, बदन का सड़ना इत्यादि रोगों में भी यह बड़ा लाभ पहुँचाता है।

कई यूनानी हकीमों का यह मत है कि अधिक मात्रा में कपूर का सेवन करने से मनुष्य की पुरुषार्थ-शक्ति नष्ट हो जाती है और वह नपुन्सक हो जाता है।

इब्नसऊद ने लिखा है कि मेरे एक दोस्त ने चार माशे कपूर एक साथ खा लिया, जिससे उसकी पुरुषार्थ-शक्ति बहुत कम हो गई। दूसरे दिन भी इसी प्रकार चार माशे कपूर उसने खाया जिससे उसकी शक्ति बिलकुल ही नष्ट हो हो गई। तीसरे दिन खाने से उसका मेदा भी खराब हो गया और हाजमा शक्ति कमजोर हो गई। मुहीते आजम और अनुभूत चिकित्सा-सागर में भी इसकी अधिक मात्रा को नामर्दी पैदा करने वाली बताया गया है।

✓ *भीमसेनी कपूर बनाने की विधि*—भीमसेनी कपूर के सम्बन्ध में कई प्रकार के मत हैं। एक मत जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जो बिना पकाया हुआ कपूर होता है उसी को भीमसेनी कपूर कहते कहते हैं। एक मत यह है कि जो कपूर बोर्नियो टापू से आता है, उसको भी भीमसेनी कपूर कहते हैं। मगर साधारण कपूर से भी भीमसेनी कपूर बनाने की एक विधि है जो इस प्रकार है।

दूब, शीतल मिरच, इलायची, सूंठ और जौहरड ये पांचो चीजें समान भाग लेकर, पीसकर एक तांबे के कटोरे में बिछादे और इस चूर्ण के ऊपर कपूर के छोटे २ टुकड़े पानी में भिगोकर रखदें। उस कटोरे पर उसी आकार का एक पीतल का कटोरा औंधा ढककर दोनों की दर्जों को कपड़ मिट्टी से

बन्द करदें ताकि कहीं से हवा न निकल सके। फिर इसको किसी बन्द कमरे में चूल्हे पर रखकर नीचे घी का चिराग लगादें और पीतल के कटोरे पर हमेशा एक पानी से तर किया हुआ कपडा रहने दें जब कपड़ा सूखने लगे तब उसे फिर तर करदें। १०-१२ घण्टे तक इस प्रकार आंच दें और फिर उतारकर उसकी कपड़ मिट्टी खोलकर सावधानी से पीतल के कटोरे में जमा हुआ कपूर छुडालें। यही भीमसेनी कपूर है।

असली कपूर की पहचान—असली कपूर की तरह नकली कपूर भी बहुत सा तैयार होता है और उसकी पहिचान करना भी बडा कठिन है। साधारण तौर से इसकी एक दो परीक्षाएँ यूनानी हकीमों ने बतलाई हैं, वे इस प्रकार हैं। (१) पहिली यह कि बरफ में लपेट कर कपूर को जलावे अगर दीपक की तरह जल उठे तो असली है वरना नकली। (२) गरम रोटी के टुकड़े में कपूर रक्खें अगर असली होगा तो पसीज कर नरम हो जायगा अगर नकली होगा तो नहीं होगा। (३) तीसरी यह कि भोंह के ऊपर के हिस्से की पेशानी पर इसको मलें अगर असली होगा तो आंख में सर्दी मालूम होकर पानी टपकने लगेगा, अगर नकली होगा तो विशेष प्रभाव नहीं होगा।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कपूर उत्तेजक, शान्तिदायक और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है।

बर्डवुड के मतानुसार यह आक्षेपनिवारक, उपशामक, स्नायुमण्डल को शान्ति पहुँचाने वाला, हृदय को उत्तेजना देने वाला, पेट के आफरे को दूर करनेवाला व ज्वर को हटाने वाला होता है। बाह्य प्रयोग करने पर यह वेदना हर औषधि का काम देता है।

उपयोग—

नारू—कपूर और नरकचूर एक २ तोला लेकर पीसले, फिर इसमें तीन तोला गुड़ मिलाकर कपड़े या रुई के फाये पर मलम की तरह फैला लें और उस फाये या कपड़े के बीच मे एक छेद रक्खें और उसको नारू पर चिपका दे। इस प्रयोग से २।३ दिन में सारा नारू उस छेद की राह से होकर निकल जाता है।

दमा—२ रत्ती कपूर और दो रत्ती हींग की गोली बनाकर दमे के दौरे के टाइम मे हर दूसरे-तीसर घण्टे में देने से दमे का दौरा रुक जाता है। अगर इस प्रयोग के साथ रोगी को छाती पर तारपीन के तेल की मालिश की जाय तो विशेष लाभ होता है।

स्नायुपीड़ा—२। तोला कपूर को २॥ पाव सिरके मे गलाकर फिर उसमें २॥ पाव पानी मिलाकर रखदें। इस औषधि मे कपड़ा तर करके गठिया, स्नायुपीड़ा और मस्तक पीड़ा की जगह पर लगातार पड़ा रखने से पीड़ा दूर हो जाती है।

प्रमेह—२ रत्ती कपूर और पाव रत्ती अफीम की गोली बनाकर सोते समय लेने से अपने आप वीर्य का स्खलन होना और प्रमेह की शिकायत मिटती है।

सुजाक—२ रत्ती कपूर में आधी रत्ती अफीम मिलाकर देने से पेशाब करते समय होने वाली जाक की पीड़ा बन्द होती है।

चेचक—चेचक में ज्वर की तीव्रता से जब रोगी निर्बल व शक्ति हीन हो जाय और प्रलाप करने लगे, उस समय १॥ रत्ती कपूर और १॥ रत्ती हींग को गोली बनाकर हर तीसरे घंटे देना चाहिये। साथ ही पैर के तलवों और हृदय पर तारपीन के तेल का मालिश करना चाहिये या राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। अगर इस प्रयोग से सिर दर्द या सिर की जलन पैदा हो तो इस प्रयोग को बन्द कर देना चाहिये। इस प्रयोग को करते समय बहुत सावधानी रखने की जरूरत है।

जुकाम—कागज की भोंगली में कपूर को रख कर श्वास के साथ उसकी धूनी देने से जुकाम मिटता है।

निमोनिया—कुनेन, नोसादर के फूल और कपूर की गोली देने से निमोनिया रोग में लाभ होता है।

दन्त शूल—दांत के गड्ढे में कपूर रखने से दात की पीड़ा और दात का बिगड़ना बन्द हो जाता है।

गठिया—अफीम व कपूर को राई के तेल में मिला कर मर्दन करने से मास पेशियों और रक्त वाहिनी शिराओं की गठिया की पुरानी पीड़ा मिट जाती है।

हैजा—हैजे के अन्दर हाथ पाव ठण्डे हो जाने पर स्पिरीट कैफर अथवा अर्क कपूर देने से लाभ होता है।

बिच्छू का जहर—कपूर को सिरके में पीस कर डङ्क पर लगाने से बिच्छू, मक्खी, बर्रे का विष उतरता है।

आंख की फूली—बड़ के दूध में कपूर को खरल करके आंख में आजने से आख की फूली कट जाती है।

पित्ती—कपूर को खोपरे के तेल में मिलाकर मालिश करने से पित्ती में लाभ होता है।

नकसीर—कपूर को गुलाब जल में पीस कर नाक में टपकाने से और पेशानी पर उसका मालिश करने से नकसीर बन्द होता है।

संखिये का विष—१ माशा कपूर को गुलाब के अर्क में घोट कर पिलाने से संखिये के विष में लाभ होता है।

पुरानी खांसी—पुरानी खासी के अन्दर कपूर बहुत ही मुफीद चीज है। इसका उपयोग कफ नाशक औषधियों के साथ करना चाहिये।

खुजली—१ तोला कपूर, १ तोला सफेद कत्था और आधा तोला सिंदूर इन तीनों को एकत्र करके एक कांसी के बरतन में डालें और उसमें १० तोला घी डालकर इन सबको हाथ से मल २ कर

१२१ बार पानी से धोवें। यह मरहम घाव, गरमी के छाले, शरीर की खुजली और सड़े हुए जखमों पर बड़ा लाभ करता है।

ज्वरातिसार—कपूर, शुद्ध हींगलू, अफीम, नागर मोथा, इन्द्रजौ और जायफल को समान भाग लेकर अदरख के रस में घोट कर एक २ रत्ती की गोलिया बना कर देने से बुखार के साथ होने वाला अतिसार, रक्तातिसार और छहों प्रकार की संग्रहणी में लाभ पहुचता है। इसी को "कपूँरादिवटी" भी कहते हैं।

बनावटें—

अर्क कपूर—रेक्टि फाइड स्पिरीट ऐलोपेथीकी नम्बर ६०, २४ औंस, कपूर ५ औंस, ऑइल मेंथल पिपरेटा २ औंस, पहिले कपूर के छोटे २ टुकड़े करके उन्हें स्पिरीट की बोतल में डाल दो। कपूर को स्पिरीट की बोतल में डालने से पहिले स्पिरीट को २ बोतलों में करलो और दोनों बोतलों में आधा २ कपूर डालकर खूब हिलाओ। जब कपूर गल कर एक दिल हो जाय तब उसमें नम्बर ३ का ऑइ मेंथल पिपरेटा (याने पीपरमेंट का तेल) मिला दो। फिर दोनों बोतलों की दवा एक में मिलादो। बस यही असली अर्क कपूर है। हैजे की बीमारी को दूर करने में इस औषधि ने बहुत नाम पाया है। इसकी देने की विधि इस प्रकार हैः—जवान आदमी को दस्त और उल्टी शुरु होते ही १० बूंद अर्क कपूर बताशे में डालकर खिला दो। जब तक दस्त और कै बन्द न हो, तब तक पन्द्रह २ मिनिट या आधे २ घण्टे के अन्तर से इसको देना चाहिये। ज्यों २ दस्त कम होते जायें त्यो २ ज्यादा २ अन्तर से इसे देना चाहिये। रोगी की बलाबल और ऊमर के अनुसार दवा की मात्रा भी कम ज्यादा कर देना चाहिये। अर्क कपूर पिलाने के बाद कम से कम १ घण्टे तक पानी नहीं देना चाहिये। इस औषधि से हैजे के रोग में आश्चर्यजनक लाभ होते देखे गये हैं।

हैजे के अतिरिक्त दात या दाढ के दर्द में इस औषधि को रूई के फाये में तरकर के दाढ के नीचे दबाने से भयंकर दन्त पीड़ा भी आराम होती है।

अमृत बिंदु—४ या ५ तोले कपूर को लेकर केले की जड़ के रस में खरल करके के सुखा लो। फिर उसी कपूर को अजवायन के अर्क में खरल करके सुखा लो। फिर एक साफ शीशी में उस कपूर को डालकर उसमें उसी के बराबर अजवायन के फूल और पीपरमेंट के फूल भी तोल कर डालदो और काग लगाकर शीशी को रखदो। इस औषधि को ५। ६ बूंद की मात्रा में बताशे के साथ देने से हैजा, पेट का दर्द, अतिसार, अजीर्ण इत्यादि सैकड़ों प्रकार के रोगो में बड़ा लाभ पहुँचता है।

कुछ अंगरेजी नुसखे।

(१) कपूर १ औंस और कड़वा तेल ४ औंस यह कटिवात, चांत्रिक स्नायु शूल, सीने और मोच पर लेप करने के काम में लिया जाता है।

(२) कपूर ३ ग्रेन, अफीम आधा ग्रेन, दोनों को मिला देना चाहिये। यह पुरातन आम-

वात, भीतरी पीड़ा, अनैच्छिक वीर्यस्राव, फेफड़ों के ऊपर की झिल्ली के प्रदाह में व अन्य वेदनाओं में लाभदायक है।

(३) कपूर ३ ग्रेन और हींग ३ ग्रेन दोनों को मिलाकर गोलियां तय्यार कर लेते हैं। इसकी खुराक दिन में दो बार दी जाती है। यह श्वास, मूर्छा और अनिद्रा रोग में मुफीद है।

(४) कपूर १ ग्रेन, हींग १ ग्रेन और अफीम आधा ग्रेन इन तीनों को मिला कर रक्तातिसार पर देने के काम में लेते हैं।

(५) कपूर १ ग्रेन, आक्साइडजिंक (Oxide Zinc), और बोरिक्स और स्टार्च तीनों मिलाकर २ ड्राम, इन चारों को घाव पूर्ण करने में काम में लेते हैं। ये जलन पर भी काम में लिये जाते हैं। चटके पर भी मुफीद हैं।

(६) कपूर १ औंस, इसको गरम करके और उसका वाष्प-स्नान करना लाभ जनक है।

(७) कपूर, कस्तूरी और शहद तीनों को बराबर २ की मात्रा में मिलाकर गोलिया बनाना चाहिए एक गोली एक ग्रेन की होना चाहिये। यह ज्वर और थकान में काम में ली जाती है।

(८) कपूर आधा ड्राम, सुहागा १ औंस, इसका लेप लिंगेद्रिंय की खुजली और खाज के ऊपर मुफीद है।

(९) कपूर १ ग्रेन, इपिका का पाउडर चौथाई ग्रेन अतिसार रोग में मुफीद है।

कपूर काचरी

नाम—

संस्कृत—अम्लहरिद्र, गन्धमूलिका, गन्धपलाश, गन्धारिका। हिन्दी—कपूर काचरी, गन्ध पलाशी। बंगाल—गन्धशाही। गुजराती—कपूर काचरी। मराठी—कापूरकाचरी। अरबी—जरबाद। पञ्जाब—वन हलदी। लेटिन—Hedychium Spicatum (हेडिचियम स्पिकेटम)

वर्णन—

यह एक प्रकार की बेल होती है। इसके पत्ते लम्बे, बरछी के आकार के और जड़ सुगन्धियुक्त कन्द के समान होती है। इसका फल फिसलना और गोल रहता है। इसकी जड़ नरकचूर से बड़ी और मोटी होती है। इसकी जड़ को जमीन में से उखाड़ कर जोश देकर टुकड़े २ कर लेते हैं और सुखा करके रखते हैं, जिससे इसमें कीड़ा नहीं लगता है। यह औषधि हिमालय की तलहटियों में और नेपाल तथा कुमायू में ५,००० फीट से ७००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से कपूर काचरी, तीक्ष्ण, दाह जनक, चरपरी, कड़वी, कसैली, शीत वीर्य, हलकी, किंचित पित्त कारक तथा खांसी, श्वास, ज्वर, शूल, हिचकी, गोला, रुधिर रोग, अरुचि, दुर्गन्ध, घाव, स्राव, वमन इत्यादि रोगों में लाभ जनक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह दिल दिमाग और मैदे को कूवत देती है, सुद्दा खोलती है, शान्ति दायक है, पुरुषार्थ को बढ़ाने वाली है। मूत्रेन्द्रिय में उत्तेजना पैदा करती है। यह ऋतुश्राव नियामक, कफ निस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। यकृत की शिकायतों में, रक्तातिसार में और प्रदाह में भी यह उपयोगी है। यह छोटी और बड़ी दो जाति की होती है। इन दोनों जातियों को पानी में बारीक पीस कर मटर के दाने बराबर गोलियां बनाकर १ या दो गोली खिलाने से वमन और जी का मिचलाना फौरन रुक जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें इसेंशियल आइल, मेथिलपेरेकुमेरिन एसिटेट (Mathyl Paracumarin Acetate) और सायनेमिक एथिल एसिटेट (Cinnamic Ethyl acetate) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति अग्नि प्रवर्द्धक, उदर को शान्ति देने वाली, पौष्टिक और उत्तेजक है। यह मन्दाग्नि और सर्पदंश में उपयोगी होती है।

केस और महस्कर के मतानुसार सर्पदंश में इस औषधि की कोई उपयोगिता नहीं है।

कपूर भेंडी

नाम—

वाम्बे—कपूर भेंडी। लेटिन—Turraea Villosa (टुरेया व्हिलोसा)

उत्पत्ति स्थान—

बॉम्बे प्रेसिडेन्सी, गुजरात, कोकन, पश्चिमीय घाट, उत्तरी कनाड़ा, मद्रास प्रेसीडेन्सी, अन . मलई पहाड़ियों पर चार हजार फीट की ऊँचाई तक, ट्रावनकोर की पहाड़ियों पर और जावा में।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक प्रकार की बड़ी झाड़ी है, इसके पत्ते झिल्लीदार होते हैं। ये तीखी नोक वाले रहते हैं। जब ये छोटे रहते हैं तब इन पर कुछ मुलायम रुआ रहता है। पुराने हो जाने पर यह मुलायम पन इन में नहीं रहता। इनके फूल भी लगते हैं। इनकी पंखड़ियां पीली होती हैं। इनकी फलियां गोल और लम्बी होती हैं। ये मुलायम होती हैं।

गुण—

इसकी जड़ कुष्ट रोग में अन्तः प्रयोग में ली जाती है। यह वाह्य प्रयोग में भी उपयोग में आती है। यह भगन्दर या नासूर के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह भगन्दर में और काले कोढ़ में उपयोगी होती है।

कपूरी जड़ी

नाम—

संस्कृत—आदान पावी, शतकामेदी। हिन्दी—गोरखबूंटी, कपूरी जड़ी। बंगाली—चय। पंजाबी—बुई वल्लान। राजपुताना—बुई। गुजराती—गोरख गाजो, बूर, कपूरी माधुरी। मराठी—कपूरी माधुरी, कपूर फुटी, कुम्रपिडी। सिंध—बुई। कनाडी—बिलेसूलि। तामील—चिरूबुले। लेटिन—Aerva Lanata एरवा लेनेटा।

वर्णन—

यह बहु वर्ष जीवी वनस्पति सपाट जमीन पर सब दूर होती है। इसका तना सीधा रहता है जड़ें लम्बी रहती है। इसकी शाखाओं पर बारीक २ कांटे रहते हैं। इसके पत्ते २ से लगाकर २.५ से टी मीटर तक लम्बे और १ से लगाकर १.६ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। शाखाओं के ऊपर के पत्तों की लम्बाई इन से ज्यादा होती है। ये गोलाकार और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल हरे और सफेद रंग के रहते हैं और आकार में बहुत छोटे होते हैं। इसके बीज काले और मुलायम रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—यह वनस्पति स्नेहन, मूत्रल, पथरी को नाश करने वाली और खांसी को दूर करने वाली होती है। इसकी जड़ शांतिदायक, मूत्रल, और मूत्र कृच्छ्र रोग में लाभदायक होती है। इस वनस्पति की क्रिया शरीर में अपामार्ग की तरह होती है।

वस्तीगत पथरी को नष्ट करने के लिये इसके फूलों का फाट देने से बहुत लाभ होता है। सुजाक में इसकी जड़ों का काढ़ा देने से लाभ होता है। दमें की बीमारी में इसके सूखे पत्ते और फूलों को चिलम में रखकर पीने से शान्ति मिलती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और मूत्रल है।

इसकी एक जाति और होती है जिसको अंग्रेजी में Erua Javanica एरुआ जवेनिका और दक्षिण हैदराबाद में कुम्र पिडी कहते हैं। गुण, धर्म दोनों के समान होते हैं।

उपयोग—

सिर दर्द—ललाट पर इसकी जड़ का लेप करने से सिर दर्द मिटता है।

पैरों की फूटनी—एक थैली में इसकी कलियों को भरकर उस पर पैर रखने से पैरों की फूटनी मिटती है।

कफ अलजबा

वर्णन—

यह एक क्षुप होता है। इसकी डालियां बारीक और रुएँदार होती हैं और वे जमीन पर फैली हुई रहती हैं। इसके पत्ते अजमोद के पत्तों की तरह होते हैं। इनका रंग पीला होता है। इसके फूल पीले

और सफेद होते हैं। कुछ लोगों के मत से यह कबी कज्ज की एक जाति है। यह वनस्पति पानी के पास और तर जमीन में पैदा होती है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव--

इस औषधि को पीसकर जख्म पर लगाने से यह दुष्ट फोड़े, नासूर और घावों को आराम कर देती है। इसको पीसकर आंख में लगाने से आंख का जाला कट जाता है। (ख० अ०)

क़फ़ अलयहूद

वर्णन—

यह एक ऐसा सत्व है जो कुस्तुन्तुनिया तबरिस्तान के पास के समुद्र के अन्दर के पत्थरों में से जोश मारकर निकलता है। यह जोश सरदी के दिनों में उठता है। समुद्र की लहरें इसे किनारे पर लाकर डाल देती हैं। इसका रंग नीला और सुर्खी माइल चमकदार होता है। इसमें मिट्टी के तेल की गन्ध आती है। यह दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो पानी पर तैरता हुआ पाया जाता है और दूसरा वह जो समुद्र के किनारे पर पाया जाता है। पहली किस्म बिलकुल साफ होती है और दूसरी किस्म में कुछ रेत और कंकर मिल जाते हैं। दूसरी किस्म को मोम की तरह गरम पानी में साफ करते हैं। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह औषधि किसी अग के टूट जाने या जखमी हो जाने पर बड़ी लाभदायक है गिलानी ने लिखा है कि मैंने एक मुर्गे का पाव कुचलवाकर उसे कफ़अलयहूद घी में मिलाकर पिलवाया और अन्धेरी कोटड़ी में रखवा दिया दो दिन बाद जब देखा तो उसकी टाग बिलकुल दुरुस्त थी और वह मजे में दौड़ता था।

इसकी धूनी जुकाम और नजले को फायदा पहुँचाती है, मगर यह मिरगी रोग में नुकसान करती है। इसलिये जिसे मिरगी का मर्ज हो उसे यह दवा नहीं देना चाहिये। जिसकी आंख में बाल पैदा होने का मर्ज हो उसको इस औषधि के लगाने से बड़ा लाभ होता है। इसी तरह इसके लगाने से आखों का जाला भी कट जाता है।

क्षय रोग और पुरानी खांसी पर भी यह औषधि मुफ़ीद है। इसको पीने से कफ और पीप निकल जाता है और रोगी को शान्ति मिलती है।

मजन के तौर पर दांतों पर मलने से यह मुँह की बदबू को मिटाती है और कीड़ा खाये हुए दांतों को फायदा पहुँचाती है।

अतिसार में भी यह लाभदायक है। जिगर और गुर्दे को यह बल देती है। पेट के अन्दर पड़े हुए कृमियों को यह नष्ट करती है। पेट के अफारे में भी यह लाभदायक है।

इसके लेप से घुटने के जोड़ों का दर्द दूर होता है। बालों की सफेदी को भी यह लेप दूर करता है। यह लेप सूजन और कण्ठ माला में भी मुफीद है। इसके धुंए से साप, बिच्छू, मच्छर, इत्यादि जानवर भाग जाते हैं।

यह गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाती है और उन में सर दर्द पैदा करती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अर्क गुलाब और अर्क कपूर का उपयोग करना चाहिये। इसकी खुराक १ माशे से ३ माशे तक है। (ख० अ०)

कबर

नाम—

सस्कृत—काकदानी। हिन्दी—कबर। अरबी—कबर। फारसी—केबीर। सिन्धी—कलवरी। कच्छी—कबरी, करपतीराई, पर्वतीराई। लेटिन—Capparis Spinosa (केपेरिस स्पिनोसा) अंग्रेजी—Cappar.

वर्णन—

कबर की लताएँ बहुत बड़ी और घनी शाखाओं वाली होती हैं। कभी २ इसकी शाखाएँ एक दूसरे में गुँथ कर झाड़ीनुमा हो जाती हैं। ये शाखाएँ अँगूठे के बराबर मोटी होती हैं। कोई २ इससे भी मोटी होती हैं। इन शाखाओं का कोमल हिस्सा रुएँदार होता है। इसके पत्ते लम्बे, गोल, अण्डाकृति और २ इंच व्यास के होते हैं। पत्तों के पीछे तीक्ष्ण काँटा होता है। जिस जगह पान लगा रहता है, वहा पर दो काटे और होते हैं। पत्ते में पीसी हुई राई की तरह खुशबू आती है। पत्ते का स्वाद पहले खारा और उसके बाद पश्चात् पीसी हुई राई के समान होता है। इसका फूल सफेद रंग का बहुत सुन्दर होता है। इसके बीच में जामूनी रंग के नर केशर के तन्तु बहुत सुहावने लगते हैं। इसका फल लंबगोल, २ से ४ इंच तक लम्बा और पकी हुई हालत मे लाल रङ्ग का होता है। इसके बीज गोल, फिसलने और बादामी रंग के होते हैं।

यह औषधि हिमालय, सिंध, पञ्जाब, द्वारका, कच्छ, अफगानिस्थान, पश्चिमी एशिया, यूरोप उत्तर आफ्रिका और आस्ट्रेलिया में पैदा होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड की छाल कडवी गरम और खुश्क रहती है। यह मृदु, विरेचक, कफ निस्सारक, कृमि नाशक, दुग्ध वर्धक और आम वात, दन्त पीड़ा, लकवा और तिल्ली के रोगों में लाभदायक है। यह क्षय रोग के कारण बढी हुई गल ग्रन्थियों पर भी लाभदायक है। इसका रस कान के अन्दर के कीड़े को मार डालता है।

मखजनूल अदविया के मतानुसार इसकी जड़ की छाल, गरम, रुक्ष, ग्राही और सर्दी को नष्ट करने वाली होती है। यह पक्षाघात, जलोदर, नजला और सन्निवात पर भी लाभदायक है। इसकी बेल का ताजा रस कान में डालने से कान के सब कीड़े मर जाते हैं।

राय बहादुर कनाईलाल दे० का कथन है कि इस वस्तु से यूरोप में केपस नामक वस्तु तैयार की जाती है। हाल ही में यह बात जानी गई है कि केपर के फलों में मायरोसिन Myrosin और ग्लुको-साइड glucoside रहते हैं और इनका प्रथकरण किया जा सकता है।

प्रोफेसर लिंडली के मतानुसार कवर के फूल की कली सारक और उत्तेजक होती है और स्कर्व्ही नामक रोग में (इस रोग में दांत की पीढ़ियों में से अपने आप खून गिरने लग जाता है और कमजोरी आ जाती है।) बहुत लाभ पहुँचाती है।

इरुसबूलर के मतानुसार लासवेला में इसके फल से एक प्रकार की लस्सी तयार की जाती है जो आमवात और सर्पदंश में दी जाती है।

हाटसन के मतानुसार इसका रस कान में डालने से यह कान के दर्द को मिटाता है। इस को गरम करने की आवश्यकता नहीं होती।

यूरोप में इसका फल और फूलों की कलियां विरेचक और मूत्र निस्सारक मानी जाती है। इसके पत्तों को पीसकर गठिया की तकलीफ में पुल्टिस की तौर पर काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु लकवा, जलोदर, आमवात और सन्धिवात में मुफीद है। इसमे एक प्रकार का ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

कबसून

वर्णन —

यह एक वनस्पति होती है। इसके बीज बायविडंग की तरह गोल दाने वाले होते हैं।

गुण दोष—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि पहिले दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी किसी के मत से यह तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है। इसका उपयोग दस्त लाने और पेट के कीड़े बाहर करने के लिये किया जाता है। इसके चूर्ण को शक्कर में मिलाकर दूध के साथ दिया जाता है। इस वनस्पति के सब अंगों में इसकी जड़ विशेष प्रभावशाली होती है। इसके उपयोग का खास तरीका यह है कि इसकी जड़ कूटकर पानी मे इमली के साथ मलकर छान कर पिलाये। अगर इसको ज्यादा जोरदार करना हो तो थोड़ा बायविंडग का और थोड़ा काले दाने का चूर्ण भी इसमें मिला दे। इससे पेट के सब कीड़े बाहर निकल आते हैं।

कबाबचीनी

नाम—

संस्कृत—कंकोलकम, कोषफलम्, सुगन्धिफल, सुगन्धमरीचा। मारवाड़ी—कंकोलमिरच। हिन्दी—शीतलचीनी, कबाबचीनी। गुजराती—चणकबाब। मराठी—कंकोळ। बंगाली—काकला।

तेलगू—चल्लमिरियालू। फारसी—कबाबह। अरबी—कबाबह। लेटिन—Piper Cubeba Cubeba Officinalis।

वर्णन—

यह एक प्रकार की पराश्रयी झाड़ी है, जोकि सुमात्रा व मलाया द्वीप समूह में पाई जाती है। इसका खास उत्पत्ति स्थान जावा है। हिन्दुस्तान में भी यह कुछ तादाद में बोई जाती है। इसके पेड़ जंगली आम की पेड़ के तरह होते हैं। इसके फूल जरदी माइल सफेद होते हैं। यह वृक्ष सख्त जमीन में पैदा होता है। इसका बीज गोल और मिरच की तरह होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

यह औषधि गरम देशों में अधिक काम में ली जाती है। इसका आचार और मुरब्बा भी डाला जाता है। इसके बीज में १० से लगाकर १५ सैकड़ा तक इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है। इस तेल में चित को प्रसन्न करनेवाली एक प्रकार की सुगन्ध रहती है। यह तेल २५० डिगरी से लगाकर २८० डिगरी तक गरमी देने से प्राप्त होता है। इस तेल का रंग हरापन लिये हुए नीला रहता है। यह तेल गर्भाशय, मूत्रमार्ग की बीमारियों में, मूत्राशय के प्रदाह में, सुजाक में और पुराने प्रमेह में बहुत उपयोगी माना जाता है।

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिक मत से शीतल चीनी चरपरी, कड़वी, हलकी, गरम, दीपन, पाचक, रुचिकर, सुगन्धित, हृदय को हितकारी, कफ नाशक तथा मुख की जड़ता, दुर्गंधि, वात रोग, हृदय रोग, कृमि, मन्दाग्नि और नेत्र रोग को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह औषधि तबियत को प्रसन्न करने वाली, जिगर के सुद्दों को खोलने वाली और पुराने सिर दर्द को मिटाने वाली है। इसको मुँह में रखने से आवाज साफ होती है और से यह मुंह के छालों को मिटाती है। गुर्दे, तिल्ली और जिगर की बीमारियों और पागलपन में भी यह लाभ पहुँचाती है। प्रमेह, सोम रोग, प्रदर, और सुजाक में भी यह बड़ी मुफीद है।

कई यूनानी हकीमों का मत है कि स्त्री प्रसंग के समय पर इसको चबाकर मूत्रेंद्रिय पर लगाने से बहुत आनन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार दालचीनी, अकरकरा, और कबाब चीनी एक २ माशा पीसकर शहद में मिलाकर गोली बनालें। एक गोली प्रसंग के पूर्व लेप करने से बहुत स्तम्भन होता है।

सुजाक के अन्दर भी यह औषधि बहुत मुफीद साबित हुई है। तीन माशे से ४ माशे तक कबाब चीनी को पीसकर उस चूर्ण को एक प्याले भर ताजे दही पर भुरकादें और उसे मोटे कपड़े में बान्धकर रात को खुली जगह पर रखदें और सवेरे उसको मिलाकर पीलें। साथ ही इसकी पिचकारी देने से सुजाक में बहुत फायदा होता है।

डाक्टरी मत से कबाब चीनी की तासीर इसके तेल व राल पर मुनस्सिर होती है। आंतो व मेदे पर कबाब चीनी की तासीर काली मिरच की तरह होती है। इसके चूर्ण या तेल को चमड़े पर मालिश करने से वहां पर सुर्खी पैदा हो जाती है। कम मात्रा में लेने से यह पसीना लाने वाली और

ताक़त बढ़ाने वाली होती है। मगर अधिक मात्रा में यह हाजमें की क्रिया को बिगाड़ देती है। और भी अधिक मात्रा में यह आंतों और मेदे में खराबी पैदा कर देती है। यह औषधि खून में प्रवेश करके भिन्न २ अवयवों पर अपना असर पैदा कर देती है। विशेष करके पेशाब के जरिये यह शरीर की तमाम खराबियों को निकाल कर साफ कर देती है। इसीलिये यह पुरानी सुज़ाक, प्रमेह और मसाने की सूजन में इस्तेमाल की जाती है। खांसी और गले की सूजन में इसकी चरपरी गोली बनाकर देने से लाभ होता है। इसकी सिग्रेट बनाकर और उसका धूम्र पान करने से दमे के रोग में लाभ होता है।

उपयोग—

मूत्रावरोध—मिश्री के साथ कबाबचीनी के चूर्ण की फक्की देने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

स्वरभंग—कबाबचीनी, बच, और कुलजन को नागर बेल के पान के रस में पीसकर गोली बनाकर चूसने से मुख के भीतर की सूजन और स्वर भंग तथा गले का भारीपन मिटकर कण्ठ साफ होता है।

आमातिसार—अफीम के साथ इसकी गोलिया बनाकर देने से आमातिसार मिटता है। मगर पथ्य में केवल मूंग, चांवल और कच्चे केले की खीचड़ी देना चाहिये।

मूत्र वृद्धि—दूध के साथ इसके चूर्ण की फक्की देने से मूत्र वृद्धि होती है।

वीर्य सम्बन्धी रोग—शीतल मिरच, इलायची, वंशलोचन और मिश्री इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर १ तोले की मात्रा में दूध के साथ लेने से वीर्य सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि दाल चीनी और इलायची, हलक़ के रोगों के लिये अक़रकरा और जिगर के रोगों के लिये पीपर है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये मसाने के लिये मस्तगी, सिर दर्द के लिये सदल और गुलाब, और गुर्दे के लिये का कंज है।

मात्रा—इसके चूर्ण की मात्रा ४ माशा, काढ़े की मात्रा ६ माशा और तेल की मात्रा ५ से २० बूंद तक है।

कुछ अंगरेजी नुस्खे—

पुरातन प्रमेह व सुज़ाक के लिये—(१) कबाब चीनी का चूर्ण ३० ग्रेन और फिटकड़ी ५ ग्रेन इन दोनों को मिलाकर दिन में ३ बार लिया जाय।

बच्चों की खासी और स्वर नाली के प्रदाह में—(२) कबाब चीनी १० ग्रेन, गोंद का पानी ३० बूंद, दालचीनी का पानी १ औंस दिन में तीन बार।

सुजाक के लिये—(३) कबाब चीनी १० ग्रेन, पोटेशम नाइट्रेट १० ग्रेन। यह एक खुराक है। खाना खाने के बाद में लिया जाय। पहिले भी लिया जा सकता है।

पुरातन प्रमेह पर—(४) कबाब चीनी १ औंस, शक्कर १ औंस, नारंगी का शरबत २ ड्राम पानी १ औंस। खुराक १ चाय का चम्मच।

कबूतर की बींठ

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से कबूतर की बींठ (विष्ठा) तीसरे दर्जे में गर्म और खुश्क है। यूनानी ग्रंथकारों का कथन है कि जहां कबूतर रहते हो वहां चेचक अथवा माता का रोगी रहें तो जरूर जल्दी आराम हो।

✓खजाइनुल अदविया के मतानुसार कबूतर की बींठ स्त्रियों की सन्तान निग्रह के लिये एक अच्छी वस्तु है। १॥ माशे जंगली कबूतर की बींठ को शकर के साथ खिलाने से या पानी के साथ पिलाने से औरत बांझ हो जाती है। इसकी बींठ को जो के आटे व कतरान के साथ मरहम बनाकर कुष्ठ पर लगाने से शान्ति मिलती है।

१० माशे कबूतर की बींठ को ७ माशे दालचीनी के साथ खाने से पथरी गलकर निकल जाती है। (ख० अ०)

कंभारी

नाम

संस्कृत—अश्वेत, काश्मरी, श्रीपर्णी, कुंभारी, सर्वतोभद्रा। हिन्दी—कुंभेर, कंभर, कंभारी गंभारी कनवहरी, कराटसिंधी। मराठी—शिवण, गमर, कामर। गुजराती—सावन, सेवन, शिवन। बंगाली—मार-गाछ, गूमर, गुम्बर। पंजाब—गुमहर, कुमहर। तामील—कुमिल, कुम्बल। राजपुताना--सैमाला। मध्यप्रांत—गुम्भर, शीवण। कनारी--शिवनी, त्रिपर्णी। लेटिन—Gmelina Arborea (मेलिना आरबोरिया)

वर्णन—

यह औषधि भारतवर्ष, सीलोन और फिलीपाइन द्वीप समूह में पैदा होती है। इसका वृक्ष ६० फुट तक ऊँचा होता है। इसका पिंड सीधा रहता है और उसकी गोलाई ६ फुट तक रहती है। इसकी छाल सफेद और कुछ भूरे रंग की रहती है। माघ से चैत तक इसके पत्ते गिर जाते हैं और चैत बैसाख में नये पत्ते निकलते हैं। इसके पीले रंग के फूल लगते हैं, जिन पर भूरे छींटे होते हैं। इसका फल १ इञ्च लम्बा, मोटा और चिकना होता है। यह पकने पर पीला हो जाता है।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, बलवर्द्धक, पेट की पीड़ा मिटाने वाली और मल को ढीला करनेवाली है। यह अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक तथा बवासीर, ज्वर, त्रिदोष और मूत्र सम्बन्धी तकलीफों में मुफीद है। इसके फूल कुष्ठ और रक्त विकार में मुफीद हैं। ये संकोचक होते हैं। इसका फल मूत्रल, पौष्टिक, कामोद्दीपक, धातुपरिवर्तक, संकोचक, बालों को बढ़ाने वाला तथा प्यास, व्रण, क्षय, अश्मरी और योनि रोगों में लाभदायक है।

यह वनस्पति आर्य औषधि शास्त्र में महत्व का स्थान रखती है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध दशमूल-क्वाथ में इसकी जड़ भी बृहत्पंच मूल में एक है।

सुश्रुत संहिता में इसके लिये लिखा है:—

हृद्यं विबन्धघ्न पित्त सृग्वात नाशनम्।
केश्यं रसायनम् मेध्य काशमर्यं फल मुच्यत्॥

इसका फूल हृदय को आह्लाद देता है। मूत्र की रुकावट को दूर करता है। बालों को मजबूत करता है, बुद्धि को बढाता है, पित्त, रक्त विकार और वायु रोगों को नष्ट करता है और रसायन है।

यूनानीमत—यूनानी मत से यह वनस्पति पित्त, रक्त विकार, कब्जियत और क्षय रोग को दूर करती है। यह वीर्य वर्द्धक, कामोत्तेजक, धातु परिवर्तक और मूत्रल है। इसके पत्तों का रस फोडो से कृमियों को नष्ट करने के लिये और गर्भाशय के विकारों को शान्त करने के लिये काम में लिया जाता है।

वेट के मतानुसार इसकी जड़ कड़वी, शक्ति देने वाली, रुचि बढाने वाली और सारक होती है। यह कफ, संधिवात, ज्वर और अजीर्ण पर उपयोगी में ली जाती है। यह कृमियों को नष्ट करती है।

सरकारी मेडिकल स्टोअर के सुतारी विभाग मे शरीर के हाथ, पाव, इत्यादि कृत्रिम अवयवों को बनाने के लिये इसकी लकड़ी बहुत उपयोगी समझी गई हैं।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि आचार्यों के मतानुसार यह औषधि सर्प और बिच्छू की विष नाशक औषधियों का एक अग है।

राबर्ट्स के मतानुसार सर्पदंश में इसकी जड़ और छिलके का काढा पिलाने के काम में लिया जाता है।

केस और मस्कर के मतानुसार इसके सभी हिस्से सांप और बिच्छू के जहर में निरुपयोगी हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुतार यह औषधि कटु, पौष्टिक, अग्नि वर्धक, विरेचक और साप तथा बिच्छू के जहर में उपयोगी है।

उपयोग—

मूत्रकृच्छ्र—इसके कोमल पत्तों का अर्क पिलाने से मूत्र कृच्छ्र की दाह मिटती है।

कृमिरोग--इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से आतों के कीड़े मरते हैं।

खासी—अडूसे के कोमल पत्तों के साथ इसके पत्तों का रस पिलाने से, कफ और खासी में लाभ होता है।

शीत पित्त--इसके रूखे फलों को पका कर दूध के साथ पीस कर पिलाने से शीत पित्त मिटता है।

क्षत—इसके कोमल पत्तों को पीस कर लेप करने से अंगुली के नख सम्बन्धी क्षत मिटते हैं।

पित्त ज्वर—इसके फलों का क्वाथ पिलाने से पित्त ज्वर छूटता है।

दुग्धवृद्धि—इसकी जड़ और मुलेठी के चूर्ण को शक्कर और शहद के साथ चटाने से स्त्रियों के दुग्ध की वृद्धि होती है।

अम्लपित्त—इसके पत्ते, अपामार्ग की जड़ और सेमर कन्द इन तीनों का चूर्ण, गाय के दूध के साथ १४ दिन तक देने से अम्लपित्त में लाभ होता है।

रक्तपित्त—इसके पके फलो को १ या २ की संख्या में नित्य प्रति खाने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

कमकस्ट

वर्णन—

यह एक दरख्त होता है, जिसमें गन्ने की तरह गांठे होती हैं। कुछ लोगों के मत से यह वही चीज है जिसको हिन्दी मे मेढासिंगी कहते हैं। इसके फूल पीले होते हैं। इसकी डालियों और पत्तों से दूध निकलता है। यह दूध कड़वा होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

यह औषधि सब तरह के चर्म रोग जैसे कुष्ट, खुजली; दाद, फुन्सी वगैरे में लाभ पहुँचाती है। इसी प्रकार बद चलनी से होने वाले गरमी, सुजाक़, पथरी, बदगाठ इत्यादि रोगों में भी यह लाभ दायक है।

कमरकस

नाम—

बाम्बे—कमर कस। बंगाल—मुतुलधी, कोक बुरादी। पंजाब—समुंदर सोख, साठी। लेटिन—Salvia Plebeia, सेलबिया प्लेबिया।

वर्णन—

यह एक वृक्ष का गोंद होता है, जो भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, चीन, और मलाया द्वीप में पैदा होता है। इसका वृक्ष सीधा रहता है। इसका तना सफेदी लिये हुए फिसलना होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार के रहते हैं। इसके फल लम्बे, मोटे, बादामी और फिसलने रहते हैं। (इ०मे०प्लांट्स)

आर्य औषध ग्रन्थ के मतानुसार यह उस वृक्ष का गोंद है, जिसे आसना या बीवला कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह पेशाब की जलन को मिटाने वाला, मसाने की पथरी को नष्ट करने वाला वीर्य वर्धक, वाजीकरण, सुजाक और प्रदर में लाभ दायक और शीघ्र पतन को मिटाने वाला है।

स्टेवर्स के मतानुसार इस वृक्ष के बीज सुजाक और अत्यधिक रजः श्राव में लाभ दायक हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस वृक्ष के बीज रक्तातिसार, सुजाक और खूनी बवासीर में लाभ दायक हैं।

कमरख

नाम—

संस्कृत— वृहद्दल, कर्मरंग, कर्मर, करुख, पीतफल, धाराफल, इत्यादि। हिन्दी—कमरख। बङ्गाली— कामरांगा। मराठी— कर्मर, कमरख। गुजराती— कमरख। तेलगू— तमरता। लेटिन— Averrhoa carambola (एवेरोहा केरम बोला)।

वर्णन—

कमरख का वृक्ष १५ से २० फुट तक ऊंचा होता है। यह अक्सर बागों में लगाया जाता है, इस की डालियों पर एक दूसरे के सामने पत्तों को जोड़े नहीं लगते। इसके बडे पत्ते सन्तरे के पत्तों से चौड़े होते हैं। पत्तों का रंग नीचे से चन्दनियां और उपर से हरा होता है। इनमें छोटे, सफेद, और बैंगनी फूल लगते है। पूस महिने में इसके फल पकते हैं। इसका पका हुआ फल ३ इंच लम्बा कुछ हरा और पीले रंग का होता है। कच्चा फल बिलकुल खट्टा और पकने पर खट मीठा हो जाता हैं। बंगाल में इस की २ जातियां होती है। एक खट्टी और दूसरी खट मीठी, कमरख की एक जाति ऐसी भी होती है जिसमें खट्टापन नहीं के बराबर रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से कच्ची कमरख मल रोधक, खट्टी, वात नाशक, गरम और पित्तकारक है। पक्की कमरख मधुर, खट्टी, बल कारक और रुचिवर्धक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। मीठे की अपेक्षा खट्टे कमरख में सरदी और खुश्की ज्यादा होती है। यह फल कब्जियत पैदा करने वाला है और प्यास को बुझाने वाला है। पित्त की तेजी को तथा पित्त से पैदा हुए दस्त व वमन को रोकता है। मेदा और जिगर को यह ताकत देता है। भूख पैदा करता है। खून की तेजी को मिटाकर खून को साफ करता है। उन्माद रोग में लाभ पहुँचाता है। गरमी से पैदा हुए बुखार, पीलिया, और चेचक में लाभदायक होता हैं, इसका रस आंख के जाले को काटता है। इसका सूखा फल ज्वर में बहुत उपयोगी है। यह शीतलऔर शीतादि रोग प्रति शोधक गुण वाला हैं। भारतवर्ष की शीतल दवाओं में यह एक उत्तम दवा मानी गई है।

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसका पका हुआ फल रक्तार्श अथवा खूनी बवासीर की उत्तम दवा हैं। यह भीतर के अर्श पर ज्यादे मुफीद माना गया है। कई बीमारों पर यह उपयोग में लिया गया। इससे कुछ न कुछ फायदा हर एक बीमार को हुआ। कुछ बीमारों को सन्तोष जनक फायदा पहुँचा। उनके खून का गिरना तुरन्त ही बन्द हो गया और यह प्रभाव स्थायी रहा। इस फल के अन्दर आक्जेलिक एसिड पाया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह और भी कई रोगों में उपयोगी हो सकता है। रक्त

वमन, व अन्य प्रकार के रक्त श्राव के रोगों में खासकर रक्तमय कालो दस्त आने पर यह उपयोगी हो सकता है। प्यास और ज्वर की पीड़ा को दूर करने में भी यह लाभ दायक है।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजों में "हरमे लाइन" नामका उपक्षार रहता है। यह जल में नहीं घुलता है। किन्तु अलकोहल और ईथर में घुल सकता है। यह वनस्पति स्त्री और पुरुष दोनों की जननेद्रियों पर उत्तेजक प्रभाव बतलातीं है। स्त्रियों में यह दूध बढ़ाती और मासिक धर्म के प्रमाण में भी वृद्धि करती है। यह अरगाट, सेव्हिन, इत्यादि औषधियों की तरह गर्भ श्रावक हैं। यह शीत निर्यास के रूप में, काढ़े के रूप ,में और टिंक्चर के रूप में भी काम में ली जाती हैं। इसमें कुछ नशा भी रहता है।

इसके बीज निद्रा लाने वाले, वमन कारक, ऋतुश्रावनियामक और शूल को नष्ट करने वाले होते हैं। इन बीजों का चूर्ण आधे से लेकर २ ड्राम तक की मात्रा में उदर शूल और पीलिया के शूल को नष्ट करने वाला माना गया है।

इन्डो चायना में इसके पत्ते खाज खुजली की औषधि में काम में लिये जाते हैं। यह कृमिनाशक माने गये हैं। इसका फल शीतादि रोग प्रति शोधक है यह ज्वर में शान्तिदायक वस्तु को तौर पर दिया जाता है।

मॉरिशस के मतानुसार इस फल का रस आमातिसार में दिया जाता है। यह पित्त शूल में भी देने के काम में लिया जाता है। इसका काढ़ा पित्तजन्य शूल और रक्तातिसार में उपयोगी माना गया है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह फल शीतादि रोग प्रति शोधक है। यह ज्वर में उपयोगी है। इसमें एसिड पोटेशियम आक्जेलेट्स पाये जाते हैं।

कमल

नाम—

संस्कृत—अम्बुज, पंकज, कमल, पद्म, पुंडरीक इत्यादि। हिन्दी—कमल, कंवल, सफेद कमल, लाल कमल, नीला कमल, इत्यादि। बंगाली—पद्म, श्वेतपद्म, रक्त पद्म, नील पद्म, इत्यादि। मराठी—कमल, तावड़े कमल, पाढरे कमल। गुजराती—कमल, धोला कमल, नीलो कमल। तेलंगी—कलंग, तमरा, नेल्लतामर, नल्लकुलवू। तामील—अम्बल। फारसी—नीलूफर, गुल नीलोफर। अरबी—नर्दनीलोफर। लेटिन—Nelumbium Speciosum Nelumbs Nusifera

वर्णन—

यह पानी में पैदा होने वाली वनस्पति है। यह बड़ी नाजुक होती है। इसका प्रकाड लता की तरह फैलने वाला होता है। इसके पत्ते गोल, बड़े २, प्याले के आकार के, अरबी के पत्ते की तरह

होते हैं। इन पत्तों पर पानी की बूंद नहीं ठहरती। ये चौड़े २ पत्ते थाली की तरह पानी में तैरते हुए दिखलाई देते हैं। इन पत्तो के नीचे जो डण्डी होती है, उसको मृणाल अथवा कमल की नाल कहते हैं। कमल के फूल अत्यन्त सुन्दर और बड़े आकार के रहते हैं। इन फूलों में जो पीला जीरा होता है उसको कमल केशर कहते हैं। कमल के फूलों मे जो स्वरव लगा हुआ होता है, उसको कमल की रज या मकरन्द कहते हैं। इसके फलों को पद्म कोष और बीजों को कमल गट्टे कहते हैं। कमल सफेद, लाल और नीले के भेद से तीन प्रकार का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से कमल शीतल, देह को सुन्दर करने वाला और मधुर होता है। रक्त विकार, विस्फोट, विसर्प और विष को दूर करने वाला है।

सफेद कमल शीतल, स्वादिष्ट, नेत्रों को लाभदायक तथा रुधिर विकार, सूजन, व्रण और सब प्रकार के विस्फोटको को दूर करने वाला है।

रक्त कमल चरपरा, कड़वा, मधुर, ठण्डा, रक्तशोधक, पित्त, कफ और वात को शान्त करने वाला, तथा वीर्यवर्धक है।

नील कमल शीतल, सुस्वादु, पित्तनाशक, रुचिकारक, रसायन कर्म मे उत्तम, देह को दृढ़ करने वाला, और बालों को बढ़ाने वाला है।

नीलोत्पल जिसको फारसी में नीलोफर कहते हैं अत्यन्त स्वादिष्ट, शीतल, पचने में कड़वा और रक्त पित्त नाशक है।

कमलिनि—जड़,नाल, पत्र और बीजादि से युक्त खिले हुए कमल को पद्मिनि या कमलिनी कहते हैं यह कमलिनी मधुर, शीतल, कड़वी, कसेली, स्तनों को दृढ़ करने वाली और रक्त विकार, विष, सूजन और मूत्र कृच्छ्र में लाभदायक है।

कमल के कोमल पत्ते शीतल, और कड़वे होते हैं। ये शरीर की जलन को दूर करने वाले तथा प्यास, अश्मरी, बवासीर और कुष्ट में लाभदायक हैं।

इसकी जड़ कड़वी, कफ पित्त में लाभदायक और प्यास को बुझाने वाली होती है। इसकी केशर शीतल, वीर्यवर्धक, सकोचक, और कफ, पित्त, प्यास, विष, सूजन और खूनी बवासीर में लाभदायक है।

इसके फूल मीठे, शीतल, तथा रक्त विकार, चर्म रोग और नेत्र रोग में लाभदायक हैं।

इसके बीज अर्थात् कमलगट्टे स्वादिष्ट, रुचिकारक, पाचक, गर्भ स्थापक, वीर्यवर्धक तथा पित्त, रक्तदोष, वमन, और रक्त पित्त को नाश करने वाले होते हैं।

इसकी शहद अत्यन्त पौष्टिक, त्रिदोष नाशक और सब प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करने वाली होती है।

वाग्भट के मतानुसार खूनी बवासीर मे इसकी केशर को शक्कर और मक्खन के साथ देने से लाभ होता है।

चक्रदत्त के मतानुसार गुदाद्वार के निर्गमन में कमल के कोमल पत्ते प्रातः काल शक्कर के साथ लेना चाहिये।

भाव प्रकाश के मतानुसार रक्तातिसार युक्त पुराने ज्वर में, उत्पल, अनार का छिलका और कमल की केशर इन तीनों को बराबर लेकर, पीसकर, चावल के पानी के साथ लेना चाहिये।

चरक के मतानुसार जिन स्त्रियों को हमेशा गर्भ गिरने की शिकायत हो उनके लिये इसके बीज बहुत ही मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ मूत्रल होती है। यह गले और सीने की तकलीफों में, अनैच्छिक वीर्यपात में, और माता की बीमारी में मुफीद है। इसका सफेद फूल हृदय और मस्तक के लिये उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। यह प्यास को बुझाने वाला और वायुनलियों के प्रदाह को दूर करने वाला होता है। नेत्र रोग में भी यह लाभदायक है। इसके बीज शीतल, मूत्रल और गर्भाशय के लिये पौष्टिक हैं। यह अत्यधिक रजः श्राव और धवल रोग में भी मुफीद है।

हकीम अजमलखा साहब का कथन है कि कमल गट्टे के भीतर जो विषैली हरी पत्ती रहती है। उसको अर्क गुलाब के अन्दर घिसकर देने से हैजे की मायूस अवस्था में भी लाभ होता है।

इसके फूल पित्त जनित बुखार, पीलिया, और प्यास में लाभदायक हैं। इसका जीरा बवासीर के खून रोकता है और कब्जियत पैदा करता है। चेचक की बीमारी में इसके फूलों का शरबत शान्तिदायक होता है। बच्चों के दांत, दाढ़ निकलते समय की दस्तों में कमलगट्टे के अन्दर रहनेवाली हरी पत्ती लाभदायक है।

इसकी केशर को मुलतानी मिट्टी और मिश्री के साथ देने से अत्यधिक रजः श्राव बन्द होता है। मक्खन और मिश्री के साथ इसकी केशर को चटाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

आधुनिक उपयोग--

आधुनिक अनुभव से इस के फूल रक्तातिसार में संकोचक वस्तु को तौर पर उपयोग में लिये जाते हैं। ये हैजा, ज्वर, और यकृत की तकलीफों में लाभ दायक हैं। हृदय के लिये यह बहुत पौष्टिक है। इसके बीज वमन को रोकने वाले, बच्चों के लिये मूत्रल और ज्वर नाशक होते हैं। ये चर्म रोग और कुष्ट रोग के लिये भी लाभदायक हैं। इसके तन्तु संकोचक और शीतल होते हैं। खूनी बवासीर और अत्यधिक रजः श्राव में शहद और ताजा मक्खन के साथ देने से लाभ पहुँचाते हैं।

राबर्ट्स के मतानुसार इसके सफेद फूल वाली जाति के जड़ की कन्द का रस सीलोन में सर्पदंश पर दिया जाता है। विशेष करके कोब्राजाति के सर्प के विष पर विशेष उपयोगी माना जाता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि साप और बिच्छू के जहर में बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूल शीतल, संकोचक, मूत्रल और पित्त नाशक हैं। कोब्रा साप और बिच्छू के जहर पर भी लाभदायक हैं। इन में दो तीन तरह के उपक्षार और नेलुम्बाइन नामक तत्व पाया जाता है।

रॉक्स वर्ग के मतानुसार इसके बीज वीर्य सम्बन्धी पुरातन प्रमेह में और शारिरिक क्रिया को उत्तेजना देने में लाभदायक है।

बोस और कीर्तिकर के मतानुसार इसके फूल अतिसार, विशूचिका, ज्वर और यकृत की तकलीफों में लाभदायक हैं। ये हृदय के लिये पौष्टिक खाद्य है। इस वृक्ष की पिसी हुई जड़ आमातिसार और बवासीर में शान्तिदायक मानी गई है।

इमर्सन के मतानुसार इस वस्तु का शरबत छोटी माता की बीमारी में शान्ति दायक माना गया है। यह प्रदाहिक ज्वरों में भी उपयोगी माना जाता है। इसकी जड़ दाद और अन्य चर्म रोगों में काम में ली जाती है।

योग रत्नाकर नामक ग्रन्थ के कर्ता के मतानुसार सफेद कमल के पत्ते छोटे बच्चों के गुदाभ्रंश रोग के लिये जिसको आंवल निकलना कहते हैं, बड़े लाभदायक है। इन पत्तों को सुखाकर शकर के साथ देने से इस बीमारी में आश्चर्य जनक परिणाम दृष्टि गोचर होता है।

कमल के फूल की पंखड़ियों को तोड़ते समय एक तरह का शहद के समान रस निकलता है जिसको पदम मधु कहते हैं। इस पदम मधु को नेत्र में आजने से नेत्रों के अनेक रोग मिटते हैं।

उपयोग—

स्तनों का ढीलापन—इसके बीजों को पीस कर शकर मिला कर दूध के साथ १ महीने तक सेवन करने से स्त्रियों के स्तन कठोर हो जाते हैं।

सर्प विष—इसकी मादा केशर को काली मिरच के साथ पीसकर, पीने और लगाने से सांप के दर्द में लाभ होता है।

रक्त प्रदर—कमल की केशर, मुलतानी मिट्टी और मिश्री के चूर्ण की फक्की देने से रक्त प्रदर और रक्तार्श में लाभ होता है।

दाद—इसकी जड़ को पानी में घिस कर लेप करने से दाद और दूसरे त्वचारोग मिटते हैं।

गर्भश्राव—कमल की डण्डी और नाग केशर को पीस कर दूध के साथ पिलाने से दूसरे महिने में होने वाला गर्भश्राव मिट जाता है।

वमन—कमल गट्टे को आग पर सेंक कर उसका छिलका उतार उसके भीतर का सफेद मगज पीस कर शहद में चाटने से वमन बन्द होती है।

बनावटें—

उत्पलादि घृत—नील कमल, श्वेत कमल और रक्त कमल के तन्तु दो २ तोला, मुलेठी २ तोला। इन सब चीजों को लेकर १२८ तोला पानी में ३२ तोला घी के साथ औटाना चाहिये। औटाते २ जब पानी जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस घृत को उत्पलादि घृत कहते है। यह घृत खूनी बवासीर, रक्त प्रदर और गर्भाशय में से पड़ने वाले खून को रोकने के लिये बड़ा अकसीर माना जाता है। जिस स्त्री को हमेशा गर्भपात होने का डर रहता है उस स्त्री को गर्भपात के

लक्षण शुरु होते ही फौरन ये घी देना चाहिये। इसके देने से फौरन रुक-जाता है। इसी प्रकार इस घृत को पीने से और शरीर पर मालिश करने से विस्फोटक और दूसरी जलन वाले रोग मिटते हैं।

कमाशीर

नाम—

यूनानी—कमाशीर।

वर्णन और गुण दोष—

यह एक वनस्पति का गोंद होता है। यह दूसरे और तीसरे दर्जे के बीच में गरम और खुश्क माना जाता है। इसको खाने और लगाने से हर किस्म की सूजन में लाभ होता है। बदूल के गोंद के साथ इसको मिलाकर उसमें कपड़ा तर करके गुदा में रखने से दस्तों के जरिये सब खराब माद्दे को निकाल कर जलोदर में फायदा पहुँचाता है। यह जिगर और फेफड़े के लिये नुकसान दायक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये गुलाब के फूल, सन्दल और कतीरे का इस्तेमाल करना चाहिये। इसकी मात्रा २ रत्ती से १ ड्राम तक की है। (खजानुल अदविया)

कमाज़र यूस

नाम—

अरबी—कमाजर यूस।

वर्णन—

कई लोगों का यह खयाल है कि कमाजर यूस और गोरख मुंडी एक ही चीज है। मगर खजानुल अदविया का मत है कि यह एक दूसरी चीज है। हकीम वालिस कोरीडूस के मतानुसार यह एक प्रकार का घास होता है जो दो बालिश्त भर लम्बा और बहुत बारीक होता है। इसकी जड़ सुर्खी माइल होती है। फूलों का रंग नीला होता है। हकीम जालीनूस के मतानुसार इसकी डालिया रेहान की डालियों की तरह मगर उनसे कुछ मोटी होती हैं। इनका रङ्ग हरा होता है। इसकी जड़ कड़वी और सुखी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—हकीम जालीनूस के मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसीर के मतानुसार यह दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है। यह औषधि पुरानी खाँसी, कामला, तिल्ली और पथरी के रोग में लाभ पहुँचाती है।

सिरके और शराब के साथ इसका सेवन करने से और सिर में पीस कर इसका तिल्ली पर लेप करने से बढी हुई तिल्ली साफ हो जाती है। इसके काढ़े में शहद मिला कर कुछ दिन तक पीने से सर्दी और फेफड़े का दर्द मिट जाती है।

पथरी—२८ तोले पानी में ६४ माशा कमाजर यूस को जोश देकर जब पानी तिहाई रह जाय तब उसमें १० माशे जैतून का तेल मिलाकर छान कर पीने से कुछ ही दिनों में गुर्दे और मसाने की पथरी टूट कर निकल जाती है।

इसकी गोलिया बनाकर उनको शराब में घिस कर आंख के कोये के नासूर में भरने से लाभ होता है।

इसको पीस कर इसकी बत्ती गर्भाशय में रखने से गर्भ गिर जाता है।

इस बनस्पति से एक प्रकार की शराब भी तयार की जाती है। यह शराब जलोदर की प्रारंभिक अवस्था में आमाशय की खराबी और मन्दाग्नि में, पीलिया में और गर्भाशय की सूजन में अच्छा लाभ पहुँचाती है।

यह औषधि मसाना, गुर्दा और आंतों के लिये हानि कारक है। इसके दर्प को नाश करने के कतीरा मुफीद है।

इसकी मात्रा चूर्ण के रूप में १० माशे तक और क्वाथ के रूप में दो तोले तक है। (खजानुल अदविया)

कमा फ़ितूस

यह ककरोंदे की एक जाति होती है, जिसे अरबी में कमा फितूस कहते हैं। यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में खुश्क होती है। यह सुद्दे खोलता है। गर्मी पैदा करता है। जखम को भरता है। औरतों की छाती पर लेप करने से सूजन को बिखरेता है। पीलिया में फायदा पहुँचाता है। गुर्दे के दर्द में मुफीद है। शहद के साथ पीने से मासिक धर्म को चालू करता है। इसका काढा जहर के असर को दूर करता है।

यह फेफड़े और गरम प्रकृति वालों के लिये नुकसान दायक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये शहद और अनिसून (सौंफ) का प्रयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा ४॥ माशे से ७ माशे तक है।

कवाब खन्दान

वर्णन—

यह कवाब चीनी की एक बड़ी जाति है। हिमालय पहाड़ में पैदा होती है। पश्तो भाषा में इसे *डनवरी* कहते हैं।

गुणदोष—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है।

यह औषधि दिल और दिमाग को कूवत पहुंचाती है। पागल पन के अन्दर भी यह मुफीद है। हाजमें को ठीक करती है और सुद्दे को खोलती है। इसके काढ़े के कुल्ले करने से मुँह की सोजिश में

लाभ होता है। सरदी के दस्तों को भी यह बन्द करती है तथा खून साफ करती है।

गरम मिजाज वालों को यह नुकसान पहुँचा कर सिरदर्द पैदा करती है। जिगर की गर्मी के लिये भी नुकसान कारक है।

इसके दर्प को नाश करने के लिये कपूर, नीलोफर, गुलाब और तुख्मकाहू का इस्तेमाल करना चाहिये।

इसके प्रतिनिधि कबाब चीनी और इलायची हैं। इसकी खुराक ३ माशे से ७ माशे तक की है।

कपूरका पात

नाम—

बाम्बे—कफूर कापात, सेस्ती। डेक्कन—कफूर कापात। हिन्दी—कपूरका पात। तामील—सयाइलइ। तेलगू—सिमा कर्पूरम्। लेटिन— Meriandra Bengalensis।

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति अबिसीनिया की है। यह भारत में भी बोई जाती है।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक प्रकार का झाड़ीदार वृक्ष है। इसके पत्ते बरछी आकार के होते हैं। ये १२.५ सेण्टी मीटर लम्बे ४.३ चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद रहते हैं।

गुण—

इसके पत्तों का शीत कषाय, मुखदत और गले के रोगों में मुफीद हैं। यह दुग्ध ग्रंथियों की क्रिया को ढीली करता है।

डॉक्टर चोपरा के मत के अनुसार यह पौष्टिक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। यह संकोचक और कृमिघ्न भी है।

करंज

नाम—

संस्कृत—करंज, अङ्गारवल्लि, वाघापल, हरित वारुणी, पूति करज, नक्तमाल, कावम्नि, मद हस्तिनी। हिन्दी—करंज, कज, करजिका। बगाली—डहरकरज, नारा करंज, करमुज। मराटी—चापड़ा करज, घाणेरा करज, वावड़ा। गुजराती—करज। तामील—पुगामारम, अगिस्त नदम तेलगू—कानुकचेट्टू, कनुगा। फारसी—खेउलमालिसा। लेटिन—Pongamia glabra.

वर्णन—

करंज का वृक्ष ५० | ६० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी पिंड छोटी और गुलाई में ५ से ८ फुट तक होती है। इसकी छाल १ इञ्च मोटी और चिकनी होती है। इसके पत्ते हरे रंग के चमक दार

और आभा पूर्ण होते हैं। इसके फूल नीले, सफेद और बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी फली मोटी, सख्त, कठोर, प्रायः २ इन्च लम्बी और १ इन्च चौड़ी होती है। वैशाख और जेठ में इसके फूल निकलते हैं और दूसरे वर्ष चैत में इसकी फलियां पकती हैं। इसके बीजो में से लाल, भूरा, गाढ़े रंग का बीजों का पांचवां भाग तेल निकलता है। इसके एक प्रकार का गोंद भी लगता है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसकी जड़ और छाल गरम, कड़वी, कसैली, कृमि नाशक और बाधा निवारक होती है। यह नेत्र, योनि और चर्म रोगों में मुफीद है। यह अर्बुद, बवासीर जखम, फोड़े, खुजली, जलोदर, उदर रोग, तिल्ली, मूत्र रोग तथा वात, पित्त और कफ को दुरुस्त करती है।

इसके कोमल पत्ते अग्नि वर्धक, विष नाशक और कृमि नाशक होते हैं। ये भूख बढ़ाने वाले तथा कफ, वात, बवासीर और चर्म रोग में लाभ दायक हैं। इसके पत्ते गरम, पाचक, विरेचक, कृमि नाशक और पित्त कारक होते हैं। ये कफ, वात, बवासीर और जखम को दूर करते हैं।

इसके फूल वात, पित्त, कफ और मधु मेह में लाभ दायक है। इसके बीज गरम, कड़वे, कृमि नाशक, रक्त शोधक, रक्त वर्धक तथा दिमाग़, आंख और चर्म रोगों मे फायदा देने वाले होते है। ये कर्ण पीड़ा, कटि वात, कफ, पित्त, बवासीर, पुरातन ज्वर, जलार्बुद और मूत्र की बीमारियों में मुफीद होते हैं।

इन बीजों का तेल गरम, कृमि नाशक तथा आखों की बीमारिया, आमवात, धवलरोग, खुजली जखम और चर्म रोगों को दूर करता है।

इसकी राख दांतों को मजबूत करती है। इसके पत्तों का पुल्टिश कृमियुक्त घावों पर लगाया जाता है। इसकी जड़ का रस दूषित घावों को साफ करने के कामों में लिया जाता है। यह भगन्दर के घावों को भी बन्द करता है। इसको नारियल के दूध के साथ और चूने के पानी के साथ प्रतिदिन प्रातः काल सुजाक की बीमारी को दूर करने के काम मे लेते हैं।

चर्म रोगों में इसका तेल बहुत ही लाभ दायक है। यह खाज, विसर्पिका और इसी प्रकार के अन्य चर्म रोगों में बहुत उपयोगी होता है।

चरक के मतानुसार पानी के साथ इसके फल की लुग्दी बना कर कुष्ट और विसर्पिका रोग में देते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसका तेल व्रणदार कुष्ट मे उपयोगी है।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, बृहन्निघण्टु रत्नाकर और वृंदमाधव के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के जहर में उपयोगी है। मगर महस्कर और केस के मतानुसार इस वनस्पति का प्रत्येक हिस्सा साप और बिच्छू के जहर में निरुपयोगी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में खुश्क है। यह आख की रोशनी को तेज करता है। इसके पत्ते और फूल पेशाब की बीमारियों को दूर करते हैं। यह चर्म रोगो को जैसे दाद, खुजली, फोड़े फुन्सी इत्यादि को दूर करता है। कृमि रोग में भी यह लाभ दायक है। करंज के बीज ७ माशे की मात्रा में समान भाग मिश्री के साथ देने से दांतों से खून का आना बन्द होता है। खजानुल अदविया के लेखक लिखते हैं कि करंज के बीज साप और बिच्छू के जहर में भी मुफीद हैं। इसका तेल पोने से पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। इस तेल को सर पर मलने से सिर की गंज में लाभ होता है।

यूनानी हकीम करंज की जड़ को स्तम्भन के लिये एक उत्तम औषधि मानते हैं। उनका कहना है कि करज की जड़ को दात के नीचे दबाकर स्त्री सहवास करने से वीर्य स्खलित नहीं होता। इतनी स्तंभन शक्ति पैदा होती है कि जिसकी हद नहीं।

उपदंश या गरमी के चट्ठों पर करंज के तेल में नीबू का रस मिलाकर लगाने से बहुत लाभ होता है। इस को चित्रक के पत्ते, काली मिरच और नमक के साथ मिलाकर दही के साथ चाटने से कुष्ट रोग और मन्दाग्नि में लाभ होता है। इसके फूल का काढ़ा पिलाने से बहु मूत्र रोग में लाभ होता है। इसके बीजों को शहद में चटाने से कुक्कुर खासी में लाभ होता है। मिरगी के रोग में इसके पत्तों को इस्तेमाल करना बहुत मुफीद है।

पथरी रोग में करंज के बीज लाभदायक माने गये हैं। इसके लिये करंज के मगज का चूर्ण १ माशा, ३ माशा शहद के साथ चटाना चाहिये। दूसरे दिन २ माशा, तीसरे दिन ३ माशा इस प्रकार प्रतिदिन १ माशा बढ़ाते हुए ११ दिन तक चटाना चाहिये। फिर उसी प्रकार प्रतिदिन १ माशा घटाते जाना चाहिये। इस प्रकार २१ दिन में पथरी रोग में बड़ा लाभ होता है।

करज के बीजों के चूर्ण को पलाश के फूलों के रस की २१ भावना देकर उसे सुखाले और उसकी सलाइया बनाले। इस सलाई को पानी में घिसकर आख में आंजने से आख की फूली कट जाती है।

करंज के बीज का मगज १ और नीला थोथा १ रत्ती इन दोनों को पीसकर सरसों के बराबर १२ गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक २ गोली देने से पसली का दर्द दूर होता है।

रॉबर्ट्स के मतानुसार सीलोन में साप के जहर में इसके ताजा बीज और जड़ें, पानी या मनुष्य के पेशाब के साथ पीसकर आखों में आजी जाती हैं। इसकी कुछ बूंद नाक के नथनों में भी टपकाई जाती हैं, जिससे बेहोशी दूर हो जाय।

पटवर्धन के मतानुसार करंज का तेल कई प्रकार के चर्म रोगों में लाभ पहुँचाता है। यह खुजली, खाज, फोड़े, शस्त्र के जखम, दाद और कई प्रकार के चर्म रोगों में लाभदायक है।

गिप्सन के मतानुसार इसका तेल खाज, खुजली, विसर्पिका, इत्यादि चर्म रोगों में बहुत

लाभदायक है। नींबू के रस के साथ इस तेल को मिलाकर लेप करने से जोड़ों तथा पेशियो की गठिया में तथा सब प्रकार के चर्म रोगों में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्तों को उबालकर उसके जल से स्नान करने से आमवात की पीड़ा नष्ट होती है। इसकी जड़ का रस दुष्ट विद्रधि को साफ करने में काम में लिया जाता है। इसका तेल खाज, खुजली, दाद और अन्य चर्म रोगों में लाभदायक है। यह तेल अन्तः प्रयोग या पिलाने के काम में भी लिया जाता है, यह अग्निवर्द्धक और पित्त निःस्सारक माना गया है। अग्नि माद्य और यकृत की निष्क्रियता पर यह लाभदायक है। इस वस्तु के पोसे हुए बीज ज्वर निवारक और पौष्टिक माने गये हैं। ये दुर्बलता की हालत में लाभदायक हैं। अपने कफ निस्सारक गुणों के कारण ये वायु नलियों के प्रदाह और कुक्कुर खांसी में भी काम में लिये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजों में २७ से लेकर ३६.४ प्रतिशत तक कडु और जाड़ा तेल रहता है। यह रंग में बादामी होता है और इसमें कुछ खास गंध रहती है। यह रंग और गन्ध हीन भी किया जा सकता है। इसमें Myristic O. 23, Palmitic 6.06, Stearic 2.19, Archidic 4.30, Lignoceric 3.22, Dihydroxys Tearic 4.36, Linolenic O.46, Linolic 9.72 और Oleie Acid 61.30 प्रतिशत रहते हैं। इसमें ३.५६ अन्य पदार्थ रहते हैं जो कि अविच्छेदनीय हैं।

ट्रापिकल स्कूल ऑफ मेडिसिन के मतानुसार इनमें स्थायी तेलों के अतिरिक्त कुछ उड़नशील तेल भी रहता है। किन्तु करीब २५० जी० एम० पिसे हुए बीजों को जांचने पर भी बहुत कम उड़नशील तेल इसमें पाया गया। इसके तेल के विषय में बहुत कुछ अध्ययन होने को है।

इसके बीजों में इसेंशिअल ऑइल की उपस्थिति होने से यह सोचा गया है कि यह इसी कारण से खांसी में लाभदाई होगा। इसके इसेंशियल आइल का चिकित्सा में प्रयोग किया गया। इसका जानवरों को शिराओं में इंजेक्शन भी लगाया गया। परीक्षण से यह पाया गया है कि इससे रक्त भार कुछ बढ़ा लेकिन वह अस्थाई रूप से। सूक्ष्म वायु नलिया कुछ ढीली हुईं। इस विषय का अध्ययन अभी चालू है।

कंरजी

नाम—

हिन्दी—करजी, कजु, कुम्बा, कंज, कंजनालि, पापरी, बचिजा, वेगाना, बिसेंदा, चिलबिल, चिला, चिलिश, चिलमिल, चिरबिल, धामना, कन्दु। अलमोड़ा—कजु। बरमा—मिश्रौक्सेक, पियुक्सेक। कनाड़ी—कालाद्रि, राहु बीजा, रस बीजा, तरवी। मध्यप्रांत—करजी, करिंगा। सोलोन-अड्ल कौविया, वेलाइल। कूर्ग—तपधि। गढ़वाल—पापरी। गुजराती—कंजहो। कुमाऊ—पापर-कज। मलयालम—अवल। मराठी—पापरा, वावल, वावली, बोवोली। मैसूर—तपसी। अवध—

त्रिसेंदा और कुंज। पंजाब—अरजन, कचम्, खुलेन, पापरी, राजेन। रामनगर—पापरी। संस्कृत—चिर बिल्व। तामोल—आवलो, अया, कज तत्रशी, वेलया। तेलगू—नेमाञि, नेविली, पेदनेविली, तपशो। तुलु—राहुबोजा। उड़िया—त्ररंगो। लेटिन—Holoptelea. Integrfolia, (होलोटेलिया इंटेग्रिफोलिया)

वानस्पतिक विवरण—

यह एक फैलने वाला वृक्ष होता है। इसका झाड़ काफी ऊँचा होता है। इसका छिलका कुछ सफेदी लिए हुए राख के रंग का रहता है। इसके पत्ते ७.५ सेण्टीमीटर से लेकर १२.५ सेण्टीमीटर तक लम्बे और ३.२ से ६.३ सेण्टी मोटर तक चौड़े और तीखी नोक वाले होते हैं। इनमें ५ से ७ तक नसें रहती हैं। इसके पुष्प लगते हैं। इसकी पापड़ी गोल रहती है।

उत्पत्ति स्थान—

यह हिमालय के नीचे भागों में, अजमेर, बुन्देलखण्ड, बिहार, आसाम, ब्रम्हा, पश्चिमी प्रायः द्वीप और सीलोन में पैदा होता है।

गुण—

इस वृक्ष का छिलका लुआबदार होता है। इसको उबालकर उसका रस निचोड़ कर सधिवात की सूजन पर लगाते हैं। रस निचोड़े हुए छिलके को पीसकर लगे हुए हिस्से पर लगा देते हैं। इसके पत्तों को लुगदी से सिद्ध किया हुआ तेल फोड़े फुन्सियों पर लगाया जाता है। इसके बीजों को पानी में पीसकर सूजन पर लगाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संधिवात मे उपयोगी है।

करंड (कुरंड)

नाम—

यूनानी—करंड, कुरंड, कोरंड। अरबी—सान। फारसी—हिज्रुल मशीन।

वर्णन—

यह एक किस्म का पत्थर होता है। जमी हुई रेत की तरह इसकी शक्ल होती है। यह सफेद, काला, हरा, खाकी, लाल इत्यादि कई रंगों का होता है। इसमें लाल, मसूरिया और काली जातियां उत्तम होती हैं। इस पत्थर पर छुरी, तलवार, चाकू, वगैरह तेज किये जाते हैं। यह दो तरह का होता है। एक तो बनाया हुआ, जिसे मसनवी कहते हैं और दूसरा खान से निकला हुआ जिसे कुदरती कहते हैं। हिन्दुस्तान में जो कुरंड मशहूर है वो मसनवी जाति का है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसकी तमाम जातिया दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह औषधि विशेष कर बाहरी लेप के काम में आती है। इसका मंजन करने से दांतों और मसूड़ों को लाभ होता है। सूजन

पर इसका लेप करने से सूजन बिखर जाती है। मोम के साथ इसको मिलाकर लगाने से बवासीर में लाभ होता है। इसको जलाकर उसका चूर्ण कर के बहते हुए खून पर लगाने से खून रुक जाता है। यही चूर्ण पुराने जख्मों पर लगाने से उनको भी सुखा देता है। तीन माशे की मात्रा में इसको सिरके के साथ पीने से मिरगी में लाभ होता है।

इसकी हरी जाति को कोयले की आंच में जलाकर उसको पीसकर सिरके के साथ लगाने से दाद, कण्ठमाला और खुजली में लाभ होता है। इसकी सुर्ख और सब्ज जाति से आंख का जाला भी कट जाता है। (ख० अ०)

कर्त

नाम—

अरबी—कर्त। फारसी—शूदर।

वर्णन—

यह एक प्रकार का छोटा पौधा होता है। मिश्र देश के लोग इसे खेतों में बोते हैं और घोड़ों को पुष्ट करने के लिये खिलाते हैं। इसके फल को रस्मी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसको हरी हालत में खाने से यह दस्त लाता है और सूखी हालत में खाने से दस्त रोकता है। इसके काढ़े में शक्कर, शहद या अंजीर मिलाकर पीने से यह सीने की खुश्की को मिटाकर [illegible] को रोकता है। (ख० अ०)

करनफल

नाम—

आफ्रिका—करन फल।

वर्णन—

यह एक क्षुप जाति का छोटा और बहु शाखी पौधा होता है। इसके पत्ते इश्क पेचा और बनफ्शा के पत्तों की तरह होते हैं। फल नीले और सफेदी माइल होते हैं। उनमें लौंग की सी खुशबू आती है। इसकी जड़ में दालचीनी सी गन्ध आती है। यह वनस्पति श्याम देश में तर जगहों पर जङ्गली तुलसी के साथ पैदा होती है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी हकीमों के मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके पीने से मृगी में लाभ होता है। इसका लेप करने से स्तनों की सूजन उतर जाती है और जमा हुआ दूध भी बिखर जाता है। इसको जोश देकर पीने से सांस की तंगी, दमा, तर खांसी और पेशाब की रुकावट मिट जाती है।

यह गरम मिजाज वालों के लिये नुकसान दायक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये बनफ्शा मुफीद है। इसकी खुराक तीन माशे की है। (ख०अ०)

कर्पूरमारम

नाम—

तामील— कर्पूरमारम। लेटिन—Eucalyptus globulus (यूकेलिप्टस ग्लोबलस)

वर्णन—

यह वनस्पति आस्ट्रेलिया और भारतवर्ष में पैदा होती है। यह एक प्रकार का बड़ा वृक्ष होता है। इसका छिलटा मुलायम और नीला होता है। इसके पत्ते बड़े खुशबूदार और हलके हरे रंग के होते हैं। इन पत्तों में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है। इसको यूकेलिप्टस ऑइल कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

दक्षिण आफ्रिका में इसका शीत निर्यास कीड़े मकोड़ों से आक्रांत स्थानों पर छिड़का जाता है। इसके छिड़काव से कीड़े, मकोड़े भाग जाते हैं। इसके पानी की भाप लेने से श्वास क्रिया प्रणाली निर्दोष होती है। इसकी जड़ विरेचक मानी जाती है। ट्रांसवॉल में इसके पत्तों को कुचल कर फोड़ों पर पुल्टिश बांधने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाला और कृमिनाशक है। कर्नल चोपरा कहते हैं कि यूकेलिप्स की करीब तीन सौ जातिया होती हैं, मगर इनमें २५ जातियां ऐसी होती हैं, जिनसे तेल प्राप्त किया जाता है। इनमें भी यूकेलिप्टस ग्लोबुलस और यूकेलिप्टस डमोसा ये दोनों जातिया प्रधान हैं। भारतवर्ष में भी इसकी कई जातियों की खेती होती है। भारतवर्ष में पैदा होने वाली जातियों से प्राप्त किया हुआ तेल उपचार की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। आस्ट्रेलिया के तेल में पाया जाने वाला फेलेड्रेन "Phellandrene" श्वास नलियों की झिल्लियों में प्रदाह पैदा करता है और हृदय की क्रिया में ढीलापन लाता है। ब्रिटिश फरमाकोपिया भी ऐसे यूकेलिप्टिस को जिसमें फेलेंड्रेन की मात्रा अधिक होती है उपयोग में नहीं लेती। आस्ट्रेलियन तेल में Butyrne और Valeria nic Aldehydes नामक दो दूषित तत्व और रहते हैं। भारतीय तेल में ये दोनों नहीं पाये जाते हैं। इसलिये खांसी और अन्य रोगों में भारतीय तेल ही अधिक उपयोगी हो सकता है।

कर्पूर वल्लि

नाम—

वाम्बे—कोरनवा, कपूरली। कनाडी— दोदपत्रि। दक्षिण—अजवान का पात, पानजीरी का पात। हिन्दी-पानजीरी का पात। गुजराती- अजमा, अजमानुपत्र, उभोरतावलियों। मलायलम—

कोमरा, कट्टुकुरका, कुरका, पट्टुकुरका। मराठी--कोरोनवा, कपूरली। तामील—कपूरवल्लि। तेलगू—कपूरवल्लि, कुमायुवाकि, रोग चेतु। लेटिन—Anisochilus Carnosus (एनसाचियस कारनोसस।

उत्पत्ति स्थान—

पश्चिमीय हिमालय, बगाल, मध्यभारत, डेकन, करनाटक, सीलोन और जावा।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक वार्षिक वनस्पति है। इसका प्रकाण्ड पुष्ट होता है। इसकी शाखाएँ चोकोर रहती हैं। इसके पत्ते चौड़े, अंडाकार और चौड़ी किनार के होते हैं। ये ऊपर के बाजू से मुलायम रहते हैं और नीचे के बाजू रुएंदार होते हैं। ये दलदार रहते हैं। इसके फूल स्वतन्त्र रहते हैं। ये फल के अग्र भागपर पाये जाते हैं। इसका फल चपटा, मुलायम, और बादामी रंग का होता है।

गुण—

यह वनस्पति साधारण रूप में उत्तेजक होती और कफ निस्सारक है। यह बच्चों की खासी में उपयोग में ली जाती है।

इसके पत्तों का ताजा रस शक्कर के साथ मिलाकर गले की पीड़ा में दिया जाता है। तामील के डॉक्टर इसे अधिकतर उपयोग में लेते हैं। इसे शक्कर और तिल्ली के तेल के साथ मिलाकर सिर के लेप करने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह उत्तेजक और कफनिस्सारक के है। इसमें इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है।

करमकल्ला

नाम—

हिन्दी—पत्तागोभी, गाँठगोभी, करमकल्ला। फारसी—करनिव। उर्दू—करमकल्ला अंग्रेजी—Cabbage. (केबेज)

वर्णन—

यह एक तरकारी होती है। इसके बीज गोभी के बीज की तरह होते हैं। इसका फूल बहुत बड़ा और गाँठ दार होता है। भारतवर्ष में सब दूर इसकी खेती होती है और सब दूर इसकी तरकारी बना कर खाई जाती है। ;इसकी बागी और जंगली २ तरह की जातिया होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क है और इसकी जंगली जाति तीसरे दर्जे में खुश्क और गरम मानी जाती है। यह वनस्पति शरीर के दोषो को पकाने वाली और शान्ति दायक होती है। साधारण तौर से यह दस्तावर हैं मगर इसको उबाल कर शाग बना कर खाने से

काबिज हो जाती है। यह कामोद्दीपक और मासिक धर्म को नियमित करने वाली है। आंख की रोशनी को बढ़ाती है। पुरानी खांसी को दूर करती है। पेट के कीड़ों को नष्ट कर डालती है। तिल्ली और प्लीहा की सूजन में लाभदायक है। इसकी जड़ की राख पथरी को तोड़ कर बहा देती है। इसके पीने से सांप और बिच्छू के जहर में फायदा होता है। इसका लेप कण्ठमाला में मुफीद है। इसके पत्तों को पानी में जोश देकर खाने से शराब का नशा उतर जाता है।

इसके अधिक इस्तेमाल से दिमाग कमजोर होता है। मेदे को भी इससे नुकसान पहुँचता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये गरम मसाला, नमक और घी का उपयोग करना चाहिये। इसका प्रतिनिधि गोभी का फूल है।

जंगली करम कल्ला—जंगली करम कल्ला बागी से अधिक ताकत वर होता है। यह दस्त को साफ लाता है मगर ज्यादा पका कर खाने से कब्ज पैदा करता है। इसके पत्तों के लेप से घाव जल्दी भर जाते हैं। इसके पत्तों का रस मलने से तर व खुश्क खुजली मिटती है। इसकी जड़ का चूर्ण ७ माशे की मात्रा में लेने से अफीम के जहर को नष्ट करता है। इसके बीज पसीना लाने वाले और कामोद्दीपक हैं।

करलासना

नाम—

बंगाली—बनबर्बटी। बाम्बे—हुलौला, कुलोंडा। संस्कृत—अरण्यमुद्ग। तेलगू—करलासना। मलायलम—कट्टुपेरिन। लेटिन—Phaseolus Adenanthus फेसिओलस एडिनेंथस

उत्पत्ति स्थान—

यह उष्ण प्रान्तों में सभी जगह पाया जाता है।

वानस्पतिक विवरण—

यह फिसलने वाली वनस्पति है। इसके पत्ते दूर २ रहते हैं। इसके पापड़े लम्बे, चौडे चपटे और नुक्कीदार रहते हैं। इसमें १२ से १६ तक बीजे पाये जाते हैं। ये चपटे और काले रहते हैं।

गुण—

इसका काढा आंतों की शिकायतों में काम में आता है। इसे संकोचन पर भी उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार भी यह आंतों की शिकायतों में और संकोचन में काम में आता है।

करवा कंद

नाम—

संस्कृत—अमृता, वाल्या, विल्वमूला, ब्रह्मपुत्री, ब्रह्मीकंद, महौषध, महावीर्य, शबरकन्द, वराहीकन्द। हिन्दी—करवाकन्द, जमीकन्द, गेंथी, वरिन्दा। अकोला—चेदारिकन्द। अमरावती-

बावराकन्द, गोग्दू । आसाम— कथालू, पटनी आलू । बिहार— गीता । बंगाल— बनालू, बन्दोरेचालू बन्द्रीआलू, चमालू । बम्बई— करिन्दा, हदुकरदा । मध्य प्रदेश मटालू, मटारू कन्द । गुजराती— वरही कन्द । मराठी—डुकरकन्द, गठालू । उर्दू— जमींकन्द । तामील—कटुकिलंगू । तेलगू—चेदु-पदुदुम्प । लेटिन— Dioscorea Bulbifera (डिओसकोरिया बल्बीफेरा)

वर्णन—

यह एक लता होती है, जो वर्षा ऋतु में फैलती है । इसके पान गोल और नुकीदार होते हैं । इसकी जड़ में गठाने निकलती हैं, जो बादामी रंग की होती हैं ।

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से इसका कन्द कटु, तिक्त, मज्जावर्द्धक, पौष्टिक, धातु परिवर्तक, कामोद्दीपक, अग्निवर्द्धक और कृमि नाशक होता है । यह मंदाग्नि, मूत्र सम्बन्धी रोग, धवल रोग, वायु नलियों के प्रदाह, बवासीर, अर्बुद और पथरी में लाभ दायक है ।

गुणदोष और प्रभाव—

यूनानी मत--यूनानी मत से इसकी गठाने कड़वी, तीखी, कफ निस्सारक आंतों को सिकोड़ने वाली होती हैं । ये श्वास, वायु नलियों के प्रदाह और पेट की तकलीफों में भी लाभदायक है ।

गायना में इसके फल का छिलका और इसका रस मूत्राशय की बीमारियों में दिया जाता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह बवासीर, आम वात और उपदश रोग में उपयोगी मानी जाती है । इसमें जहरीले ग्लुकोसाइड्स रहते हैं ।

करसना

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी जाति का पौधा होता है । इसकी शाखाऍं जमीन पर फैली हुई रहती हैं । इसके पत्ते काहू के पत्तों से कुछ बडे, फूल सफेद और जडें गाजर की तरह मोटी, लम्बी, खुशबूदार और मीठी होती हैं । खजाइनुल अदविया के लेखक ने इसकी आठ जातिया बतलाई हैं । यह वनस्पति बगदाद के इलाके में, दक्षिण आफ्रिका में विशेष रूप से पैदा होती है । हरी हालत में लोग इसकी शाक बना कर खाते हैं । कुछ लोग पानी और नमक में इसका आचार भी डालते हैं । इसकी जड़ का मुरब्बा शहद में तयार किया जाता है ।

गुणदोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह वनस्पति पहले दर्जे में गरम और खुश्क होती है । मासिक धर्म को नियमित करती है । मतली और दिल की घबराहट को मिटाती है । ३॥ माशे की मात्रा में इतने ही गाजर के बीजों के साथ देने से कामोद्दीपक होती है । इसकी जड़ का काढा शकर मिलाकर पीने से सूजन और फुन्सियां मिटाता है । बिच्छू के विष में भी यह लाभ दायक है । इसकी जड़ की मात्रा ४ माशे तक है । (ख० अ०)

करहली

नाम—

यूनानी—करहली, करहेरी।

वर्णन—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह एक हिन्दुस्थानी मेवा है जो गर्मी के दिनों में होता है। इसका फल जमाल गोटे की तरह मगर उससे पतला होता है। इसका रंग काला, चमकीला और ऊपर से चिकना होता है। इसके अन्दर सफेद मग़ज होती है। इसको नमक और काली मिरच के साथ भून कर खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत के अनुसार यह वस्तु कामेंद्रिय को ताकत देने वाली, वीर्य को गाढ़ा करने वाली होती है। यह पेट में कब्ज पैदा करती है, मगर पेट के दर्द को दूर करती है।

कर्त लाइन

नाम—

यूनानी—कर्त लाइन। फारसी—कनकरावी।

वर्णन—

यह एक रोइदगी है, जो रोके हुए पानी में पैदा होती है। इसके फूल का रंग पीला होता है। इसके फूल के बीच में से एक प्रकार का छत्र सरीखा निकलता है। इसके पत्ते और बीज किसी कदर गोल होते हैं। (ख० अ०)

गुण धर्म और प्रभाव—

यह दूसरे दर्जे के आखीर मे गर्म और खुश्क है। इसके सेवन से शरीर में गर्मी पैदा होती है। शरीर की रक्त वाहिनी नाड़ियों से अगर खून निकलता हो तो यह रोकती है। आंतों के वरम को उतारती है। मेदे और आंतों की दूषित वायु को निकालती है। खाना हजम करती है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ती है। गालों का रंग सुर्ख करती है। पहलू का दर्द मिटाती है। पीलिया, तिल्ली की सूजन, मरोड़ी और आंतों के जखम के लिये मुफीद है। गठिया में भी यह लाभदायक है। अधिक मात्रा में गुर्दे और आंतों को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये काकज और उन्नाव का प्रयोग करना चाहिये। अगर यह न मिले तो अजमोद का प्रयोग करना चाहिये। (ख० अ०)

करानिया

वर्णन

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है जो ठण्डे पहाड़ों में पैदा होता है। इसके फल जैतून के फल की तरह होते हैं। ये फल कच्ची हालत में हरे और पकने पर सुर्ख और उसके बाद काले पड़ जाते हैं इसके पत्ते बिजोरे नीबू के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ छोटे होते हैं।

गुण दोप और प्रभाव—

यूनानी मत—यह दूसरे दर्जे में गरम और मॉत दिल है। इसके खाने से कब्ज पैदा होती है। इसके पत्तों के लेप से वदगाठ और दूसरे दुष्ट फोड़ों को बड़ा लाभ होता है। छोटे २ जख्मों में इससे लाभ नहीं होता क्योंकि यह जरूरत से ज्यादा खुश्की पैदा करता है। (ख० अ०)

करन-पात

नाम—

यूनानी—करन पात। अरबी—जफार अलूजना।

वर्णन—

यह एक प्रकार का घास है। इसकी रंगत कटे हुए नाखुन की तरह भूरी और स्याही माइल होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क है। कामला रोग और सूखी खांसी में मुफीद है। इसका तेल तर खुजली, ऍठन और सूजन में मुफीद है।

यह दिमाग को नुकसान पहुँचाता है। इसका दर्प नाशक उंन्नाव और इसके प्रतिनिधि इन्द्र जौ और सुपारी के फूल हैं। इसकी मात्रा १ माशे से ६ तोले तक है। (ख० अ०)

करिंथुवारि

नाम—

मद्रास—करिंथुवारि। तामील—करिन्दुवरई। मलयालम—करिवेला। लेटिन—Diospiros Poniculata डिओसपायरस पेनीक्यूलेटा।

वर्णन—

यह तिन्दू, या टीमरू की जाति का एक वृक्ष होता है जो पश्चिमी प्राय.द्वीप मे ज्यादा पैदा होता है।

गुण दोप और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फल का काढ़ा, सुजाक, पित्त, और रक्तशुद्धि के लिये उपयोगी है। इसका पिसा हुआ छिलटा आमवात और व्रण पर लाभदायक है। इसके पत्ते मछलियों के लिये जहर हैं।

करिमरस

नाम—

संस्कृत—नीलवृक्ष। मद्रास—करिमारम। कनाडी—कारी। मलयालम—कारि। तामील—करिकटइ। उड़िया—कोरू आमोरियो। लेटिन—Diospyros Candolleana (डिऔष पायरस कण्डोलिएना।)

वर्णन--

यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है जो पश्चिमी प्रायः द्वीप मे पैदा होता है। इसके पत्ते लम्बे, तीखी नोक वाले होते है। इसके नर और नारी दोनों तरह के फूल लगते हैं। इसका फल गोल, हलका, गुलाबी और मुलायम रहता है। इसके बीज चपटे और बदामी होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव--

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल का काढ़ा आमवात और सूजन में उपयोगी होता है।

करोई

नाम--

बम्बई—करोई, करवी। जूनागढ़—पन्दादि। मराठी—करवी। पचमढ़ी—मरोदना। लेटिन—Strobilanthes Callosvs (स्ट्रोबिलेंथस केलोसस)

वर्णन—

यह वनस्पति मध्यभारत, कोकण, दक्षिण, बंबई प्रेसिडेन्सी और उत्तरी कनाड़ा मे पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ी नुमा पौधा है। इसके पत्ते जुड़मा लगते हैं। इसका फल गोल और तीखी नोक वाला होता है। हर एक फल में दो २ बीज गोलाकार और तीखी नोक वाले रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल सेक के काम में ली जाती है। यह अँतड़ियों में होने वाले आक्षेप और मरोड़ों में उपयोगी होता है। कर्ण मूल प्रदाह पर भी बाह्योपचार की तरह यह काम में लिया जाता हैं। इसके फूल घाव को भरने वाले होते हैं।

करियसेम

नाम—

सस्कृत—दधिपुष्पी, खटवागी, कूपा, काकाडि। हिन्दी—करियसेम। गुजराती—अड़दवेलि। मराठी--गोड़ीकुहिरी। तेलंगी—इनुगा दूलगोंडी, गुड्डापुगाचा। लेटिन—Mucuna Monosperma. मुकुना मोनो स्पर्मा।

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता होती है जो हिमालय के पूर्वी भाग, खासिया पहाड़, आसाम, चिट-गांव, और सीलोन के पहाड़ों में बहुत पैदा होती है। इसकी फलिया कुछ गोल और रुएदार होती हैं और उनमें बड़ा, चपटा तथा गोल एक २ बीज होता है।

गुण दोप और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके बीज कड़वे, मीठे, और ताजगी देने वाले, बलवर्धक, आतों को संकोचन करने वाले, और त्रिदोषनाशक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि मूत्रेंद्रिय सम्बन्धी रोग और कुष्ट के जखमों को दूर करती है। यह रक्तशोधक भी है। इसके बीज सूखी खांसी में मुफीद हैं। इसका क्वाथ पिलाने से दमें की बीमारी में लाभ होता है। इसके बीजों को जोश देकर कुल्ले करने से गले, मसूडे और दांतों की बीमारी में लाभ होता है। इनका लेप करने से खून का फसाद मिटता है।

पीटर के मतानुसार इसके बीज कफ और दमे की बीमारी में उपयोग में लिये जाते हैं। उपशामक वस्तु की तौर पर इनका लेप भी किया जाता है।

करियाभूट

वर्णन—

यह एक प्रकार का तेल होता है, जो लकड़ियों के धुएँ में मौजूद रहता है। इसको सनोबर के वृक्ष की लकड़ियों से प्राप्त किया जाता है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि कब्ज करने वाली है। वमन, मेदा की जलन, जी का मिचलाना और हिचकी में भी यह अत्यन्त प्रभाव शाली है। हिस्टीरिया में भी यह दवा लाभ दायक है। दाढ़ के दर्द में, थोड़ीसी रुई को इसमें भिगोकर सुराख के अन्दर रख देने से दर्द फौरन बन्द हो जाता है। अगर किसी को खराब डकारें आती हों और वमन होता हो तो आधे मिनिम की मात्रा में इसको देने से फौरन फायदा होता है। मधुमेह रोग के अन्दर भी कभी २ इससे फायदा होता है। राज यक्ष्मा या क्षय रोग के प्रारभ में ही अगर इसको लेना शुरू कर दिया जाय तो यह बड़ा फायदा करती है। क्योंकि इसमें क्षय के कीटाणुओं को मार डालने की शक्ति है। क्षय के रोगियों को यह औषधि ५ बूँद से शुरू करना चाहिये और धीरे २ बढाते २ साठ बूँद तक बढाना चाहिये। मगर जिन क्षय रोगियों के कफ में से खून गिरता हो, उनको यह सेवन नहीं करना चाहिये।

अधिक मात्रा में इस औषधि को सेवन करने से जी मिचलाता है। सांस खिंच कर आने लगता है और नाड़ी की गति तेज हो जाती है। इसलिये इसको अधिक मात्रा में नहीं लेना चाहिये। इसकी साधारण मात्रा १ से तीन मिनिम तक की है। (ख० अ०)

करिवागेटि

नाम—

बाम्बे—करिवागेटी, कुर्विवा गेटी। कनारीज—कड्कजि, कनिंबे। गोआ—करिवागेटी, कुर्विखाघेटी। मराठी—करियागेटि, कुर्ववागुटी, रनीर। नेपाल—नरकन्त। सिंहालीज—वेल गिरिया। लेटिन—Paramignya Monophylla (पेरेमिगनिया मोनोफिला)

उत्पत्ति स्थान—

कोकन, डेकन, पश्चिमीय घाट में कनाड़ा से त्रिनावेली तक ६ हजार फीट की ऊँचाई तक, सीलोन, सिक्खिम में २ हजार से ५ हजार फीट की ऊँचाई तक, भूटान, खसिया पहाड़ी व टेनासरिम।

वानस्पतिक विवरण—

यह हमेशा हरी रहने वाली पराश्रयी लता है। इसकी पुरानी शाखाओं पर कुछ काटे रहते हैं। इस पर बहुत से पत्ते होते हैं। इसके पत्र अन्द लंबे रहते हैं। इसकी पत्ति या तीखी नोक वाली और मुलायम होती है। इसके पुष्पभ्यांतर आवरण मुलायम होता है। उसमें ५ पंखड़ियां होती है। इसका फल गोल और मुलायम रहता है। इसमें बहुत से बीजे रहते हैं। ये बीजे चपटे होते हैं।

गुण--

गोवा में वहा के निवासी इसकी जड़ को अग्नि वर्द्धक, पौष्टिक वस्तु के रूप में काम में लेते है।

कोकन में इसकी जड़ जिन ढोरो के पेशाब में खून आता हो, उनको देने के काम में ली जाती है। पेट से खून जाने पर भी यह उपयोगी है।

सर्पदंश में उसके कुचले हुए पत्ते घावो पर लगाने के काम मे लिये जाते है।

केश और महस्कर के मतानुसार इसके पत्ते सर्पदंश में बाह्यो-प्रचार में निरुपयोगी माने गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह धातु परिवर्तक और मूत्रल है। इसकी जड़ मूत्र मे रजकण की उपस्थिति पर दी जाती है।

—

करील

नाम—

संस्कृत—करीर, गूढपत्र,शाकपुष्प, तीक्ष्ण कटक, इत्यादि। हिन्दी—करील। मारवाड़ी—करे। बंगाली—करील। पंजाबी—कचड़ा। मराठी—नेपती। गुजराती—केरडीकेर। फारसी—कबार। लेटिन—Capporis Decidua (केपेरिस डेसिडुआ) Capporis Aphylla

वर्णन—

करील के वृक्ष २० फीट तक ऊँचे बढ़ते हैं। इसके तने की गोलाई ४ फीट से लेकर ८ फीट तक की होती है। इसकी छाल आधा इंच मोटी और गहरे भूरे रंग की होती है। इस छाल में खड़ी दरारे होती है। इसके बहुतसी डालिया लगती है। इसके फूल गहरे लाल रंग के होते हैं। इसके पत्ते बारीक, पतले और हरे रंग के होते हैं जो इसकी नाजुक शाखाओं पर आते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे और पक्की हालत में लाल हो जाते हैं और छोटे २ होते हैं। जेठ और आषाढ़ में इसके फल पकते

हैं। इसके फलों को मारवाड़ी मे ढालू कहते हैं। इसके वृक्ष गुजरात, कच्छ, मारवाड़, इत्यादि स्थानों में बहुत होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से करील कसैला, गरम, चरपरा, आफरा पैदा करनेवाला रुचिकारक, भेदक, विष नाशक, विरेचक और कृमि नाशक होता है। यह खांसी और श्वास में लाभदायक है। व्रण, अर्बुद, वमन और बवासीर में इसका उपयोग मुफीद है। यह ग्राही, मुख की दुर्गंध, पित्त, और मूत्र सम्बन्धी तकलीफो को नाश करने वाला है।

इसके फूल कफ और वात को नष्ट करने वाले, हलके और रुचि कारक होते है। इसके कच्चे फल कफ को नष्ट करने वाले, सूजन में लाभदायक तथा पके फल कफ और पित्तनाशक हैं।

*यूनानी मत—*यूनानी मत से इसकी जड तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। फल तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क हैं। किसी २ के मत से गरम और तर है। बीज तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। पत्ते पहले दर्जे में और फूल दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं।

यह औषधि आमवात, कटिवात, हिचकी, कफ और श्वास में मुफीद है। यह कफ के दोष को मिटाती है। फोडे, फुन्सी और बवासीर में लाभ दायक है। शरीर के अगो की सूजन को मिटाती है। इसका फूल कफ और पेट के विकार को दूर करता है। यह फालिज (लकवा) और तिल्ली की बीमारी में लाभ दायक है। यह दस्तों को रोकने वाला और कब्जियत पैदा करने वाला है। इसका आचार सिरके में बना कर खाने से तिल्ली का वरम जाता रहता है। यह कफ को भी काटता है तथा जोड़ो के दर्द (Rheumatism) और क्षय की बीमारी में भी लाभ दायक है।

इसका फल दिल को कुव्वत देता है। स्मृति और बुद्धि को बढाता है। कामेंद्रिय को बलवान करता है। इसकी कोंपल को समान भाग असबन्द के साथ कूट छान कर हर रोज ६ माशे बासी पानी के साथ मासिक धर्म के समय स्त्री को खिलाने से उसके संतान होना बन्द हो जाती है और किसी तरह की तकलीफ नहीं होती। इसी प्रकार इसी कोंपल को बिना पानी के पीस कर मलने से दाढी और सिरके बाल जम जाते हैं।

जलोदर रोग के अन्दर भी यह औषधि प्रभावशाली मानी गई है। हकीम अली ने शरह कानून में लिखा है कि:—

इस्तसकायेजकीअ (जलोदर) अगर किसी सूरत से अच्छा न हो, मर्ज जड़ पकड़ गया हो और सेहत की उम्मीद न हो तो करील की जड़ को सुखा कर उसका चूर्ण करके १ तोले की मात्रा में प्रतिदिन १ हफ्ते तक खिलाऍ और भुनी हुई, काबिज और चिकनी चीजो से परहेज करें। इस औषधि से बड़ा लाभ होता है। हकीम अली ने इस औषधि की बड़ी तारीफ की है।

यूनानी हकीमों के मत से इसकी जड इसके अंगों से ज्यादा प्रभावशाली है। इसमें विष

नाशक शक्ति भी रहती है। इसलिये जहरीले जानवरों का जहर दूर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। इसके पत्तों और फूलों की ताकत बराबर है। इसके पत्तों का रस पेट के कीड़ों को नष्ट करता है। इसकी जड़ की छाल को सिरके में पीस कर दाद, झाईं और फोड़े, फुन्सियों पर लगाने से फायदा होता है। इसकी जड़ से शिकञ्जबीन बनाई जाती है जो मूत्रल होती है।

यह औषधि गरम मिजाज वालों के मेदे, गुर्दे और दिमाग को नुकसान पहुँचाती है। इसके ज्यादा इस्तेमाल से खुजली पैदा होती हैं। इसके दर्प को नष्ट करने वाली अनीसून, उस्तखद्दूस, शहद और कुल जन है। इसकी मात्रा चूर्ण के रूप में १० माशा, काढ़े में १॥ तोले से २ तोले तक और रस के रूप में २ तोले से २॥ तोले तक है।

स्टेवर्ट के मतानुसार पंजाब में इसकी नाजुक शाखाएँ और पत्ते पीस कर फफोले पर लगाये जाते हैं। यह फोड़े, फुन्सी और प्रदाह पर काम में आती है। यह विष प्रतिरोधक है तथा जोड़ों के दर्द में भी फ़ायदा पहुँचाती है। दांतों की पीड़ा में भी इसका चूसना मुफीद है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह प्रदाह नाशक है।

उपयोग—

ज्वर—इसकी कोमल कोंपल और कोमल पत्तों को पीस कर टिकिया बनाकर कलाई पर बांधने से फोला होकर ज्वर छूट जाता है।

दन्त पीड़ा—इसकी कोंपल को मुंह में रख कर चबाने से दन्त पीड़ा मिट जाती है।

तिल्ली—इसकी सूखी कोंपलों के चूर्ण की १ तोले की मात्रा में ६ माशे काली मिरच के साथ प्रातःकाल फक्की लेने से तिल्ली मिट जाती है।

खूनी बवासीर—इसकी १ तोले जड़ को ३ सेर पानी में औटा कर जब आध सेर पानी रह जाय तब उसके दो हिस्से करके दिन में दो बार सुबह और शाम पिला देना चाहिये। इस प्रकार ७ या ८ दिन तक प्रयोग करने से रक्तार्श मिट जाता है।

जोड़ का दर्द—इसकी लकड़ी की राख को घी में मिलाकर चाटने से जोड़ों की पीड़ा मिटती है। कमर का दर्द भी इससे नष्ट होता है।

केश वर्धन—इसकी जड़ को पीस कर बालों की जड़ में मलने से बाल बढ़ते हैं।

बनावटें—

श्वास नाशक अर्क—करील की ताजा जड़ें लाकर उनके टुकड़े कर, उन टुकड़ों को कूट कर एक मिट्टी के बरतन में भर कर फिर पाताल यन्त्र से उसका धुआं निकाल लेना चाहिये। इस धुए को १ माशे की मात्रा में शक्कर के साथ लेकर ऊपर से गरम पानी पीने से दमे का भयङ्कर हमला भी तत्काल शान्त हो जाता है। कुछ दिनों तक, लगातार सेवन करने से हमेशा के लिये दमेका रोग मिट जाता है और इसी अर्क को बवासीर के मस्सों पर सवेरे शाम मलने से थोड़े दिनों में मस्से मुरझा कर गिर जाते हैं।

तांबे की श्वेत भस्म—शुद्ध किये हुए तांबे के मोटे टुकड़े को या ढब्बू पैसे को अग्नि में गरम कर करके करील की कोंपलों के रस में ५० दफे बुझाना चाहिये। उसके बाद उसको इन्हीं कोंपलों की लुगदी में रख रख कर २।३ बार गजपुट में फूंकने से सफेद रंग की भस्म तैय्यार होती है। कोंपलों के रस के बदले में अगर करील का ताजा हरा लक्कड़, जो लम्बाई में १६ अँगुल और मोटाई में ६ अँगुल हो, उसमें ८ अँगुल गहरा छेद करके उसमें उस तांबे के टुकड़े को अथवा पैसे को रख कर ऊपर करील की लकड़ी का बुरादा भर, उसी का डाट लगाकर गजपुट की आंच देने से भी सफेद भस्म तयार हो जाती है। अगर उसमें कुछ कसर रह जाय तो एक दो बार इसी प्रकार करने से ठीक हो जाती है।

यह भस्म नपुंसकता, उदररोग, श्वास, इत्यादि रोगों में योग्य अनुपान के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है। नपुंसकता में इसको घी के साथ चटाकर ऊपर से ५/१० तोला घी पिलाना चाहिये। इससे प्यास ज्यादा लगती है। मगर ४ पहर तक पानी नहीं पिलाना चाहिये। अगर तृषा न रुके तो दूध में घी मिलाकर देना चाहिये। इससे नपुंसकता में बड़ा लाभ होता है। जब तक दवा का सेवन चालू हो तब तक तेल, खटाई, लालमिरची वगैरह का त्याग करदेना चाहिये। (जङ्गलीनी जडीबूटी)

करु

नाम—

हिन्दी—करु, कुटकी। संस्कृत—नीलकण्ठ। बंगाल—करु, कुटकी। बाम्बे—पाखानभेद, फाशानबेदा। गुजराती—पखानभेद। पंजाब—कमल फूल, नीलाकिल, नीलकठ। लेटिन- Gentiana Kurroo (जेशियाना करू)

वानस्पतिक विवरण—

इसकी जड़ मोटी होती है। इसके पत्ते कम चौड़े और लम्बे होते हैं। इसके फूल नीले रहते हैं। इनके ऊपर कुछ सफेद दाग होते हैं। इसकी फली लम्बी होती है।

उत्पत्ति स्थान—

काश्मीर, उत्तर पश्चिमी हिमालय पर ५००० से ११००० फीट की ऊँचाई तक होती है।

गुण—

यूनानी मत— यह वनस्पति स्वाद में कटु और खराब होती है। यह खून को बढाने वाली व ऋतुश्राव नियामक है। यह धवल रोग में फायदा पहुँचाती है।

इसकी जड़े कटु पौष्टिक पदार्थ की तरह उपयोग में ली जाती हैं। पहाड़ियों के ऊपर इसे ज्वर निवारक मानते हैं। घोड़ों को पुष्ट करने के लिये जो मसाले दिये जाते हैं उनमे यह खास करके दी जाती है। अधिक मात्रा में दिये जाने पर यह मृदु विरेचक हो जाती है। यह हृदय रोग के बुखार को कम करती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह पौष्टिक और अग्नि प्रवर्धक है।

नोट—

इसका और विशेष वर्णन कुटकी या कह (Picrorhiza Kurrooa) में दिया गया है।

करेला

नाम—

संस्कृत—कारवेल्ल, कारवेल्ली, अंबुवल्लिका, उग्रकाड, कण्टफला, इत्यादि। हिन्दी—करेला, करेली। बंगाली—उच्छे करेला, पोटी काकर, बराम मिया। गुजराती—करेलो, कड़वा वेला। मराठी—कारलें, क्षुद्र कारली। पंजाबी—करेला। तेलगू—काकरा, उरकाकरा। अरबी—उलहीमार, क्रिसोलबरी। फारसी—करेला, खिमहग। लेटिन—Momodica Charantia।

वर्णन—

यह एक लता जाति की वनस्पति है। इसके फूल पीले होते हैं। इसके पत्ते कटे हुए रहते हैं। इसके तन्तु नाजुक और मुलायम होते हैं। इसके फूल बिना गुच्छे के होते हैं। इसका फल कच्ची हालत में हरा और पकने पर नारंगी के रंग का हो जाता है। यह नुक्कीदार होता है। इसके ऊपर कई दाने रहते हैं। इसके बीज दबे हुए और लम्बे रहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक को करेला और दूसरे को करेली कहते हैं। जो बरसात में पैदा होता है उसे करेली कहते हैं और जो गरमी में पैदा होता है उसे करेला कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से करेले की जड़ नेत्र रोग, गुदा द्वार की पीड़ा, और योनि भ्रंश रोग में काम में ली जाती है। इसका फल कटु, शीतल, भेदक, हलका, कड़वा, विरेचक, ज्वर निवारक, कृमिनाशक और क्षुधावर्द्धक होता है। यह पित्त, कफ, रक्तविकार, रक्ताल्पता और मूत्र सम्बन्धी बीमारियां, श्वास, व्रण, और वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी है।

करेली अत्यन्त कड़वी, अग्निप्रदीपक, हलकी, गरम, शीतल, दस्तावर, तथा अरुचि, कफ, वात, रुधिर विकार, ज्वर, कृमि, पित्त, पाडुरोग और कुष्ट रोग को नष्ट करने वाली है।

इसके पत्तों का ताजा रस कुछ हलदी के साथ में माता की बीमारी में, खसरे में, और अन्य विस्फोटक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अन्दर किसी २ के मत में यह सर्द, किसी के मत मे समशीतोष्ण और किसी के मत से तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसका फल कडुआ, पेट के आफरे को दूर करने वाला, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक, कामोद्दीपक, और कृमिनाशक होता है। यह आंतों को सिकोड़ने वाला तथा उपदंश, आमवात, चक्षुरोग और तिल्ली की बीमारी में मुफीद है।

इसके फल और पत्ते कृमिनाशक हैं। ये बवासीर, कुष्ट और पीलिया रोग में उपयोगी माने जाते हैं। इसकी जड़ संकोचक और रक्तार्श को दूर करने वाली है। इसके ताजे पत्तों का रस मृदु विरेचक औषधि का काम करता है। यह बच्चों के लिये विशेष रूप से काम में लिया जाता है। इसका रस काली मिरच के साथ में रतौंधे की बीमारी को दूर करने के लिये अक्षिकोटर या आंख की पपड़ियों के आस पास लगाया जाता है।

गोल्ड कॉस्ट में यह वनस्पति संभोग शक्ति वर्धक मानी जाती है और अधिक मात्रा में सुजाक की बीमारी में फायदा पहुँचाने वाली समझी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति वमन कारक और विरेचक है। यह सर्पदंश में भी उपयोगी मानी जाती है।

केस और महस्कर के मतानुसार सर्प विष के अन्दर यह वनस्पति बिलकुल निरुपयोगी है।

उपयोग—

पथरी—इसके पत्तों का रस पथरी के लिये बड़ा लाभदायक है। इस रोग में इसको देने की विधि इस प्रकार है। इस के हरे पत्तों का रस ३ तोले लेकर १॥ तोले दही के साथ खिलाकर ऊपर से ५।६ तोला छाछ पिलादें। इस प्रकार ३ दिन तक करें। उसके बाद ३ दिन तक दवा बन्द करदें। उसके बाद फिर चार रोज तक दवा देकर फिर चार रोज के लिये बन्द करदें। फिर पांच दिन तक दवा देकर पांच रोज के लिये बन्द करदें। इस प्रकार ७ दिन तक बढावें। पथ्य में केवल खिचड़ी और चांवल ही देना चाहिये।

आंतों के कीडे—इसके पत्तों का रस पिलाने से आंतों के कीड़े मिटते हैं।

मुंह के छाले—इसके रस में चाक मिट्टी मिलाकर लगाने से मुंह के छाले मिटते हैं।

खुजली—करेले का पंचाग, दालचीनी, पीपर और चांवलों को जंगली बादाम के तेल में मिला कर लगाने से खुजली आदि त्वचा के रोग मिटते हैं।

कामला—इसके पत्तों के रस में बड़ी हरड़ घिसकर पिलाने से कामला रोग मिटता है।

गठिया—इसके कच्चे फल के रस को गरम करके लेप करने से गठिया में लाभ होता है।

तिल्ली—इसके फल के रस में राई और नमक भुरकाकर पिलाने से तिल्ली में लाभ होता है।

जलोदर—इसके २ तोले रस में थोड़ा मधु मिलाकर पिलाने से जलोदर में विरेचन लगकर लाभ होता है।

विशूचिका—इसके रस में तेल मिलाकर पिलाने से विशूचिका में लाभ होता है।

कण्ठ की सूजन—सूखे करेले को सिरके में पीसकर गरम करके लेप करने से कण्ठ की सूजन मिटती है।

रति शक्ति की कमजोरी—इसके पत्ते और फल के रस को आग में खुश्क करके तीन २ माशे

की गोलियां बनालें। इसमें से १ गोली पहले थोड़ा गाय का दूध पीकर ऊपर से निगल जांय। उसके बाद थोड़ी सी शहद चाटलें। इस प्रयोग से रति शक्ति और स्तम्भन शक्ति में बहुत वृद्धि होती है।

यह वनस्पति गरम प्रकृति वालो के लिये नुकसान करती है।

नाशिक के सरकारी डिस्टिलरी के डाक्टर बी० ए० गुप्ता एम० बी० बी० एस० आयुर्वेद जरनल के मार्च मास के अंक में लिखते हैं कि मैने १ महीने में सन्धिवात के ३ केस नीचे लिखे उपाय से दुरुस्त किये हैं—

करेले के ऊपर की छाल को निकाल कर उसके अन्दर के गर्भ को १० मिनट वाफ कर उसमें थोड़ी सी शकर मिलाकर रोगी को गरम-गरम खिलाया जाता था। प्रतिदिन सबेरे और शाम आधी रतल करेला प्रत्येक बीमार के उपयोग में लिया जाता था।

इस प्रकार १० दिन तक चालू रखने से स्नायु गत और सन्धियों (जोड़ों) का सन्धिवात मिट जाता है।

करेलिया

नाम—

संस्कृत—अजगन्धा, विलपर्णी, अर्कपुष्पिका, ब्रह्मगर्भा, उग्रगन्धा। हिन्दी—करेलिया; हुलहुल, सफेद हुलहुल। बंगाली—हुलहुल, कामला, अर्कहुली। गुजराती—धोली तलवणी, अदियाखरन। मराठी—तिलवण, कनफाडी। राजपुताना—पागरा, पगरा। सिंधी—किनरो। तामील—कड़गु, वेलई। लेटिन—Gynandropsis Pantaphylla (गायनेनड्रायप्सिस पेंटाफिया)

वर्णन—

यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका क्षुप हाथ डेढ़ हाथ लम्बा होता है। यह वर्षा काल में सर्वत्र पैदा होती है। इसका तना सीधा होता है, इसके पत्ते ३ से लेकर ५ तक की गुच्छियों में रहते हैं। इसके पत्तों की लंबाई २ सेंटिमीटर से ४ सेंटिमीटर तक और चौड़ाई १.२ सेंटिमीटर से २.५ सेंटिमीटर तक रहती है। इसके हलके गुलाबी रंग के फूल आते हैं। इसकी फलिया ५ सेंटिमीटर से ६ सेंटिमीटर तक लम्बी रहती है। इसके बीज गहरे बदामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति सभी उष्ण देशों में सामान्य रूप से पाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ उष्ण, तीक्ष्ण, वात नाशक, अग्नि वर्धक तथा जलोदर, अर्बुद, वृण, कान का दर्द, तिल्ली की वृद्धि और पित्त ज्वर में लाभ दायक है।

सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश में और चरक के मतानुसार विच्छू के डङ्क मे लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके ताजा पौधे में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है जो बहुत दाहजनक है। इस तेल की क्रिया राई और लहसन के तेल के समान होतीहै।

इसके बीजों की क्रिया राई के समान दाहजनक, दीपन, पाचन, उत्तेजक और कृमि नाशक है। इसकी जड़ उत्तेजक और पसीना लाने वाली है। इसके पत्ते पीव न पड़ने देने के लिये फोड़ों पर लगाये जाते हैं। ये चर्मदाहक होते हैं। इन पत्तों को कुचल कर छालों पर लगाने से बिना किसी प्रकार की असुविधा के छाले दुरुस्त हो जाते हैं। इसके पत्तों का स्वरस कर्ण शूल में उपयोगी माना जाता है। जहाँ २ यह वनस्पति पैदा होती है, वहां २ इस रोग में फायदा पहुँचाने के सम्बन्ध में इसकी बड़ी तारीफ है। मगर कान में इसको डालते समय बहुत जलन होती है। इसलिये इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिये।

दक्षिण आफ्रिका में इसके पत्तों को पीस कर सन्धिवात, स्नायुशूल और सिरदर्द में जलन तथा तकलीफ दूर करने के लिये काम में लेते हैं। मगर इसका लेप अधिक देर तक नहीं रखा जाता; क्योंकि उससे छाले पैदा हो जाते हैं।

इसके बीज कृमिनाशक और चर्म दाहक हैं। इन का अन्तः प्रयोग करने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

राबर्ट्स के मतानुसार सीलोनमें इसको कोबरा सर्प के काटने पर एक उत्तम औषधि मानते हैं। इसकी जड़, पत्ते और बीज पीस कर घाव पर भी लगाये जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार साप और बिच्छू के विष पर यह निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वर के अन्दर उपयोग में ली जाती है। इसके पत्ते चर्म दाहक हैं। यह बिच्छू और साप के विष पर उपयोगी मानी जाती है। इसमें ईसेंशियल ऑइल रहता है।

करौंदा

नाम—

संस्कृत—अविघ्न, बहुदल, करमर्द, जातिपुष्प, फलकृष्ण, दृढ़कण्टक इत्यादि। हिन्दी—करौंदा। गुजराती—करन्दन, करमदी, करमर्द। मराठी—इरदु डो, करवँदी। बंगाल—बैंची, करमक, करेजा। मध्यप्रान्त—गोथो। तेलगू—कलिवे, कलिवी। फारसी—करूँदह। लेटिन—Carissa Carandas (केरिसा केरेंडस)

वर्णन—

यह एक बड़ी और हमेशा हरी रहने वाली झाड़ी है। इसका पिंड ३।४ फीट लम्बा और २ फीट गोलाई का होता है। इसके काटे बड़े तेज और मजबूत रहते हैं। इसकी छाल आधा इंच मोटी, भूरे रंग की अथवा जर्दी माइल सफेद होती है। इसके पत्ते गोलाकार, चिकने वाले और चमकीले होने

हैं। इसके फूल छोटे, सफेद रंग के और अत्यन्त सुगन्धित रहते हैं। बसन्त ऋतु में जब करोंदी फूलती है, तब उसके आगे से निकलने वाले की तबियत मस्त हो जाती है। इसका फल कच्ची हालत में हरा और पकने पर बैंगनी या काले रंग का होता है।

गुण दोष--

आयुर्वेदिक मत-- आयुर्वेदिक मत से कच्चा करोंदा कड़ुआ, अग्निप्रदीपक, भारी, पित्त-कारक, मल रोधक, खट्टा, गरम, रुचिकारी, रक्त पित्त कारक, कफ जनक और तृषा नाशक है। इसका पका हुआ फल मीठा, रुचिकारक, हलका, शीतल तथा, पित्त, रक्त पित्त, त्रिदोष, विष और वात को नाश करने वाला है।

यूनानीमत-यूनानी मत से यह सर्द और तर है। किसी २ के मत से सर्द और खुश्क है तथा किसी के मत से यह गर्म है। इसका पका हुआ फल पित्त को दबाने वाला, प्यास को बुझाने वाला और पित्त की दस्तों में लाभ पहुँचाने वाला है। इसका कच्चा फल पेट को फुला देता है और कफ कारक है। इसका आचार भूख बढाने वाला और हाज्मा पैदा करने वाला है। मगर इन्द्रिय को कमजोर करने वाला है।

किसी २ के मत से इसकी प्रकृति अंगूर और फालसे से मिलती हुई है। यह हलका और शीरीं है। इसका खट मीठा फल पित्त को नाश करके भूख को बढाता है। पेशाब की रुकावट को या बूंद २ पेशाब आने की शिकायत को दूर करता है। इसके चूरन की फक्की देने से पेट का दर्द जल्दी अच्छा हो जाता है। लगातार आने वाले बुखार में इसके पत्तों का काढ़ा देने से बड़ा लाभ होता है। इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से सूखी खांसी मिटती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतादि रोगो को नष्ट करने वाली है। इसमें सेलिसाईलिक एसिड (Salicylic Acid) और उपक्षार पाया जाता है।

इसकी जड़ कटु अग्नि प्रवर्द्धक वस्तु की तौर पर मशहूर है। कोकन में इसकी जड़ को घोड़े के पेशाब, नीबू के रस और कपूर के साथ पीसकर खुजली की दवा के रूप में काम में लेते हैं।

उपयोग--

मृगी-- मृगी के रोग के लिये इसके पत्ते बहुत उपयोगी हैं। इसको देने की तरकीब इस प्रकार है। जंगली करोंदे के पत्ते ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में पीसकर दही के तोड़ के साथ पिलाने से कुछ दिनों में मृगी जाती रहती है (खजाइनुल अदविया)

जलोदर-- जलोदर के रोगी को करोंदे के पत्तो का रस पहिले दिन १ तोला, दूसरे दिन २ तोला इस तरह प्रतिदिन एक २ तोला बढाते हुए दसवे दिन १० तोला रस तक पिलावें। फिर प्रतिदिन एक तोला रस घटाते हुए बीसवे दिन पीछा एक तोला रस दे। इस प्रकार नित्य प्रातः काल इसके पत्तों का रस पिलाने से जलोदर रोग मिट जाता है।

हाथ पैर फटना-- करोंदे के बीजों के रोगन को मलने से हाथ पैर फटने में बडा लाभ होता है।

करौंदी

नाम—

संस्कृत—करमर्दिका, अग्लफला, शीरफेना। हिन्दी—करोंदी। मराठी—लघुकरवंदी। लेटिन—Carissa Spinarum (केरिसा स्पिनेरम)।

वर्णन—

इसके वृक्ष बम्बई, गंजाम, हुगली और पञ्जाब के शुष्क जंगलों में बहुत होते हैं। कांगरे में जब इसके वृक्ष बहुत पुराने हो जाते हैं तब उनकी लकड़ी काली पड़ जाती है और उसमें सुगन्ध आने लगती है। तब इसकी लकड़ी को लोग अगर के नाम से बहुत कीमत लेकर बेचते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इनसायक्लोपेड़िया मुंडेरिका के मतानुसार छोटे नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसकी जड़ को दूसरी औषधियों के साथ आमवात की बीमारी में काम में लेते हैं। इसकी जड़ को पीसकर जानवरों के घाव में जिनमें कि कृमि पड़ गये हों भरते हैं। विरेचक औषधियों के साथ भी इसका उपयोग किया जाता है। अधिक मात्रा में इसका अन्तःप्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे बड़ी भयंकर दस्तें शुरू हो जाती हैं, जिससे कभी २ मनुष्य की जान भी खतरे में पड़ जाती है। इसकी जड़ को पीसकर पानी के साथ मिलाकर सर्प के बिल में डालने से सर्प भाग जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जिस मैदान के आस पास इसकी बाड़ लगी होती है उसमें साप प्रायः नहीं आते। शायद इसी विश्वास के कारण सर्पदंश में इसकी जड़ को पीसकर पानी में मिलाकर हृदय के नीचे २ के सब हिस्सों पर मालिश किया जाता है।

करोमाना

नाम—

यूनानी—करोमाना, करवामून।

वर्णन—

यह एक क्षुप जाति का पौधा होता है जो अकलकरे के पौधे से मिलता जुलता है। इसकी शाखे फैली हुई और बहुत पतली होती हैं। इसके बीज स्याह जीरे की ही एक जाति बतलाते हैं। यह वनस्पति हिन्दुस्थान, अरब और आर्मेनियों के पहाड़ों और पानी के रास्तों पर पैदा होती है। (ख०अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि दिल को ताकत देती है। शरीर के अन्दरूनी दोषों को दूर करती है। होठों और चेहरे को सुर्ख करती है। कफ की वजह से पैदा हुए लकवा, फालिज और मिरगी को दूर करती है। छाती के अन्दर जमे हुए कफ को निकाल कर खांसी को दूर करती है। मेदे और आंतों के कीड़ो को नष्ट

करती है। पथरी को तोड़ कर गुर्दे के दर्द को मिटाती है। शराब में पीस कर लगाने से बिच्छू वगैरे जहरी जानवरों के जहर को दूर करती है।

सिरके के साथ इसका लेप करने से खुजली, सिर की गंज, दाद, फोड़े, फुन्सियां और चेहरे के दाग तथा झाईं को मिटाती है।

यह तिल्ली और गरम मिजाज वालों के जिगर के लिये नुकसान दायक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अफ्तीमून, अनीसून और सन्दल का प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रतिनिधि राई और स्याह जीरा हैं। इसकी खुराक ४ माशे तक है। (ख० अ०)

कलख

वर्णन—

यह एक किस्म की बूँटी है जिसके पत्ते, सेव के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका स्वभाव सर्द और खुश्क है। इस बूँटी की खास विशेषता यह है कि शरीर के किसी अंग से रक्तश्राव होता हो उसे यह रोकती है। अगर नकसीर (नाक से गिरने वाला खून) किसी दवा से न रुके तो इसके रस को नाक में टपकाने से रुक जाता है। इसी तरह यह कफ में खून आना, दस्त में खून आना, बवासीर में खून आना इत्यादि सब प्रकार के रक्त श्रावों को रोकती है। इसके बीज बहुत गरम होते हैं। ये पेट की मरोड़ी में मुफीद है। (ख० अ०)

कलगा घास (राजगिरा)

नाम—

संस्कृत—राजम्नि, राजगिरी, राजशालिनी। हिन्दी—कलगाघास, राजगिरा। बंगाली—राजशाल कलई शाक। मराठी—राजगिरा। गुजराती—राजगिरो। फारसी—अगोफा। अरबी—हमाहम। लेटिन—Amaranthus Peniculatus, (एमेरेंथस पेनीक्यूलेटस)

वर्णन—

यह एक पौधा होता है, जिसके पत्ते चौड़े २ कुछ हरे और ललाई लिये हुए होते हैं। डालियां मोटी होती हैं। इसके फूल लाल रंग लिये होते हैं। इसके बीज बारीक और चमकीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत से छोटा राजगिरा कफ कारक, सारक, भारी, निद्रा और आलस्य को उत्पन्न करने वाला, अत्यन्त शीतल, मलावष्टंबकारी, रुचिकर और पित्तनाशक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह औषधि दिमाग में जमी हुई खराबी को साफ करती है। जुक़ाम, मैदा और जिगर की गरमी में मुफीद है। इसके बीज दिल को क़ूवत देते हैं।

यह वनस्पति खून को साफ करती है तथा बवासीर में उपयोगी है। कण्ठमाला के अन्दर भी इस औषधि का अन्दर और बाहिर प्रयोग किया जाता है।

कल्पनाथ

वर्णन—

यह एक लता है जो दूसरे वृक्षों पर फैलती है। इसके फूल सफेद और काले, आदमी की आंख की तरह होते हैं। इसमें बीज भी होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह गर्म और खुश्क होता है। इसके पत्ते ६ माशे ५ काली मिर्च के दानों के साथ पानी में पीसकर पीने से जूड़ी बुखार का आना रुक जाता है। नीमगिलोय, नोसादर, काली मिर्च और कल्पनाथ के पत्ते समान भाग लेकर पानी में पीसकर उर्द (उड़द) के बराबर छोटी २ गोलियां बना लेना चाहिये। इनमें से २ गोलियां जूड़ी बुखार के आने के पहिले देने से लाभ होता है। (ख० अ०)

कल्लानिश

वर्णन—

यह एक छोटा पौधा होता है। इसको खूख अलमरूज भी कहते हैं। इसके पत्ते आड़ू के पत्तों से जरा छोटे और चौड़े होते हैं। इसकी तमाम डालिया जमीन पर बिछी हुई होती हैं। इनमें चेप होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका रस पीने से कफ में खून का जाना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार योनि मार्ग में इसको लगाने से खून का अधिक आना बन्द हो जाता है। (ख० अ०)

कलिया काथ

वर्णन—

यह एक पौधा होता है जो गज भर का लम्बा होता है। इसके कांटे बहुत सख्त होते हैं। यह बंगाल, वर्दवान और मेदिनीपुर में बहुत पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका स्वभाव गरम और खुश्क है। इसकी जड़ की छाल २ माशे और रेवन्द चीनी २ माशे को पानी के साथ पीसकर पिलाने से बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है। इसके सेंक से जलोदर में फायदा पहुँचता है।

कमलनोर (काल ऊमर)

नाम—

हिन्दी—कलमनोर। बाम्बे—करवट, खरोंटी, खोंटेटी। कनारीज—गर्गसयेते, गर्गटी, गर्गट, खर्गस। गुजराती—कलंवर। मलायलम—ओलपरोन, तेरकम। मराठी—खरवट। संस्कृत—खरपत्र। तामील—इरेंवरतन, मेलन्दिनियाति। तेलगू—करकवोरा, करसन। तुलु—अव्देपेजेऊ। उड़िया—कोरोटोसनो। लेटिन—Ficus Asperrima (फायकस एसपेरिमा)

उत्पत्ति स्थान—

मध्यभारत, पश्चिमी प्रायः द्वीप और सिलोन।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक प्रकार की झाड़ी होती है। इसका छिलटा सफेद और फिसलना होता है। पत्तों के गुच्छे शाखाओं के अन्त में अधिक लगते हैं। पत्ते तीखी या वोठो नोक वाले होते हैं। इनकी किनारियां कटी हुई होती हैं। ये ऊपर से खुरदरे होते हैं। इनकी मजरी लम्बी और गोल होती है।

गुण—

इस वनस्पति का रस और छिलटा बाम्बे मे उदर की ग्रंथियों के बढने में जैसे यकृत और तिल्ली के बढने में उपयोगी होता है। कर्नल चोपरा के मतानुसार यह यकृत और तिल्ली में उपयोगी है।

कलंब की जड़

नाम—

संस्कृत—कपोत पदी, फिरग तिक। हिन्दी—कलंब की जड़। मराठी—कलमकावरी। गुजराती—कलूबो। यूनानी—कस्तारी यून। अरबी—साकअल हमाम। लेटिन—Gateorhisa Palmata (जेटिओरिजा पामेटा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता होती है, जो विशेष कर दक्षिणी आफ्रिका में पैदा होती है। आफ्रिका के लोगों को इस दवा की जानकारी बहुत प्राचीन काल से है और वे लोग बहुत पुराने जमाने से इसे पेचिश और अँतड़ियों के रोगों में काम में ले रहे हैं। यूरोप के अन्दर सबसे पहिले सन् १६७१ में पूर्तगाल लोग इसे ले गये और उसके बाद १७७३ में फिर से इस वस्तु की उपयोगिता का ज्ञान उन लोगों को हुआ। सन् १८०५ में यह औषधि भारतवर्ष में मद्रास के अन्दर आई और उसके बाद बम्बई और बंगाल में इसका प्रचार हुआ। इस औषधि की जड़ों के टुकड़े हिन्दुस्थान के बाजारों में आकर औषधि के रूप में बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि कटु पौष्टिक, अग्निवर्द्धक, पित्तसारक और बलदायक होती है। इसका कटु पौष्टिक गुण बहुत महत्व का है। इसको वजह से यह औषधि मुंह में जाते ही लार पैदा करती है। यह लार आमाशय को उत्तेजन देती है और अम्ल रस को अधिक मात्रा में तयार करती है। इस कारण आमाशय की पाचन क्रिया उत्तम हो जाती है और खाये हुए पदार्थों का रस उत्तमता से बनने लगता है। जब आमाशय और पक्वाशय दोनों ही की क्रियाएं व्यवस्थित हो जाती है, तब शरीर में वसा नामक रस की वृद्धि होती है, जिससे रक्ताभिसरण की क्रिया शुद्ध हो जाती है। वसा नामक रस के बढ़ जाने से मज्जा तन्तु और हृदय को भी बल मिलता है। इस प्रकार यह औषधि अपने कटु पौष्टिक धर्म से सारे शरीर की क्रिया को व्यवस्थित कर देती है।

जब शरीर में कमजोरी हो, भूख कम लगती हो, अन्न हजम नहीं होता हो, जी मिचलाता हो, गर्भावस्था में उल्टियां होती हों, उस समय इस औषधि के प्रयोग से बड़ा लाभ होता है।

अतिसार और संग्रहणी के पश्चात्, पाचननली और पाचन क्रिया में जो शिथिलता आ जाती है, उस समय यह औषधि अच्छा काम करती है। हाजमे की खराबी से जिसका सारा शरीर शीथिल हो गया हो और जिसको जीर्ण रक्तातिसार हो उसको इस औषधि के देने से अच्छा लाभ होता है। जिसकी पाचन नली में सूजन आ गया हो उसको यह औषधि नहीं देना चाहिये।

दांत निकलते समय बच्चों को जो कष्ट होता हैं उसमें भी यह दवा लाभ दायक है।

मेडागास्कर और इण्डोचाइना में इसकी जड़ कटुपौष्टिक और अग्निवर्द्धक वस्तु के रूप में काम में ली जाती है। पेचिश और अन्य बीमारियों में वहां के निवासी इसे काम में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण के द्वारा इस औषधि में चार-पाच तरह के द्रव्य पाये जाते हैं।

(१) कोलम्बेमिन (Columbamin) यह कलंब की जड़ का जौहर होता है, जो सफेद रंग का रवेदार होता है।

यद्यपि यह बहुत कम मात्रा में मिलता है पर बड़ा जोरदार होता है। इससे उल्टी और जुलाब होता है। थोड़ी मात्रा में देने से यह पित्त स्रावक तथा आमाशय और अँतड़ियो की ग्रंथि के रस को अच्छी तरह से प्रवाहित करने में लाभ दायक है।

(२) जेटिओरिझिन (gateorhizin) यह इसके अन्दर पाये जाने वाला पीला तत्व होता है।

(३) पामेटिन (Palmatin)

(४) इसमें पाया जाने वाला लुआब।

कर्नल चौपडा के मतानुसार यह एक कटु, पौष्टिक, कृमि नाशक और ज्वर निवारक पदार्थ है।

कलमी शाक

नाम—

संस्कृत—कलम्बी, शतपर्वा, कलम्बू, कलंबिका, इत्यादि। हिन्दी—कलमीशाक। बंगाली—कलमी शाक। तेलंगी—तोमेवच्चूलीचेट्टू। मराठी—कड़वी शाक, नदी शाक, नाल। गुजराती—नालानीभाजी। लेटिन—Ipomoea Aquatica (आइयोमिया एकेटिका)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति होती है। हिन्दुस्थान में सब दूर पैदा होती है। परंतु बंगाल के जलाशयों के तीर पर यह बहुत होती है। मद्रास और सिलोन में तरकारी के लिये इसकी खेती की जाती है। इसके पत्ते लम्बे-नोकदार और मुलायम रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। डालियां खोखली और जड़ मीठी होती है। इसकी फलियां लम्बी और गोल होती हैं। यह दो प्रकार की होती है। एक जल में पैदा होने वाली और दूसरी खेतों में पैदा होने वाली। वनस्पती शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी के मतानुसार इसकी वेलें रतालू की वेल के समान होती है। जो वरसात में पानी के किनारे या पानी के अन्दर उगती है। इसके फूल गुलाबी या जामुनिया रंग के और फल गोलाई लिये हुए होते हैं जिनमें ४ बीज रहते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि स्तनों में दूध उत्पन्न करने वाली, मधुर और शुक्र जनक है। इसकी जल में पैदा होने वाली जाति कृमिनाशक और कुष्ट रोग में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी बोई हुई जाति की बनिस्बत अपने आप पैदा हुई जाति में विष को नष्ट करने का गुण ज्यादा मात्रा में रहता है। संखिया और अफीम का जहर उतारने के लिये इसका खालिस रस पिलाकर कै कराई जाती है। यह औषधि कृमि नाशक और पेट के आफरे को दूर करती है। ज्वर, पीलिया, खांसी, और यकृत सम्बंधी शिकायतों में भी लाभदायक है।

आसाम में इस वनस्पति को सुखाकर उन स्त्रियों को देने के काम में लेते हैं जो अशक्त और स्नायुजाल सम्बन्धी कमजोरी की शिकार रहती हैं।

वरमा में इसका रस अफीम व संखिये के विष को नष्ट करने वाली व वमन कारक औषधि के बतौर काम में लिया जाता है।

कम्बोडिया में इसकी कलियां ज्वर निवारक समझी जाती हैं। ज्वर जनित सन्निपात और ज्वर जनित मूर्च्छा में इसकी डण्डी और पत्ते उपयोगी माने जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक, वमन कारक और संखिये के विष को नष्ट करने वाली है।

वेट के मतानुसार इसकी कोमल कलियों और कोमल पत्तों की शाक बनाई जाती है। यह

शाक गरमी तथा खून के दस्त को बन्द करती है, वायु बढ़ाती है और पौष्टिक है। संखिये और अफीम का जहर नष्ट करने के लिये इसके पत्ते का रस दिया जाता है, जो कि रेचक और वामक है।

कलिहारी

नाम —

संस्कृत—अग्निमुखी, गर्भघातिनी, इन्द्र पुष्पिका, हरिप्रिया, कलिहारी। हिन्दी—कलिहारी, कलियारी, लंगालि, लागुली। अजमेर—राजाराड़। बंगाली—विष लांगला, ईश लागला। मराठी—खड़यानाग, नाग करिया, कललावी। गुजराती—दूधियो बछनाग। तेलगू—अद्विनाभि, पैन्नवेदुरू। तामील—अकिनीचोलम। उर्दू—कनोज़, कुलहर। लेटिन—Glorieosa Superba, (ग्लोरिओसा सुपरबा)।

वर्णन—

कलिहारी दो प्रकार की होती है, एक का कंद गोल होता है इसको स्त्री वृक्ष कहते हैं। दूसरे का कन्द लम्बा और जुड़ा हुआ होता है इसको पुरुष वृक्ष कहते हैं। इसके पत्ते कचूर के पत्तों की तरह होते हैं, इसके फूल लाल, पीले और अग्निशिखा की तरह होते हैं। इसके हरे फूल में छः पखुड़िया होती हैं, इसकी छाल पतली ढीली हलकी और बादामी रंग की होती है। इसके पत्ते फैले हुये, तीखी नोक वाले और बरछी के आकार के होते हैं। इनकी नसें समानान्तर होती हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसकी गठाने कड़वी, कसेली और चरपरी होती हैं यह कृमि नाशक, विरेचक, विष निवारक और गर्भघातक होती हैं। निघंटु रत्नाकर के मतानुसार कलिहारी सारक, कड़वी, चरपरी, क्षार युक्त, पित्त जनक, तीक्ष्ण, गरम, कसेली, हलकी, तथा कफ, वात, कृमि, वस्तिशूल, विष, कोढ, बवासीर, व्रण, सूजन, शोष, शूल, शुष्क गर्भ और गर्भ को नष्ट करने वाली है।

रामायण में कथा है कि जब लक्ष्मण के हृदय में मेघनाद के द्वारा मारी हुई ब्रह्मशक्ति चुभी हुई थी उस समय सुषेण नामक वैद्य ने विशल्या नामक औषधि का लेप करके आसानी से उस शक्ति को खींच ली थी। सधिनी नामक औषधि का लेप करके उस जखम को भरा था और संजीवनी नामी औषधि से उनके प्राणों में चेतना का संचार किया था। यह विशल्या नामक औषधि क्या वस्तु है। इसकी खोज करते हुए दो औषधियों की ओर दृष्टि जाती है, एक औषधि आयापान जिसका वर्णन इस ग्रंथ में पहले भाग में किया जा चुका है और दूसरी औषधि कलिहारी हो सकती है। कुछ निघण्टों में इसका नाम विशल्या अर्थात् शल्य दूर करने वाली भी देखा जाता है।

राज मार्तण्ड नामक ग्रंथ में लिखा है कि कलिहारी के कन्द को पानी में पीस कर चुपड़ने से बहुत देर का घुसा हुआ अस्त्र भी घाव में से आसानी से बाहर निकाला जा सकता है। जंगलनी जड़ी बूँटी नामक ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि इस विषय का अनुभव लेने के लिये एक ऐसे मनुष्य के

जखम पर जिसके पैर में खीला घुस गया था कलिहारी का कंद पीसकर चुपड़ा गया और तुरन्त उस खीले को खींच लिया गया। हमें यह देख कर ताज्जुब हुआ कि जो खीला क्लोरोफार्म देकर विना बेहोश किए नहीं निकाला जा सकता था वह इस औषधि के प्रताप से आसानी से खींच लिया गया। उसके पश्चात् संधिनी नामक औषधि का पट्टा चढाने से घाव तीन ही रोज में भर गया।

इस औषधि के विशल्या होने का एक प्रमाण यह भी है कि रामायण के अन्दर इसके सम्बन्ध में लिखा है कि यह औषधि अग्नि की तरह चमकती थी। कलिहारी के फूलों को भी जब हम देखते हैं तो वे अग्नि की तरह ही चमकते हुए दृष्टि गोचर होते हैं। इसलिये ग्रन्थकारों ने इसका नाम अग्निशिखा भी रखा है। इन्हीं सब बातों की वजह से यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भव है कलिहारी ही रामायण में वर्णित विशल्या नामक औषधि हो।

इस औषधि के दूसरे नामों के साथ २ निघण्टों में इसका नाम गर्भघातिनी भी लिखा गया है पर किस स्थिति के गर्भ पर इसका उपयोग किस प्रकार किया जाता है इसका उल्लेख साफ तौर पर कहीं नहीं पाया जाता। रस रत्न समुच्चय नामक ग्रंथ के कर्ता लिखते हैं कि शतावरी, कलिहारी, दन्तिमूल, बच्छनाग और पाषाण भेद इन सब औषधियों को समान भाग लेकर पानी में खरल कर पेडू और पेट के ऊपर लेप करने से मूढ गर्भ अर्थात् आड़ा गर्भ शीघ्र प्रसव हो जाता है।

कविराज श्यामचरणदास लिखते हैं कि इस कंद को पानी में घिसकर हाथों और पैरों के तलवे पर लेप करने से और इसकी गाठ को कमर में बांधने से आसानी से प्रसव हो जाता है लेकिन प्रसव होते ही उस गांठ को तुरन्त छोड़ देना चाहिये।

राज मार्तण्ड नामक ग्रंथ के अन्दर लिखा हुआ है कि कलिहारी के कंद को पानी में पीसकर दाहिनी दाढ में दर्द हो तो बाएं हाथ के अंगूठे के नख पर और बाईं दाढ में दर्द हो तो दाहिने हाथ के अंगूठे के नखपर लगाने से दाढ का कीड़ा मरकर खिर जाता है और दर्द हमेशा के लिये आराम हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह अत्यन्त नशा पैदा करनेवाली और जहरीली है इसकी जड आंतों की शिकायतों में मुफीद है। इसके फूल ज्वर और प्यास में लाभदायक हैं। इसकी गठाने संकोचक और कफ निःसारक हैं। यह बवासीर और प्यास में उपयोगी हैं इसकी गठानों का लेप शीघ्र प्रसूता स्त्री का दर्द बढाने के लिये नाभि और योनि पर किया जाता है।

अगर प्रसूता स्त्री की आवल न गिरती हो तो इसकी जड़ को पीसकर हथेली और तलवों पर लेप करना चाहिये या इसकी बत्ती बनाकर योनि मार्ग में रखना चाहिये।

इस औषधि की जड़ को पीसकर नाभि और योनि पर मलने से गर्भ गिर जाता है इसलिये गर्भवती स्त्रियों को इसके उपयोग से कतई बचना चाहिये।

कण्ठमाला रोग, कर्णरोग और चर्म रोगपर भी यह औषधि बहुत मुफीद है, सर्प विष, बिच्छू के विष पर भी यह औषधि लाभदायक है।

बम्बई के अन्दर यह वस्तु कृमिनाशक मानी जाती है। यह कृमियों से पीड़ित जानवरों को भी देने के काम में ली जाती है, मद्रास के अन्दर यह सर्प और बिच्छू के विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है। गायना में इसकी गठानों को स्नायुशूल दूर करने के लिये पुलटिस के बतौर काम में लेते हैं।

कलिहारी शुद्ध करने के विधि—कलिहारी एक प्रकार का उपविष है। इसलिये इसको बिना शुद्ध किये हुये उपयोग में नहीं लेना चाहिये। इसको शुद्ध करने की तरकीब इस प्रकार है। जब इसके फूल आजावें तब नर पौधे की जड़ को जमीन में से निकालकर उसके पतले २ वर्क बनाकर नमक छिड़के हुए मट्ठे में गलादे, रात भर उसमें उनको गलने दें और दिन में उनको सुखादे इस प्रकार पाच-सात दिन तक भिगो २ कर सुखाना चाहिये। फिर इनको अच्छी तरह से सुखा कर रख लेना चाहिये। अगर किसी को काला सांप काटे तो दो से चार रत्ती तक की मात्रा में इसे देने से बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक, पित्तनाशक, कृमिघ्न, कुष्ट और बवासीर में उपयोगी है। सर्पदंश, वृश्चिकदंश और सुजाक में भी यह लाभ दायक है। इसमें Super bine (सुपर वाइन) और Gloriosine (ग्लोरिओसिन) नामक उपक्षार पाते जाते हैं। पुराने संस्कृत लेखकों ने इसके गर्भ घातक गुणों का बहुत उल्लेख किया है। इसमें धातु परिवर्तक और पौष्टिक गुण भी रहता है। इसको पानी के साथ पीस कर एक लेप तयार किया जाता है। यह लेप जहरीले जानवरों के काटने पर बाह्य उपचार की तरह काम में लिया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसकी गठानें और पत्ते साप और बिच्छू के विष में बिलकुल निरुपयोगी हैं।

उपयोग—

सुजाक—इसके कन्द को कूट कर पानी में भिगो कर मल छान कर देने से सुजाक की बीमारी में लाभ होता है।

कण्ठमाला—इसके कन्द और निर्गुण्डी के रस से सिद्ध किए हुए तेल को सुंघाने से कण्ठमाला में लाभ होता है।

कृमि रोग—इसको गुड़ के साथ खिलाने से आंतों के कीड़े मर जाते हैं और इसका चूर्ण भुर-भुराने से घाव के कीड़े मर जाते हैं।

पुरुषार्थ वृद्धि—इसकी ढाई से छः रत्ती तक की मात्रा दिन में तीन बार देने से पुरुषार्थ और पराक्रम बढता है।

कामला—इसके पत्ते के चूर्ण को मट्ठे के साथ देने से कामला रोग में लाभ होता है।

योनिशूल—इसकी जड़ को योनि में रखने से योनि शूल मिटता है।

कर्णरोग—इसको नीबू के रस के साथ कान में टपकाने से पीप साफ हो जाता है और कीड़े मर जाते हैं।

बिच्छू और कन खजूरे का जहर— इसकी जड़ को ठण्डे पानी में पीस कर कन खजूरे या बिच्छू के काटे हुए मुकाम पर मल करके सेक करने से लाभ होता है।

इसकी मात्रा शुरू २ में आधी रत्ती से प्रारंभ करके आधे माशे तक बढाई जा सकती है।

कलुरुकी

नाम—

मद्रास—कलुरुकी। तेगेलाक—तुइया। लेटिन—Pouzolzia Inbica (पोभोल भिया इण्डिका)

उत्पत्ति स्थान—

भारत वर्ष, सीलोन, मलाया द्वीप और चायना।

वानस्पतिक विवरण—

इस वनस्पति की जड़ हमेशा कायम रहने वाली होती है। यह आकार में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसका प्रकाण्ड सीधा और इधर-उधर फैला हुआ भी होता है। इसके पत्ते बरछी आकार-व तीखी नोक वाले होते हैं। यह रुएँदार रहता है। इसके फूल छोटे होते हैं। नर पुष्प में सपल ४ रहते हैं। इसकी मञ्जरी लम्बी, मोटी, तीखी नोक वाली और चमकीली होती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह उपदश, सुजाक और सर्पदंश में उपयोगी है।

कलौंज़ी

नाम—

संस्कृत—स्थूलजीरकः, जीर्णा, काली, बहुगन्धा, इत्यादि। हिन्दी—कलौंजी, मगरेला। मराठी—कलौंजी, जीरें। गुजराती—कलौंजीजीरूं। बंगाली—कालीजीर, मोटी कालीजीर। फारसी—स्याहदाना। अरबी—हब्बतुस्सोदा। लेटिन—Nigella Sativa.

वर्णन—

यह एक छोटे प्रकार की वनस्पति है। इसकी शकल सौंफ के पेड़ की शकल से मिलती जुलती होती है। इसकी शाखाएं १ फुट से कुछ बड़ी होती हैं। इसके फूल हलके नीले रंग के होते हैं। इसके बीज तिकोने होते हैं। इसके बीजों का रंग स्याह, खुशबू तेज और गूदा सफेद होता है। इसकी ताकत ७ साल तक कायम रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत— आयुर्वैदिक मत से यह कड़वी, चरपरी, गरम, क्षुधावर्धक, कामोद्दीपक, ऋतुश्राव नियामक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, कृमिनाशक, तथा वात, गुल्म, रक्त पित्त, कफ, पित्त,

आंवदोष और शूल को नष्ट करती है। सुश्रुत के मतानुसार इसके बीज दूसरी औषधियों के साथ सांप और बिच्छू के विष में दिये जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में खुश्क है। यह मूत्रल, ऋतुश्राव नियामक और गर्भश्रावक है। फेफड़ों की शिकायत में भी यह मुफीद है। कफ और पीलिया में इसका अन्तः और बहिः प्रयोग करने से लाभ पहुँचाता है।

गिलानी के मत से यह हाजमा वर्धक, और उन खट्टी डकारों को बन्द करने वाली है जो बलगम और बादी से पैदा होती हैं। इसको ज्यादे अरसे तक खाने से औरत का दूध बढ़ जाता है। कलौंजी को सिरके में भिगोकर, सुखाकर, पीसकर सात माशे की मात्रा में देने से पागल कुत्ते के जहर में लाभ होता है।

गाजरूनी के मत से यह औषधि जुकाम के लिये खास तौर से मुफीद है। इसका चूर्ण जैतून के तेल में मिलाकर नाक में ४। ५ बूंद टपकाने से छींक आकर जुकाम मिट जाता है।

रासायनिक संगठन—

इस औषधि में फिक्स्ड आइल (Fixed oil) स्थिर तैल अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसमें उड़नशील तेल भी कुछ मात्रा में रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें शुगर, एल्बूमेन (Albumen) सेल्यूलोस (Celluloce Suger) इत्यादि पदार्थ भी पाये जाते हैं। इसमें पाया जाने वाला उड़न-शील तेल पीले रंग का होता है। यह औषधि पेट के आफरे को दूर करने वाली और अग्निवर्धक है। मन्दाग्नि, अपचन, बद्धकोष्ट, रक्तातिसार, ज्वर, सूतिका ज्वर, इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है। यह ग्रंथि रस को उत्तेजना देती है। इसी कारण यह प्रसूति के पश्चात् दूध बढाने के लिये दी जाती है। इसके बीज सविराम ज्वर और विषम ज्वर में लाभदायक हैं। (सन्याल व घोष)

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस औषधि में इसेशिअल ऑइल, ग्लुकोसाइड, मेलाथिल, पक्क्सि तथा और दूसरे कड़ु तत्व पाये जाते हैं। यह औषधि पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्रल और ऋतुश्राव नियामक है। बिच्छू के डंक में भी यह उपयोगी है। खुजली और अन्य चर्म रोगों में इसका लेप लाभदायक होता है।

कोमान के मतानुसार साधारण सूतिका ज्वर मे यह औषधि लाभदायक है।

केस और महस्कर के मतानुसार सर्पदंश और बिच्छू के डङ्क पर यह औषधि निरुपयोगी है।

उपयोग—

नारू—कलोंजी को पीसकर छाछ में मिलाकर जोश देकर नारू पर मलकर लगाने से ३ दिन में तमाम नारू निकल जाता है। अगर नारू टूट गया हो तो कलोंजी के पत्ते, बीज, और डालिया पीसकर बांध देने से आराम होता है।

पथरी—कलोंजी को पानी में पीसकर शहद मिलाकर पीने से मसाने और गुर्दे की पथरी निकल जाती है।

बवासीर—कलोंजी को जलाकर उसकी राख पानी में पीने से और सूखी राख को मस्सों पर मलने से बवासीर में लाभ होता है।

प्रसूति कष्ट—इसको उबाल कर पीने से जच्चा के गर्भ की खराबी और तकलीफ दूर होती है। अगर पेट में मरा हुआ बच्चा हो तो यह उसको निकाल देती है।

पागल कुत्ते का जहर—४ माशे से लेकर १० माशे तक कलौंजी पानी के साथ पीसकर पिलाने से पागल कुत्ते के जहर में लाभ होता है।

पीलिया या कामला—७ दाने कलौंजी के औरत के दूध में पीसकर नाक में टपकाने से पीलिया या कामले में लाभ होता है।

सिर की गंज—कलोंजी को जलाकर तेल में मिलाकर सिर की गंज पर मालिश करने से कुछ समय में नये बाल पैदा होने लगते हैं।

जुकाम—इसके बीजों को गरम करके मलमल के कपड़े में बांधकर सूंघने से जुकाम मिटता है।

चर्मरोग—कलौंजी ५ तोले, बावची के बीज ५ तोले, गूगल ५ तोले, दारू हलदी की जड़ ५ तोले, गन्धक २॥ तोले, नारियल का तेल २ बोतल, इन सब चीजों को कूट पीसकर बोतल में डालकर काग लगाकर ७ दिन तक धूप में रक्खी रहने दें और दिन में २।३ बार खूब हिला दिया करें। इस तेल का मालिश करने से कुष्ट आदि चर्मरोग मिटते हैं।

हिचकी—इसके ३ माशे चूर्ण को ३ माशे मक्खन में मिलाकर उसको चटाने से हिचकी बन्द हो जाती है।

कलोंजी का तेल—कलौंजी में दो प्रकार का तेल निकलता है। एक पीले रंग का जो उड़नशील होता है और दूसरा सफेद रंग का जो अरंडी के तेल सा होता है। खजायनुल अदविया के मतानुसार इसको जैतून के तेल के साथ मिलाकर पीने से ऐसे नामर्द जो सब प्रकार के इलाज करके निराश हो चुके हों और अपनी जिंदगी को बेकार समझे बैठे हो वे भी फिर से मरदानगी या पुरुषार्थ पाते हैं। इस तेल को कमर और लिंगेंद्रिय पर लगाने से बेहद काम शक्ति पैदा होती है। इसकी मालिश से पट्ठों की सुस्ती और सरदी का दर्द जाता रहता है।

गिलानी कहता है कि इसके तेल की कूवत मूली के तेल के बराबर है। इसके मलने और पीने से फालिज अर्थात् लकवा, सुन्नबाय और मिरगी की बीमारी में फायदा पहुँचता है। यह खून के दौरों को ठीक करता है। कान में इसको टपकाने से बहरापन और कान की सूजन अच्छी होती है; नाक में टपकाने से मिरगी दूर होती है; सर पर मलने से दिमाग के सुद्दे खुल जाते हैं और दिमाग की कमजोरी मिट जाती है।

कविराज

नाम—

फारसी—कविराज, कविकज। अरबी—कफेसबा। तिहुंत-पोलिसा। लेटिन-Ranunculus Sceleratus (रेन्यूनक्यूलस स्केलेटंस)

वर्णन—

यह वनस्पति सिंध, वजीरी स्थान, उत्तरी भारत, माउन्ट आबू, हिमालय, बंगाल की गर्म तलहटियां, श्याम और उत्तरी सम शीतोष्ण कटिबन्ध में पैदा होती हैं। इस वनस्पति की शाखाएँ और पिण्ड पोले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

मूरे के मतानुसार इसका ताजा पौधा विषैला है। अगर यह पीने के काम में लिया जाय तो भयङ्कर परिणाम दिखाता है।

इसके पत्ते कुचल कर यूरोप में छाले या फफोले उठाने के काम में लिये जाते हैं। इसका शराब के साथ तैयार किया हुआ टिन्कचर स्नायु-मण्डल की पीड़ा और बिना ज्वर की फुफ्फुसावरण प्रदाह की बीमारी में काम में लिया जाता हैं।

इण्डोचाइना में इसके बीज मूत्राशय की तकलीफ, मुंह में बदबू आने की बीमारी और मन्दाग्नि को दूर करने के लिये काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ऋतुस्राव नियामक, दुग्ध वर्धक और चर्म रोगों में उपयोगी है। इसमें एक प्रकार का इसेशियल ऑयल, राल और एनेमानिन (Anemonin) नामक निद्रा लाने वाला पदार्थ पाया जाता है।

कबीट

नाम—

संस्कृत—कपित्थ, दधिस्थ, कुचफल, गन्धफल, ग्राहीफल, चिरपाकी। हिन्दी—बिलिन, कैथ, कटवेल, कबीट। मराठी—कंवठ, कवीट। गुजराती—कबीट, कोथा। तेलगू—एलागाकाय। फारसी-कबीट। उर्दू—कैथ। लेटिन—Feronia Elephantum (फेरोनिया एलीफेटम)

वर्णन—

कबीट का वृक्ष सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। यह वृक्ष बड़ा और बहु वर्ष जीवी होता है। इसके पत्ते छोटे और चिकने होते हैं। इसके पिंड की गुलाई दो से चार फुट तक होती है। इसके फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। इसके कांटे सीधे और बड़े मजबूत होते हैं। इसका फल गोल बीले की तरह होता है। उसकी मध्य रेखा करीब ढाई इञ्च की होती है। फल का छिलका कठोर, खरदरा और भूरे रंग

का होता है। पकने पर इसमें तीक्ष्ण गन्ध आने लगती है। इसके फल की गिरी बहुत खट्टी होती है। उसमें स्थान २ पर बीज जमे हुए रहते हैं। इसमें एक प्रकार का गन्ध रहित सफेद पारदर्शक गोंद लगता है। वह बहुत चेपदार होता है कैथ के अन्दर एक आश्चर्य-जनक गुण यह है कि अगर कोई हाथी इसके फल को सारा का सारा खा जाय तो उसके भीतर का सारा भाग उसके पेट में चला जाता है और फल ज्यों का त्यों अखण्ड रूप में मल के द्वारा बाहर निकल जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल तुरा, मीठा, कसैला, ग्राही, वीर्यवर्द्धक और पित्त तथा वात को नाश करने वाला होता है। इसका कच्चा फल ग्राही, गरम, रूखा, हलका, खट्टा, रुचिजनक तथा विष और कफ को नाश करने वाला है। इसका पका फल रुचि कारक, खट्टा, कसैला, ग्राही, मधुर, कण्ठ शोधक, शीतल, वीर्य वर्द्धक और दुष्पच्य है। यह श्वास, क्षय, रक्तदोष, वमन, वायु त्रिदोष, हिचकी, खासी और विष को दूर करता है। इसके बीज हृदय रोग, मस्तकशूल और विष विसर्प को दूर करते हैं। इसके बीजों का तेल कसैला, ग्राही, स्वादिष्ट, पित्तनाशक तथा कफ, हिचकी, वमन और चूहे के विष को दूर करने वाला होता है। इसके पत्ते वमन, अतिसार और हिचकी को दूर करते हैं।

इसका रस कानो में टपकाने से कानों की पीड़ा कम होती है। इसका कच्चा फल वाया नाशक और आतों को सिकोड़ने वाला होता है। यह शरीर को खुजली को दूर करता है। इसके फूल विष प्रतिरोधक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पका हुआ फल दूसरे दर्जे में ठण्डा और खुश्क है तथा इसका कच्चा फल तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसका गुदा दिलको खुश करने वाला होता है। इसका कच्चा फल काबिज है। यह वरम दिमाग (Ceribritis) को दूर करता है। इसका पका फल हिचकी, प्यास, पित्तजनित धातु-पतन और जहर के असर को दूर करता है। यह गरम मिजाज वालों के दिल, मेदे और जिगर को कुव्वत देता है।

कर्नाटक के अंदर ऐसे कीड़े बहुत होते हैं जिनके काटने से शरीर सूजकर फटने लगता है। वहाँ के लोग इन कीड़ों का विष नष्ट करने के लिये कबीट को खिलाते और डङ्क पर लगाते हैं।

इसके पत्तो को पानी में जोश देकर कुल्ला करने से गले के भीतर के रोग दूर होते हैं। मसूड़ो के लिये भी इसका रस लाभ दायक है। इसके पत्ते सुगन्धित और पेट के आफरे को उतारने वाले होते हैं। यह मन्दाग्नि और बच्चे के पेट की आतों की तकलीफ मे भी उपयोगी होता है। इसका छिलटा पित्त में उपयोगी है। जहरीले कीड़ो के काटने पर इसके गूदा का लेप करने पर बड़ा लाभ होता है।

इसके कच्चे फल का गूदा निकाल कर उसको सुखाकर पीस कर देने से दस्त और आंव में फायदा होता है। इसके बीजों के तेल को लगाने से खुजली, दाद इत्यादि चर्म रोगो मे लाभ होता है।

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार इसका फल संकोचक होता है। इसके पत्ते सुगन्धित और पेट के अफरे को उतारने वाले होते हैं। इसका गूदा जहरीले कीड़ों और सांप के इलाज में काम में लिया जाता है।

चरक सुश्रुत इत्यादि प्राचीन आचार्यों के मत से इस वृक्ष के सभी हिस्से सांप और बिच्छू के जहर में उपयोगी होते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इसका कोई भी हिस्सा सांप और बिच्छू के जहर में उपयोगी नहीं है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इस फल के गूदे में साइट्रीकएसिड और लुआब पाया जाता है तथा इसके पत्तों में इसेन्शियल आइल की कुछ मात्रा रहती है। इसका पका हुआ फल क्षुधावर्धक तथा मसूड़े और गले की पीड़ा में बहुत उपयोगी है, इसका कच्चा फल रक्तातिसार और आमातिसार में संकोचक औषधि के तौर पर काम में लिया जाता है। इसके पत्ते बहुत संकोचक होते हैं।

के० एल० दे के मतानुसार इसका पका फल शीतादिरोग प्रतिरोधक और कच्चा फल अतिसार तथा पेचिश में उपयोगी होता है। इसके पत्ते सुगन्धित, पेट के अफरे को दूर करनेवाले और संकोचक होते हैं।

उपयोग—

श्वेत प्रदर—बंगसेन के मतानुसार उग्र श्वेत प्रदर की बीमारी में इसके पत्ते बांस के पत्तों के साथ में पीसकर शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

दमा—वागभट के मतानुसार इसके कच्चे फल का रस साढ़े सात माशे से सवा तोले तक की मात्रा में देने से दमे की बीमारी में लाभ होता है।

हिचकी—चरक के मतानुसार इसके कच्चे फल का रस साढ़े सात माशे से सवा तोले तक की मात्रा में पीपर और शहद के साथ देने से हिचकी में लाभ होता है।

वमन—सुश्रुत के मतानुसार बन्द न होनेवाली वमन में इसके कच्चे फल का रस पीपर और शहद के साथ अवलेह के रूप में देने से लाभ होता है।

चर्मरोग—इसके बीजों का तेल लगाने से या कैंथ के गूदे को तेल में औटाकर उस गूदे को लगाने से दाद, खुजली इत्यादि चर्म रोग दूर होते हैं।

शितादि रोग—इसके गूदे के टुकड़ों को मुह में रखने से शीतादि रोग में लाभ होता है।

बच्चों का उदर शूल—नैलगिरि और कैंथ के गूदे का शरबत बनाकर पिलाने से बच्चों का उदरशूल मिटता है।

कसपैरिया की छाल

वर्णन—

यह एक वृक्ष की छाल होती है जो विशेषकर दक्षिणी अमेरिका में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि पौष्टिक, उत्तेजक और पाचन शक्ति को बढाने वाली है। यह पुराने दस्त और पेचिश की बीमारी में मुफीद है। (ख० अ०)

कसमुका

नाम—

यूनानी—कसमुका।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की बूटी होती है, जो जमीन पर फैलती है। इसके पत्ते मरवे के पत्ते की तरह होते हैं। इन पत्तों में चेप होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका स्वभाव गरम और खुश्क है। इसको खिलाने से विच्छू का जहर फौरन उतर जाता है। (ख० अ०)

कस्सा

नाम—

संस्कृत—त्रिपुट, सण्डक, लांक। हिन्दी—खेसारि, कसूर, कस्सा। बंगाली—कसूर, खेसरी। गुजराती—लेगलें गुइ। मराठी—लाक, लांग। फारसी—मसंग। अरबी—इब्बुलबकर। लेटिन—Lathyrus Sativus. (लेथीरस सेटिव्हस)

वर्णन—

यह एक प्रकार का अनाज होता है जो चने के साथ वसन्त ऋतु में पैदा होता है और मटर की तरह होता है। इसकी छोटी २ बेलें चलती हैं। इसके पत्तों की कोंपले भी निमक मिर्चों के साथ गांव वाले खाते हैं। इसके फलिया लगती हैं जिसमें एक २ में चार २ पांच २ दाने निकलते हैं। इन दानों को लोग कच्चे भी खाते हैं और होले की तरह जलाकर भी खाते हैं। इसकी दाल भी बनती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कस्सा मधुर, कड़वा, कसेला, अत्यन्त रूखा, कफ पित्त नाशक, रुचिकारक, हड्डी की नसों को बलवान करने वाला, तथा वात को कुपित करने वाला है। इसके पत्ते पित्त और कफ को दूर करने वाले होते हैं। ये कब्जियत पैदा करते हैं। इसके बीज मीठे, कड़वे और बहुत खुश्क होते हैं। ये हृदय पीड़ा, शूल, भ्रम, सूजन और बवासीर को पैदा करते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह आम तौर से वादी पैदा करने वाला है। यह स्मृति को मन्द करने वाला, वात वर्द्धक और खराब खून पैदा करने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीजो का तेल एक तेज विरेचन है। मगर इसका प्रयोग करना खतरनाक है।

क़स्तरून

नाम—

यूनानी—कस्तरून।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है, जो हर साल पैदा होती है। इसकी शाखें पतली और लम्बी होती हैं। पत्ते भी पतले और लम्बे होते हैं। ये डण्डी के पास चौड़े और नोक पर पतले होते हैं। ये कटी हुई किनारों के और खुशबूदार होते हैं। इसकी जड़ पतली और फूल पीले होते हैं। औषधि के प्रयोग में इसके पत्ते और जड़ आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह वनस्पति दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह मेदे को शुद्ध करके खट्टी डकारों को मिटाती है। इसके पत्तों को पानी में पीस कर पीने से मिरगी में लाभ होता है। ३॥ माशे की मात्रा में शहद और सिरके के साथ खाने से यकृत और तिल्ली के रोगों में लाभ पहुँचाताहै और इसी मात्रा में शराब के साथ लेने से कामला रोग में लाभ होता है। इसका रस कान टपकाने से कान का दर्द मिटता है। (खजानुल अदविया)

कस्तुला

नाम—

हिन्दी—कस्तुला, काला किरियात। मराठी—फकारा। पश्चिमी भारत—काला किरियात, कालायाकरा। लेटिन—Haphlanthus Tentaculatus (हेपलेंथस टेंटेक्यूलेट्स) H. Veutricillaris. (हेपलेंथस व्हेंट्रीसिलेरिस)

वर्णन—

यह एक प्रकार की नाजुक वनेस्पति होती है। इसके पत्ते अण्डाकार और तीखी नोक वाले होते हैं। पत्तों के पीछे ८ से १० तक बारीक नसों की जोड़ें रहती हैं। इसकी फलिया लम्बी, मोटी, नोक दार और मुलायम होती है। इस वनस्पति की दो जातिया होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चौपरा के मतानुसार ये दोनों जातिया ज्वर में उपयोगी है।

कस्तूरी

नाम—

संस्कृत--मृगनाभ, कस्तूरी। हिन्दी—कस्तूरी। बंगाली—मृगनाभि। मराठी--कस्तूरी। गुजराती—कस्तूरी। अंग्रेजी—Musk। फारसी—मुश्क। अरबी—मिस्क। लेटिन—Moschus Moschiferus (मासकस मासकी फेरस)

विवरण—

असली कस्तूरी एक विशेष जाति के हिरण के निश्राव वाही कोष का सूखा हुआ रस है। यह जानवर चीन, आसाम, रशिया, नेपाल, दार्जिलिंग तथा हिमालय के दूसरे हिस्सों में आठ हजार फीट की ऊंचाई तक जंगलों में पाया जाता है। इसकी सुगन्ध मादाओं को उनकी तरफ खींचने वाली होती है। कस्तूरी करीब एक महीने तक उनकी ग्रन्थियों में रहती है। कस्तूरी प्राप्त करने के लिए जानवर को इसी अवधि में पकड़ा जाना चाहिए। क्योंकि यह दूसरे मौसम में प्राप्त नहीं हो सकती। कस्तूरी की तादाद जानवरों की उम्र के अनुसार भिन्न २ रहती है। छोटे बच्चों की ग्रन्थियों में यह बिलकुल नहीं पाई जाती। दो वर्ष के बच्चों की ग्रन्थियों में करीब तीन तोला कस्तूरी रहती है। किन्तु यह अपरिपक्व हालत में होती है और इसकी गन्ध भी अप्रिय रहती है। पूरी उम्र के जानवर में प्रायः दो औंस की तादाद में कस्तूरी प्राप्त होती है। किन्तु साधारण तौर से एक तोले से लेकर डेढ़ तोले तक कस्तूरी प्रत्येक हिरन में पाई जाती है। यह एक चौकोर या गोले थैली में जिसका कि व्यास करीब डेढ़ इंच के होता है बन्द रहती है। इसके ऊपर का धरातल चपटा और फिसलना होता है और भीतर कुछ कड़े बाल रहते हैं। इसके थोड़ा सा मुँह रहता है। दिव्य कस्तूरी की तादाद कम रहती है। इसकी सुगन्ध इतनी मस्त होती है कि दूर २ तक फैल जाती है और यह कहा जाता है कि शिकारी लोग भी इसकी मस्त सुगन्ध में सुध बुध भूल जाते हैं। क्योंकि यह आख, नाक और स्नायु मण्डल पर दूषित असर डालती है। चीनी व्यापारियों का कथन है कि उत्तम प्रकार की कस्तूरी पकड़े हुए जानवरों से प्राप्त नहीं की जा सकती। किन्तु यह हिरण समुदाय के उठने बैठने के निश्चित स्थानों पर पाई जाती है। हरिण अपने खुरों से उन ग्रन्थियों को तोड डालता है और कस्तूरी को जमीन पर बिखेर देता है। परन्तु इस किस्म की कस्तूरी प्राप्त करना बहुत कठिन बात है और बाजार में इस जाति की कस्तूरी पाई भी नहीं जाती।

कर्नल चौपरा लिखते हैं कि कस्तूरी के समान सुगन्धित तत्व दूसरे जानवरों और वनस्पतियों में भी जोकि संसार के भिन्न २ भागों में होती हैं, प्राप्त किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ एन्टी कोप डार्क्स (Anticope dorcas) जो कि एक प्रकार का हिरण होता है और कपरा इवेक्स (Capra Ibex) नामक एक बकरे का सूखा हुआ रक्त कस्तूरी की तरह ही सुगन्ध देता है। ओबीबस मस्केटस (Obibos moschatus) नामक एक प्रकार के साड में भी इसकी सुगन्ध पाई जाती है। इसके अतिरिक्त Anas moschata अनास मास्कटा नामक बतख जो कि गोल्डकास्ट, जमेका और स्पेन में पाई

जाती है। उसमें तथा Croco dipus Balgaris क्रोकोडिपस बलगेरिस नामक एक प्रकार के मगर मे भी इसकी सुगन्ध पाई जाती है। कुछ भारतीय सर्पों और सामुद्रिक कछुओं में भी कस्तूरी के समान सुगन्ध होती है।

इसी प्रकार कई वनस्पतिया भी ऐसी होती हैं जिनमें इसी के समान सुगन्धित तत्व पाये जाते हैं। फिर भी इस वस्तु का खास उत्पत्ति स्थान हिरन ही है।

बाजार में प्राप्त होने वाली कस्तूरी तयार करने के कई तरीके हैं। इसकी थैली को निकालते ही धूप और हवा मे अच्छी तरह सुखा ली जाती है। मौसम के परिवर्तन के कारण इसकी सुगन्ध नष्ट न हो जाय इसलिए इसको लकड़ी की पेटियो में या अन्य बर्तनों मे बन्द रखते हैं। चीन के व्यापारी इसकी थैलियों को रेशम लिपटी हुई थैलियों मे इन्तिजाम के साथ रखते हैं।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में कस्तूरी के कई प्रकार के भेद बतलाए हैं। वर्ण की दृष्टि से यह तीन प्रकार की होती है। कपिल वर्ण, पिंगल वर्ण और कृष्णवर्ण। नैपाल में उत्पन्न होने वाले कस्तूरी कपिल वर्ण अर्थात् भूरे रग की होती है। काश्मीर में उत्पन्न होने वाली पिंगलवर्ण की होती है। कामरूप अर्थात् आसाम देश की करतूरी काले रग की होती है। किन्तु भाव मिश्र ने नैपाल देश की कस्तूरी को नीले रग की और काश्मीर की कस्तूरी को कपिल वर्ण की लिखा है। आसाम देश में उत्पन्न होने वाली कस्तूरी उत्तम 'नैपाल की करतूरी मध्यम और काश्मीर की करतूरी अधमहोती है।

इसके अतिरिक्त खरिका, तिलका, कुलित्था, पिंडा और नायिका के भेद से कस्तूरी पांच प्रकार की मानी जाती है।

व्यापारिक क्षेत्र में तीन प्रकार की करतूरी मानी जाती है। पहली रशिया की करतूरी। इसकी सुगन्ध बहुत मामूली होती है इसलिए इसकी कोई तारीफ नहीं। दूसरी आसाम की करतूरी इसकी सुगन्ध बहुत मस्त होती है और इसकी कीमत भी रशिया की करतूरी से अधिक आती है। आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका वर्णन कामरूप कस्तूरी के नाम से किया गया है। यह रग में काली होती है और प्राप्त होने वाली करतूरी की जातियों में यह सर्वोत्तम मानी जाती है। तीसरी चीन की करतूरी। यह बहुत ऊंची कीमत की होती है। कारण कि इसमें किसी प्रकार की अग्राह्य गंध नहीं होती। चीन की भेजी हुई करतूरी तिब्बत में आती है और वहां से मंगोलिया, मंचूरिया इत्यादि स्थानों पर जाती है!

असली करतूरी की परीक्षा—

करतूरी की मांग अधिक होने से और इसकी कीमत ऊंची होने से इसमें कई प्रकार की मिलावटें करदी जाती हैं। सूखा हुआ खून, यकृत, कई प्रकार की वनस्पतिया, गेंहू और जौ के दाने भी इसको तयार करते समय इसमें मिला दिये जाते हैं। करतूरी अपनी सुगन्ध दूसरी वस्तुओं को बहुत जल्दी दे देती है। इसलिए केवल सुगन्ध की परीक्षा से इसकी असलियत जानना कठिन है। चीन और तिब्बत में इसकी परीक्षा के कई तरीके प्रचलित हैं। इसके कुछ दाने लेकर पानी मे डाले जाते हैं। अगर वे

उसमें वैसे ही रह जाय तो कस्तूरी शुद्ध मानी जाती है और अगर ये पानी में घुल जाय तो कस्तूरी बनावटी समझी जाती है। इसी तरह से यदि धधकते हुए अंगारे पर इसके दाने डाले जांय और वे पिघल कर बबूले देने लगे तो कस्तूरी असली मानी जाती है और अगर वे जल कर राख हो जाय तो बनावटी समझी जाती है। असली कस्तूरी स्पर्श करने से मुलायम मालूम होती है और बनावटी सख्त मालूम होती है। पंजाब के अन्दर इसको जाच करने की दूसरी प्रथा है। एक धागे को हींग में तर करके फिर उसे कस्तूरी में से निकालते हैं। अगर हींग की वास नष्ट हो जाय तो कस्तूरी को असली मानते हैं।

फ्रान्स के कुछ रासायनिकों ने असली कस्तूरी की तरह एक ऐसी कस्तूरी को तैयार करने का प्रयत्न किया है जो गुण और धर्म में असली कस्तूरी ही की तरह होती है और इसके प्रतिनिधि द्रव्य की तरह काम में ली जा सकती है। जिन तत्वों की मदद से यह तैय्यार की जाती है। उनमें ट्रिनीट्रोब्यूटिल टोलवल (Trinitrobutil Tolwal) नामक पदार्थ मुख्य है। इसकी सुगन्ध असली कस्तूरी से मिलती जुलती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से कस्तूरी कामोद्दीपक, धातु परिवर्तक, नेत्रों को लाभ पहुँचाने वाली तथा किलास, कुष्ट, मुख रोग, कफ, दुर्गन्ध, दरिद्रता, वात, तृषा, मूर्छा, शोष, विष, खांसी और शीत का नाश करने वाली है।

कस्तूरी पर *यूनानी मत*—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में खुश्क होती है। यूनानी चिकित्सा पद्धति में यह वस्तु बहुत महत्व पूर्ण मानी गई है। दिल, दिमाग, स्नायुमण्डल कामेन्द्रिय इत्यादि शरीर के तमाम अङ्गों को यह ताकत देनेवाली मानी जाती है। विष को नष्ट करने की शक्ति भी इसमें रहती है। इसके सूंघने से जुकाम, नजला और सिरदर्द को फायदा होता है। आंख में आंजने से धुन्ध और जाला कट जाता है। इसको योनि में रखने से गर्भ टिक जाता है और सम्भोग के पूर्व कामेन्द्रिय पर थूक के साथ लेप करने से बहुत स्तम्भन होता है।

हृदय रोग, मालीखोलिया, हिस्टीरिया और मृगी पर भी इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। हृदय की खराबी की वजह से सास लेने में जो कठिनाई पैदा हो जाती है उसमें इसके टिंक्चर* की १०।१० बूंदें पन्द्रह २ मिनिट के अन्तर से ४।५ बार देने से बड़ी शान्ति मिलती है।

खांसी, दमा, कफ के दोष, अरुचि, मुंह की बदबू, पीलिया, दृष्टि की कमजोरी, मुँह की झाईं, शरीर का मोटापन, जुकाम, क्षय, पुरानी खांसी, कमजोरी और नामर्दी में कस्तूरी के प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

---

* नोट—एक औंस रेक्टिफाइड स्पिरिट में तीन रत्ती कस्तूरी मिलाने से कस्तूरी का टिंक्चर तय्यार हो जाता है।

यह गरम प्रकृति वालों के लिये और गरम मोसम में हानि कारक होती है। इसको ज्यादा खाने से चेहरा पीला पड़ जाता है। ज्यादा सूंघने से दिमाग में हानि पहुँचाती है। हमेशा खाने से मुँह में बदबू पैदा करती है और बुद्धि को भ्रष्ट करती है। यह दाँतो को भी हानि कारक है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये कपूर का प्रयोग करना चाहिये।

इसकी मात्रा आधी रत्ती से दो रत्ती तक की है।

रासायनिक विश्लेषण—

कस्तूरी पानी के अन्दर ५० सैकड़ा और अलकोहल में १० सैकड़ा घुलती है। इसमें अमोनिया (Ammonia), एलेइन (Alein), चोलेसटेरिन (Cholesterin), फेट (Fat), वैक्स (Wax) ,तथा गेलेटिनस (Gelatinous) और अल्बुमिनस (Albuminous) नामक पदार्थ पाये जाते हैं। इसमें एक प्रकार का क्षार भी रहता है जिसमें क्लोरिडस आफ सोडियम (Chlorides Of Sodium) पोटेशियम (Potassium) और केल्शियम (Calcium) नामक पदार्थ पाये जाते हैं। इससे एक प्रकार का तेल भी प्राप्त किया जाता है जो कि मस्कोन के (Muskone) नाम से प्रसिद्ध है। यह इसको सुगन्ध शक्ति के लिए बहुत मशहूर है। इसके नजदीक वाली हर एक वस्तु इसकी सुगन्ध से आक्रान्त हो जाती है। यह कई सुगन्धित पदार्थों को स्थायित्व शक्ति देने के लिये काम में लिया जाता है। इस तेल की सुगन्ध कपूर, कड़ी बदाम, लहसन इत्यादि पदार्थों के सम्मेलन से नष्ट हो जाती है।

इसकी क्रिया और गुण धर्म के विषय में आधुनिक अन्वेषणों में बहुत कम जाना गया है। जो भी अनुभव किये गये हैं वे बाजार से प्राप्त की गई कस्तूरी पर से ही किये गये है। जिसकी असलियत के विषय में शंका है। बाहर से बुलाई हुई और देशी दोनों ही प्रकार की कस्तूरी के टिन्चरों को भी अजमाया है। मगर वे भी संशय रहित नहीं हैं।

कर्नल चौपड़ा लिखते हैं कि हमने देशी वैद्यों से और शिमला हिल स्टेट के थरोज के राना साहब से और काश्मीर के विश्वस्त व्यापारियों से असली कस्तूरी को मगवाकर अजमाया।

भारतीय देशी चिकित्सा प्रणाली मे अपस्मार,मृगी और बच्चों को तनाव की बीमारी में कस्तूरी और अन्य सुगन्धित पदार्थ शान्ति दायक वस्तु की तौर पर ज्यादा काम में लिये जाते हैं। वास्तव में सभी चिकित्सा प्रणालियों में चाहे वे प्राचीन हों चाहे नवीन, सुगन्धित द्रव्य स्नायु मण्डल को शान्ति देने वाले माने गये हैं। किन्तु इनका वास्तविक अन्दाजा लगाना कठिन है, क्योंकि रसायन शाला में इसका कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता। मेचिट और टङ्ग ने कस्तूरी तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों के केन्द्रिय स्नायुओं पर जो भी प्रभाव होते हैं उनका अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। इनका जानवरों पर भी परीक्षण किया गया है। मगर ऐसी कोई बात नहीं पाई गई जिससे यह कहा जा सके कि यह अपना उपशामक प्रभाव दिखाती है। दो ग्रेन की मात्रा मे यह अस्पताल मे खिलाई भी गई किन्तु कोई उपशामक प्रभाव नही पाया गया।

रक्त वाहक शिराओं पर कस्तूरी का प्रभाव—बिल्लियों की शिराओं में इसका इंजेक्शन दिया गया, लेकिन रक्त भार अथवा ब्लड प्रेशियर पर इसका कोई प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं हुआ। खरगोश और अन्य जानवरों के हृदय पर भी इसको अजमाया गया किन्तु हृदय की सिकुड़न की गति और शक्ति पर इसका कोई असर नहीं हुआ। इसे जलचर और स्थलचर के प्राणियों के हृदय पर भी अजमाया, किन्तु कोई असर नहीं पाया गया। डेविड और रेड़ीने भी सन् १६२६ में इसके टिंक्चर का परीक्षण करके अपने विचार इसी प्रकार जाहिर किये।

रक्त के कोष मय झिल्लियों के तत्वों पर कस्तूरी का प्रभाव-(Action on the Cellular Elements of the Blood, मूडीयल, डेविड और रेडी के मतानुसार इसका रक्त के कोषाणु तत्वों पर काफी प्रभाव होता है। इसको मुँह से खिला देने के बाद रक्त के श्वेत परमाणु बढ़ जाते हैं। इनका कथन है, कि जिन बीमारों में रक्त के श्वेत परमाणुओं की कमी पाई जाती है उन पर इसका प्रभाव बहुत ही द्रुत गति से होता है। किन्हीं २ में तो इनकी तादाद दुगनी हो जाती है। साधारण लोगों में या उन लोगों में जिनमें रक्त के श्वेत परमाणु ज्यादा ही होते हैं इसका प्रभाव मामूली तौर पर दृष्टिगोचर होता है। इन परीक्षकों ने एक औंस पानी में १० से २० मीनिम तक कस्तूरी का टिंक्चर डालकर उसका उपयोग किया। जिसके परिणाम स्वरूप आधे घण्टे से एक घण्टे के भीतर रक्त के श्वेत परमाणु बढ़ गये। इसी बात को निश्चय करने के लिए यह वस्तु कारमाइकल हास्पिटल फॉर ट्रापिकल डिजिजेस में भी काम में ली गई। यह तन्दुरुस्त लोगों पर भी अजमाई गई और ऐसे रोगियों पर जिनके रक्त में श्वेत परमाणुओं की कमी थी उन पर भी उपयोग में ली गई। खाना खाने के बाद में प्रतिदिन १ ग्रेन की मात्रा सात दिन तक लगातार दी गई और इनका रेकार्ड बराबर रक्खा गया किन्तु रक्तभार और नाड़ी की गति इत्यादि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं पाया गया। तन्दुरुस्त लोगों में भी २ ग्रेन की मात्रा देने पर कोई परिवर्तन दृष्टि गोचर नहीं हुआ। सिर्फ उन लोगों ने इतना ही बतलाया कि इसके उपयोग से उनके पेट में कुछ हलकेपन का अनुभव हुआ और जनरल हालत भी कुछ रौनकदार मालूम पड़ी। इसके प्रभाव पेट के आफरे को मिटाने वाली औषधियों के समान मालूम पड़े। रक्त के श्वेत परमाणुओं की मात्राओं में कोई वृद्धि दृष्टि गोचर नहीं हुई।

श्वास क्रिया प्रणाली या फुफ्फुस यंत्र पर कस्तूरी का प्रभाव—श्वास क्रिया प्रणाली पर इसका असर देखने के लिए जानवरों को इसके इंजेक्शन दिए गये पर उनके अवयवों में उससे कुछ भी उत्तेजना नहीं पाई गई, तब कस्तूरी के जल में कुछ रुई भिगोकर जानवरों की नाक के पास रक्खा गया, इससे उनकी श्वास क्रिया प्रणाली में अवश्य ही कुछ उत्तेजना पाई गई। इसी प्रकार इसको जल में घोलकर नाक की झिल्लियों पर पिचकारी के जरिये छिड़का उससे स्पष्ट असर देखा गया। मगर पहिली विधि की अपेक्षा इस विधि से उत्तेजना पैदा होने में कुछ अधिक समय लगा, इससे यह मालूम होता है, कि सुगन्धित तत्व उड़नशील हालत में होने पर ही स्नायु मण्डल पर द्रुत गति से अपना प्रभाव

दिखाते हैं। जल मे मिलाकर उन्हें भीतरी झिल्लियों पर छिड़कने से असर होने में विलंब लगता है, इससे यही मालूम होता है कि कस्तूरी का श्वास क्रिया प्रणाली पर सीधा असर नहीं होता है। जो भी थोड़ा बहुत असर होता है; वह नाक की झिल्लियों की घ्राण शक्ति की उत्तेजना के जरिये मस्तिष्क में पहुँचता है, और मस्तिष्क के द्वारा श्वास क्रिया प्रणाली और हृदय पर अपना प्रभाव दिखाता है।

औषधि विज्ञान में कस्तूरी की उपयोगिता—कस्तूरी भारतीय वैद्यों के द्वारा बहुत प्राचीन काल से उपयोग में ली जा रही है। वे इसे उत्तेजक और खास कर हृदयोत्तेजक मानते हैं। यह कामोद्दीपक और ज्वर, खासी, दुर्बलता, नपुंसकता, आक्षेप, और शूल निवारक मानी जाती है। हृदयोत्तेजक औषधि के रूप में इसकी तारीफ इतनी अधिक है, कि जब सब औषधिया असफल हो जाती हैं, तब वैद्य इसी का आश्रय ग्रहण करते हैं। हृदय को उत्तेजना देने के लिये कभी कभी तो यह स्वतन्त्र रूप में और कभी मकरध्वज के साथ में दी जाती है। यह मस्तिष्क, श्वास प्रणाली, रक्तवाहिनी शिरा और स्नायु-मण्डल पर अपना उत्तेजक प्रभाव दिखाती हैं। इससे शरीर में और धमनियों में कुछ वेग पैदा हो जाता है; यह वेग पेशाब और पसीना आने पर कम हो जाता है। पुरुषत्व हीनता, अग्निमान्द्य बृहदन्त्र प्रदाह और बच्चों के आक्षेप में इस वस्तु की बड़ी तारीफ है।

यूरोप और पश्चिमी देशों के अन्दर कस्तूरी सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औषधि-रूप में उपयोग में ली जाने लगी। तभी से कई बीमारियों में जैसे आन्त्रज्वर, तन्द्रायुक्त, सन्निपात, गठिया, तनाव, धनुर्स्तम्भ, हड़काव, अपस्मार, कुकुर खांसी, कंपवात, हिचकी, श्वास, उदरशूल इत्यादि रोगों में उपयोग में ली जाने लगी। सन् १६०५ में क्रुकशेंक ने केन्द्रीय स्नायु मण्डल के विषैले प्रभाव में इसकी उपयोगिता के पक्ष में अपना मत जाहिर किया। उन्होंने पिसी हुई कस्तूरी ५ ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक दो घण्टे के बाद संतोषजनक रूप मे ली। बच्चों के तनाव में जिसमें कि कोई खास निदान नहीं किया जा सकता है यह वस्तु कोरल हैड्राज के साथ में दी जाती है। स्टिल ने सन् १६०६ में कोरल हेड्राज ५ से १० ग्रेन तक और कस्तूरी का टिंक्चर १० से ३० बूंद तक मिलाकर दोनों का सम्मिलित इन्जक्शन देने की राय दी। यह वस्तु रक्त-प्रवाह की गिरती हुई गति और हृदय की धड़कन पर दी जाती है। ऐसा विश्वास है कि यह रक्तभार और नाड़ी की गति को बढाती है। काश्मीर के डाक्टर मित्रा ने प्लेग जनित हृदय की दुर्बलता पर इसे बहुत उपयोगी पाया। इन्होंने पिसी हुई कस्तूरी को भी बहुत लाभ के साथ उपयोग मे लिया।

मगर अब इस वस्तु की उपयोगिता के सम्बन्ध में यह विश्वास दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है और इसीके परिणाम-स्वरूप पहले जहां यह वस्तु ब्रिटिश फर्माकोपिया और यूनाइटेड स्टेट्स के फर्माकोपिया में सम्मत मानी गई थी वहां अब यह दोनों ही फर्माकोपिया में सम्मत नहीं मानी जाती है।

कस्तूरी का टिन्क्चर हिन्दुस्थान में अब भी १० से ३० मिनिम तक हृदय को उत्तेजना देने

काम में लिया जाता है। यह स्नायुमण्डल की दबी हुई हालत में भी उपयोग. में ली जाती है, और यह कामोद्दीपक भी मानी जाती है। हमने इसके सम्बन्ध में जो परीक्षण और अनुभव किये हैं, उनसे इसके हृदय पौष्टिक गुण और रक्त के श्वेत परमाणुओं को बढानेवाले गुण सिद्ध नहीं होते हैं। इसमें जो भी उत्तेजक असर होता है, वह इसकी तीव्र गध के कारण घ्राणेन्द्रिय के जरिये अथवा उदर की श्लेष्मिक झिल्लियों पर इसके प्रदाहिक प्रभावों के कारण होते हैं, यह बात पहले बतला दी जा चुकी है कि जिन बीमारों को कस्तूरी दी गई थी, उन्हे शरीर में कुछ गर्मी और पेट में कुछ हलकापन मालूम हुआ। हृदय और श्वास की उत्तेजना इसी का प्रति बिम्बित प्रभाव मालूम होता है। अपस्मार, बच्चों के आक्षेप और कपवात में इसकी उपयोगिता साधार नहीं मालूम पड़ती। गुल्म वायु में इसका प्रभाव उतना ही है जितना कि हींग, व्हेलेराइन इत्यादि तीव्र गन्धवाले पदार्थों का होता है। कुक्कुर खासी और अन्त्रशूल में इसका प्रभाव इसेंशियल आइल युक्त वस्तुओं के प्रभाव की तरह होता है। इसके सम्बन्ध में जो भी अध्ययन हमने किये हैं उससे हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारतवर्ष में देशी औषधियों में कस्तूरी को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है। इसमें शरीर क्रिया विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से कोई विशेष गुण नहीं हैं।

बनावटें—

✓ *मृगनाभ्यादिक* वटी— बढ़िया कस्तूरी ३ माशे, अनविन्धे मोती ६ माशे, सोने के वर्क डेढ माशा, चांदी के वर्क साढ़ेचार माशा, केशर ६ माशा, वंशलोचन साढ़े दस माशा, छोटी इलायची के दाने साढ़े सात माशे, जायफल ६ माशे और जावित्री १ तोला इन सब औषधियों में से मोतियों को १२ घंटे तक गुलाबजल में घोटना चाहिये, बाद में सोने चादी के वर्क डालकर ३ घटे तक घोटना चाहिये। फिर वंशलोचन आदि शेप औषधियों को कूट पीस और छानकर उसी खरल में डाल देना चाहिये और नागरवेल के पान का रस डालकर ३६ घटे तक घोटना चाहिये। उसकेबाद मटर के समान गोलियां बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। बाबू हरिदासजी वैद्य अपने चिकित्सा चद्रोदय नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि रोगी की धातु कैसी ही कम हो गई हो या सूख गई हो, धातु की कमी से स्त्री इच्छा नहीं होती हो और वीर्य की कमी से जो नामर्द हो गया हो तो इन गोलियों से अच्छा हो जाएगा। इन गोलियों को १ से २ तक की मात्रा में मलाई के साथ देनी चाहिये।

कस्तूरी दाना

नाम—

संस्कृत— लता कस्तूरीका, कस्तूरी लतिकः। हिन्दी—कस्तूरी दाना, मुश्कदाना। गुजराती — लता कस्तूरी। मराठी—कस्तूरी भेंदा, मुश्क दाना। बंगाली— लता कस्तूरी। अरबी— हब्बुलमुश्क। फारसी—मुश्कदाना। तामील- कस्तूरी वेंदई। लेटिन-Hibiscus Abelmuoschus (हिबिस्कस एबेल मोसकस)

वर्णन—

यह वनस्पति भारत वर्ष के गर्म देशों में और अन्य उष्ण प्रांतों में पैदा होता है। प्राचीन यूनानी हकीमों में इस औषधि के सम्बन्ध में बड़ा मत भेद है। यहां तक कि तालीफ शरीफ नामक प्राचीन ग्रन्थ के ग्रंथकार ने भी इसकी पहचान के सम्बन्ध में गलती खाई है। निघण्टु रत्नाकर के लेखक ने लिखा है कि लता कस्तूरी की बेल दक्षिण देश में होती है। मगर शालिग्राम निघण्ट का ग्रंथकार लिखता है कि इसकी बेल दक्षिण में देखने में नहीं आई। खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि एक शख्स ने उदयपुर के स्टेशन पर इसके पौधे लगाये थे ये गज भर ऊँचे थे। उनके बीजों से खुशबू आती थी, उनके पत्ते भिंडी के पत्तों की तरह और फलियां (जिनमें बीज होते हैं) भी भिंडी की तरह होती हैं। उस आदमी का कहना है कि दो वर्षों के बाद दरख्त दो, सवा दो गज लम्बा होने पर उसकी बेल जमीन पर चलने लगती है। इसके फूल पीले और भिंडी के फूलों की तरह होते हैं। अनुभूत चिकित्सा सागर का ग्रंथकार लिखता है कि इसके बीज सुगन्ध युक्त चरपरे और वृक्क के आकार वाले होते हैं। इसको चुटकी में मसलने से तीक्ष्ण गन्ध पैदा होती है। इसके १०० तोले बीजों में से साढ़े छः तोले सुगन्ध युक्त तत्व और राल जैसा पदार्थ निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसके बीज स्वादिष्ट, कामोत्तेजक, शीतल, नेत्रों को लाभ पहुँचाने वाले, कड़वे और पेट के अफरे को दूर करने वाले होते हैं। आंतों की शिकायत, मुखशोथ और हृदय रोग में भी ये लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी तबियत सर्द और खुश्क होती है। यह मुँह की बीमारियों और जबान की अरुचि को दूर करती है। इसके पत्ते और शाखाएँ सुजाक, प्रमेह और वीर्य के साथ खून जाने की बीमारी में लाभ दायक होते हैं। इसके पेड़ के तमाम हिस्से जलाकर उनका धुँआं हलक में पहुँचाने से हलक की तमाम बीमारी दूर होकर आवाज साफ होती है। इनके बीज स्फूर्तिदायक और ऐंठन मिटाने वाले होते हैं।

इसकी जड़ और पत्तों का लुआब निकाल कर पीने से सुजाक में बड़ा लाभ होता है। इसी लुआब से बुखार की गर्मी भी मिटती है।

खांसी को मिटाने के लिये, इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाते हैं और पीने पर इसके पंचांग का लेप करते हैं।

डाक्टर मोडीन शरीफ इसके बीजों का टिन्क्चर बनाकर काम में लेते थे। उनके मतानुसार यह वनस्पति उत्तेजक, अग्निवर्द्धक और आक्षेप निवारक है। स्नायु मण्डल की कमजोरी और अपस्मार में भी वे इसका उपयोग करने की शिफारिश करते हैं। अग्निमांद्य में वे इसे पौष्टिक समझते हैं।

मेनिला में इस औषधि का उपयोग पथरी की बीमारी में किया जाता है। अमेरिका और

वेस्ट इण्डीज में सर्प विष को दूर करने के लिये इस औषधि का बाहरी और भीतरी प्रयोग किया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार सर्प विष में इसके बीज बिलकुल निरुपयोगी हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतल, पौष्टिक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसे सर्पदंश में काम में लेते हैं। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कस्तूरी दाना शीतल, स्नेहन, दीपन, रोचक, वात नाशक और बलकारक होता है। यह श्वास मार्ग के अन्दर स्निग्धता पैदा करके श्वास नलिका के संकोच को कम करता है। इसकी फाट बना कर कफ रोगो के अन्दर देने से लाभ होता है। यह हृदय को बल देता है। प्रमेह में भी इसकी जड़ और पत्तों का काढ़ा फायदे मन्द होता है।

उपयोग—

मूत्रकृच्छ्र—इसकी जड़ और पत्तों का चेप निकाल कर मूत्रकृच्छ्र वाले रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

ज्वर—इसके ताजा पत्तों का रस पिलाने से ज्वर छूटता है।

खांसी—इसके रस में शहद मिला कर पिलाने से खासी मिटती है और इसके पंचांग को पीस कर उसका पुल्टिश छाती पर बाधने से भी बड़ा लाभ होता है।

स्वर भंग—इसके पंचांग का धूम्रपान करने से स्वरभंग मिटता है।

कसीस (हीराकसी)

नाम—

संस्कृत—कासीस, धातु कासीस, खाचर, धातु शेखर, पुष्पकासीस। हिन्दी—कसीस, पुष्पकसीस, हीराकसी। बंगाली—धातु कासीस, पुष्प कासीस। मराठी—हीराकस। गुजराती—हीराकसी। फारसी—जाकेसब्ज। अरबी—जाजे अखदर, जाजे असफर। लेटिन—Ferry Sulphas (फेरीसल्फाज)

वर्णन—

कसीस या हीरा कसी एक प्रकार का खनिज द्रव्य है। यह भारतवर्ष के अन्दर कई स्थानों से प्राप्त होती है। यह दो प्रकार की होती है। एक को धातु कासीस और दूसरी को पुष्प कासीस कहते हैं। यूनानी मतानुसार यह सफेद, सब्ज, जर्द और सुर्ख इस प्रकार से चार प्रकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कसीस कसेला, शीतल, नेत्रों को हितकारी, कान्तिवर्द्धक तथा विष और कृमि का नाश करने वाली, केशों में हितकारी और खुजली, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, मगर,

कुष्ट और क्षय में लाभदायक है। पुष्पकासीस गरम, कसैला, केश रंजक तथा उपरोक्त सब गुणों से युक्त है।

यूनानी मत—यूनानी मत से सफेद और जर्द कसीस तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है और सुर्ख कसीस चौथे दर्जे में गर्म और खुश्क है। इसकी तमाम किस्में निहायत तेज हैं। यह ढीले अगों में चुस्ती और सख्ती पैदा करती हैं। यह जखम पर लगाने से खरोट ला देती है। तर खुजली और सिर की गंज में भी यह लाभ दायक है। नासूर में इसकी बत्ती रखने से लाभ होता है। इसको मजन में डालने से मसूड़ों के जख्मो पर फायदा होता हैं।

शेख अपनी कानून तिब्ब नामी पुस्तक में लिखते हैं कि हमारे जमाने में और हमसे पहले के जमाने के हकीमों ने तजुर्बा किया है कि साढ़े तीन माशे कसीस सुर्ख बल्खी खाने से सफेद बाल गिरकर उसकी जगह काले बाल जम जाते हैं। मगर यह दवा बहुत उग्र है। हर कोई इसको बरदाश्त नहीं कर सकता है। यह सिर्फ मजबूत प्रकृति के और हिम्मत वर आदमियों के लिये ही मुफीद हो सकती है।

आधुनिक अन्वेषणो से मालूम हुआ है कि कसीस कारबकंल नामक फोड़े के अन्दर जिसको पाठे का दर्द भी कहते हैं और जो मधु प्रमेह की वजह से पैदा होता है, बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। वैद्य कल्प तरु के सन् १६१६ के अगस्त मास के अन्त में डाक्टर मूलजी जेठू जोशी ने लिखा है—

"मेरे पास कारबकल का एक रोगी ऐसा आया जो अत्यन्त कमजोर होने के कारण शस्त्र क्रिया को बर्दाश्त करने में असमर्थ था। उसके इलाज में शुरू २ में पोटास परमग्नेन्ट का लोशन शुरू किया गया पर उससे लाभ होता हुआ न देखा तब हीराकशी के लोशन में लिंट का टुकड़ा भिजोकर फोडे के स्थान पर जितने अधिक समय तक हो सके उतना रखने की सूचना दी गई। यह लोशन एक औंस ठण्डे पानी में पाच ग्रेन हीराकसी डालकर तैयार किया गया था।

इस प्रयोग के चालू रखने से कारबंकल का बढना बन्द हो गया और उसका सड़ा हुआ हिस्सा शरीर से अलग होने लगा। जितने भाग में लोशन रक्खा गया उतना भाग नरम पडकर अच्छा होने लगा। मगर दूसरी ओर फोड़ा बढने लगा जिसके परिमाण स्वरुप सारी पीठ, छाती और कोहनी से ऊपर की दोनों भुजाएं रतवे से छा गईं जहां २ रतवे के चिन्ह दिखाई देने लगे वहा २ हीराकशी के लोशन के पोते चालू रखे गये। लगभग तीन सप्ताह में रतवा बिलकुल मिट गया और फोड़े में से तमाम सड़ा हुआ भाग निकलकर उस स्थल पर सादा घाव रह गया। इस सादे घाव को आइडो फार्म और बोरिक एसिड से मिश्रित पावडर को वैसलेन के साथ लगाकर ऊपर से हीराकशी के लोशन का प्रयोग चालू रखा गया जिसमें एक महीने में रोगी बिलकुल आराम हो गया।

इस एक मास के दर्मियान रोगी को बुखार, खांसी, अरुचि, निद्रानाश, हृदय की निर्बलता इत्यादि कई उपद्रव होते रहे जिनका योग्य उपचार किया गया।"

इसी बात के समर्थन में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले प्रेक्टिकल मेडिसिन नामक अंग्रेजी पत्र के सितम्बर सन् १६१६ ई० के अंक में रामपुर स्टेट के चीफ मेडिकल अफसर डाक्टर केशवलाल जयशंकरभाई का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका साराश यह है कि मैं मेरे अस्पताल में कारबंकल के रोगियों पर हीराकशी के लोशन का प्रयोग बराबर करता रहा हूं। १ औंस पानी में ५ ग्रेन हीराकशी डालकर उस लोशन में लिंट को भिगोकर रोग दूषित भाग पर रखने से शान्तिदायक, ग्राहिक और जन्तुघ्न असर होता है। यह प्रयोग अत्यन्त असर कारक, निर्भय, किसी भी प्रकार के विषाक्त असर से रहित और सस्ता होता है। एक रोगी का रोग मिटाने के लिये चार छः आने की हीराकशी काफी होती है। इसलिये बिना पढ़े हुए ग्रामीण लोगों को इस प्रयोग का उपयोग निर्भय होकर के करना चाहिए।

मुजिर (हानि कारक)—इसके खाने से कभी २ ऐसी सख्त खांसी हो जाती है जिससे फेफड़े में खुश्की आकर क्षय तक पैदा हो जाता है। इसी प्रकार यह मेदे और आंतो में जखम भी पैदा कर देती है। इसलिये इसका भीतरी प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए।

दर्प नाशक—इसके दर्प को नाश करने वाला मक्खन, मिश्री, ताजा घी और दूध है।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि सज्जी और फिटकरी है।

मात्रा—इसकी खाने की मात्रा दो रत्ती तक की है।

उपयोग—

हिचकी—कसीस और कैथ की गिरी को शहद के साथ चटाने से हिचकी बन्द होती है।

दन्त रोग—इसको मजन मे डालकर दात पर रगड़ने से हिलते हुए दात मजबूत हो जाते हैं।

नासूर—इसको कन्दर के साथ पीसकर गुलाब में मिलाकर आग पर मरहम की तरह पकाकर कागज पर लगाकर नासूर पर बाधने से आराम हो जाता है।

कसूल

नाम—

यूनानी—कसूल।

वर्णन—

यह एक जाति का फल होता है जो एक ऊँगली के बराबर लम्बा और शकल में अमलतास की फली की तरह होता है। यह रूम के मुल्क में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका स्वभाव सर्द और खुश्क होता है। यह अत्यन्त काबिज है। ३ माशे की मात्रा में देने से खून के दस्त रुक जाते हैं। इसको पीसकर जखमों पर छिड़कने से खून का आना रुक जाता है।

कसूंबा

नाम —

संस्कृत—कुसुम्भम, अग्निशिखा, पावकम्, वस्त्ररंजकम्। मारवाड़ी—कसूंबो। हिन्दी—कसूम। गुजराती—कसूंबो। मराठी—करड़ई चे फूल। बंगाली—कुसुमफुलेर। तेलगू—लत्तुक, लक्कबंगारमु। फारसी—खश्कदाने, गुलेमश्कर। अरबी—करतम। लेटिन—Carthamus Tinctorius कार्थेमस टिंक्टोरियस।

वर्णन —

भारतवर्ष में जब विलायती रंगों का प्रचार नहीं हुआ था उस समय कसूबे का रंग यहां पर प्रधान रूप से वस्त्र रंगने के काम में लिया जाता था। इसका रग अत्यन्त पक्का और खुशनुमा होता था। उन दिनों इसकी खेती भी इस देश में सब दूर होती थी। मगर विलायती रंगों का प्रचार होने से इसका उपयोग बहुत ही कम होता है। कसुम का क्षुप होता है। इसके कांटे कटाइ के कांटों के समान होते हैं। पत्ते भी कटाई के समान होते हैं। इसके फूल लाल तथा नारंगी रंग के रहते हैं और वे खुशबूदार होते है। इसके पेड़ दो प्रकार के होते हैं। एक कांटेवाले और दूसरे बिना कांटेवाले। बिना-कांटेवाले वृक्ष के फूलों में से जो रंग निकलता है वह बहुत उत्तम होता है। इसके ४० तोला बीजों में से ७ तोला तेल निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कसुम के फूल स्वादिष्ट, त्रिदोष नाशक, मेदक, रूखे, गरम, पित्त जनक, केशरंजक, कफ नाशक और हलके हैं। ये मूत्र कृच्छ्र और कोढ़ में भी मुफीद हैं। इसके बीज मीठे, स्निग्ध, ठण्डे, कामोद्दीपक, कफ, वात और रक्त पित्त को नाश करने वाले और तैल युक्त होते हैं। इसके पत्तों का शाग मीठा, गरम, तिक्त, विरेचक, अग्निदीपक, रुचि कारक, क्षुधा वर्धक, मूत्रनिस्सारक, पित्तजनक, गुदा के रोगों को उत्पन्न करने वाला, नेत्रों के लिये हितकारी और कफ को नाश करने वाला है। इसका तेल गरम, दुष्पच्य, जलन पैदा करने वाला, केशों को नष्ट करने वाला, और त्रिदोष कारक है। यह बलवर्धक, मलस्तम्भक, रक्तपित्तकारक, खट्टा तथा कृमि और वात विनाशक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहिले दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। इसके फूल स्वाद में कुछ कड़वे और यकृत के लिये पौष्टिक हैं। ये निद्राकारक, मूत्रनिस्सारक और कफ निस्सारक हैं। ये फोड़े, दाद, खाज, धवलरोग, बवासीर, और वायुनलियों के प्रदाह को दूर करते हैं। ये शरीर सौन्दर्य वर्धक हैं। इसके बीज कड़वे, विरेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाले और कामोद्दीपक हैं। वृद्ध लोगों के लिये ये बहुत मुफीद हैं। ये धवलरोग, खाज, प्रतिश्याय, सीने के दर्द और गले के रोगों को मिटाते हैं। ये रक्त वर्धक,

आखों की ज्योति को बढाने वाले हैं। इसके बीजों का तेल बलवर्धक, विरेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाला, कामोद्दीपक और यकृत तथा जोड़ों के दर्द में लाभदायक है।

खजायनुल अदविया के मतानुसार इसके फूल शरीर के बिगड़े हुए दोषों को पकाकर बाहर निकाल देते हैं। ये काबिज़, नींद लाने वाले, जिगर को कूवत देने वाले, रक्त शोधक, और जमे हुए खून को पिघलाकर पतला कर देने वाले हैं। इसके बीज कफ के विकार को ढीला करके दस्त के रास्ते बाहर निकाल देते हैं। ये वात विकार को दूर करके सीने के मवाद को दूर करते हैं। इसके फूल हृदय और यकृत को बल देने वाले, ऋतुश्राव नियामक, उत्तेजक और उपशामक होते हैं। ये अधिक मात्रा में दिये जाने पर विरेचक, और गरम काढ़े के रूप में दिये जाने पर ज्वर निवारक हैं।

इसके बीजों को पीसकर उनकी पुल्टिस बनाकर गर्भाशय की जलन को दूर करने के लिये बाधते हैं।

इसका तेल बंगाल के उमरावन नामक गाव में खुजली की उत्तम औषधि समझा जाता है। इसको कम से कम ३ बार और अधिक से अधिक ६ बार लगाने से खुजली अच्छी हो जाती है। यह घावों को पूरने और गठिया रोग को दुरुस्त करने में भी बड़ा लाभदायक हैं।

इण्डो चायना में इसके बीज विरेचक माने गये हैं। इसके फूल रजः कष्ट और पक्षाघात में पौष्टिक और ऋतुश्राव नियामक औषधि के रूप में दिये जाते है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बोज विरेचक हैं। ये गठिया की बीमारी में काम में लिये जाते हैं। इसके फूल पीलिये में मुफीद हैं।

उपयोग —

गुर्दे और मसाने की पथरी —इसके १ तोला फूलों को पानी में पीसकर मिश्री मिलाकर, हफ्ते भर उपयोग करने से गुर्दे और मसाने की पथरी में लाभ पहुँचता है।

चेचक—मेंहदी के पत्तों के साथ कसुम के फूलों को पीसकर बच्चों के तलवों और हथेलियों पर लगाने से चेचक का जोर कम हो जाता है।

जिगर की सूजन —सिरके के साथ इसको लगाने से जिगर की सूजन में लाभ होता है।

बिच्छू का जहर —इसके फूलों को पीसकर खाने से साप और बिच्छू के विष में लाभ होता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह इस काम के लिये निरुपयोगी है।

पीलिया —सूखे हुए कसूम की ४ माशे की फक्की लेने से पीलिया मिटता है।

बवासीर —३ माशे कसूम को पीसकर दही के साथ खाने से बवसीर मिटता है।

माली खोलीया (उन्माद) —इसके बीजों को कूटकर पोटली में बाधकर उस पोटली को दूध में खूब मलना चाहिये। जब मलते २ पोटली का सब हिस्सा दूध में आ जाय तब उस दूध में कोई अच्छा शरबत मिलाकर पी लेना चाहिये। १ बार की खुराक मे दूध २८ तोले और कसूम के बीज ३ तोले

के करीब लेना चाहिये। इसे यूनानी में माऊजबीन कहते हैं। यह माऊजबीन, माली खोलिया, देहशत, या भय, कुष्ठ, खुजली और वात विकार में लाभ दायक होता है।

केश वर्धक योग—कसूम के बीजों के साथ बबूल की छाल समान भाग लेकर उनको जला देना चाहिये। इस राख को चमेली के तेल में मिलाकर बालो की जड़ों पर मलने से बाल नरम पड़ कर लम्बे बढते हैं। बालों के लिये यह अच्छा योग है।

इसके बीज मेदे के लिये और इसके फूल तिल्ली, मेदे और बदन की चमड़ी को नुकसान पहुँचाने वाले होते हैं। इसके फूल सर दर्द पैदा कर के चक्कर लाते हैं।

इसके बीजों का प्रतिनिधि जताअज खरा और इसके फूलों का प्रतिनिधि जौ का आटा है। इसके फूलों के दर्प को नाश करने वाला शहद और इसकी बीजों के दर्प को नाश करने वाला अनीसून है।

कसूस

नाम—

यूनानी—कसूस।

वर्णन—

कसूस अमरबेल के बीजों को कहते हैं। देशी अमरबेल से ये बीज प्राप्त नही होते। विलायती अमरबेल से ये बीज कहीं २ हासिल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत-यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होते हैं। यह मेदे को मजबूत करती और कब्ज को मिटाती है। पसीना, मासिक धर्म और दूध को बढ़ाती है। इसको सिरके के साथ खाने से हिचकी मिटती है। इससे गुद द्वारा और योनि मार्ग से होने वाला रक्तस्राव भी रुकता है। पीलिया में भी यह लाभदायक है। शिकज बीन और रेवन्द चीनी के साथ इसका काढा पीने से पित्त, दस्त की राह से निकल जाता है।

यह औषधि फेफड़े को नुकसान पहुंचाती है और मतली पैदा करती है। शहद और कतीरा गोंद इसके दर्प को नाश करता है।

कसेरु चिचड़ा

नाम—

संस्कृत—गुड़कन्द, कसेरू। हिन्दी—कसेरू, चिचड़ा। बंगाली—केशुर। मराठी—कचरा, कुरड्या। गुजराती—कसेरू। तेलगू—इरिकीचि। लेटिन-Scirpus Kysoor, Cyperus Esculentus.

वर्णन--

यह एक किस्म का हिन्दुस्तानी घास का कन्द है। इस घास से बोरे और चटाइया बनती हैं। यह घास तलावों और झीलों में जमती है। इस वृक्ष की जड़ों में कुछ गठाने रहती हैं जो तन्तुओं से ढकी हुई रहती हैं। इसका फल गोल और पीले रग का जायफल के बराबर होता है।

इसकी छोटे और बड़े के भेद से दो जातियां होती हैं। छोटा कसेरु हलका और सूरत में मोथे की तरह होता है। इसको हिन्दी में चिचोड़ और लेटिन में केपेरिस एस्क्यूलेंटस कहते हैं। दूसरी बड़ी जाति को राज कसैरू बोलते हैं। जाड़े के दिनों में कसैरू जमीन से निकाले जाते हैं और उनके ऊपर का छिलका हटाकर उनको कच्चे ही खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के कसेरू शीतल, मधुर, कसैले, दुग्ध-वर्धक, शुक्र जनक, मल रोधक और कामोद्दीपक होते हैं। ये नेत्ररोग, जलन और कुष्ट में लाभ-दायक हैं।

यूनानी मत— यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर हैं। यह दिल को कूवत देने वाली, काबिज, विशूचिका में लाभ दायक, रक्तातिसार को रोकने वाली, रक्त विकार, पित्त विकार, छाती का दर्द और प्लेग के रोग में लाभदायक है। इस औषधि में विष नाशक गुण भी मौजूद है। हर किस्म के जहर के प्रभाव को फिर चाहे वह किसी के काटने से पैदा हो चाहे खाने से, यह दूर करती है। सुजाक की बीमारी में भी यह लाभ दायक है।

कर्नल चोपरा के मत से इसकी गठानें वमन और रक्तातिसार में उपयोगी है।

उपयोग—

रक्ताभिश्यन्द—कसेरू और मुलेठी के चूर्ण की पोटली बना कर बरसात के झेले हुए पानी मे उस पोटली को भिगोकर आखों में फेरने से रक्ताभिश्यन्द रोग में फायदा होता है।

वमन--कसेरू के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से वमन बन्द होती है।

खांसी— कसेरू के चूर्ण को मिश्री के साथ देने से सूखी खासी बंद होती है।

कसेला

वर्णन—

यह एक प्रकार की लकड़ी होती है जो मजीठ की शकल की होती है। इसका रंग सुर्खी लिये हुए काला होता है। खजाइनुल अदविया का ग्रंथकार लिखता है कि अभी तक इसका ठीक ठीक पता नहीं चला कि यह कहा पैदा होती है और क्या वस्तु है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत— यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है, पेशाब और मासिक-

धर्म को साफ करती है; दिल और मेदा को ताकत देती है और गर्भाशय और गुर्दे के सुद्दे दूर करती है। इसको पीसकर दांतो पर मलने से दांत मजबूत होते हैं।

ज्यादा मात्रा में यह फेफड़े और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। कतीरा और अजमोद के बीज इसके दर्प को नाश करते हैं। इसकी मात्रा १० माशे से सवा तोले तक होती है। (ख० अ०)

कसौटी

नाम—

हिन्दी— कसौटी। अरबी— हैजरी महक।

वर्णन—

यह एक काले रंग का पत्थर होता है जो सोना रगड़ने या परखने के काम में आता है। सारे भारतवर्ष के सराफों के यहां पर यह मिलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—यूनानीमत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होती है। सास की तंगी और गुर्दे के दर्द में इसका पानी पीने से लाभ होता है। इसको औरत के दूध में घिस कर आजने से आंख का जाला, धुंधलापन और आंख के फोड़े फुंसी मिटते हैं। इसकी मात्रा २ रत्ती से ६ रत्ती तक है।

कसौंदी

नाम —

संस्कृत—कासमर्द, कासारि, अरिमर्द, इत्यादि। हिन्दी—कसौंदी। बगाली—कालकासुंदा। मराठी—रणकासविंदा। गुजराती- कासुंद्रो। तेलगू—कश्विन। लेटिन—Cassia occid entalıs. (केसिया ऑक्सिडेंटिलस)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की फैली हुई छोटी किस्म की झाड़ी होती है। इसके क्षुप बरसात में बहुत ऊग आते हैं। इसकी शाखाएं कुछ मुलायम, रेखा वाली और हलके बेगनी रंग की होती हैं। इसके पत्ते गोल, बरछी आकार के, ऊपर के तरफ मखमली और नीचे की बाजू कुछ खुरदरे रहते हैं। इसके फूल गुच्छों में रहते हैं। इसकी फलियां, लम्बी, मोटी और चपटी होती हैं। इन फलियों में २० से लगाकर ३० तक बीज रहते हैं। इसकी दो जातिया होती हैं। एक को लेटिन में "केसिया ऑक्सिडेंटिलस" और दूसरी को "केसिया सोफेरा" कहते हैं। इसका एक भेद और होता है जिसको हिन्दी में काली कसौंदी और लेटिन में Cassia Purpurea (केसियापुरपुरिया) कहते हैं यह जाति इसकी सब जातियों से अधिक प्रभावशाली होती है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कसौंदी के पत्तों का शाक रुचिकारक, वीर्यवर्धक, खांसी

को नष्ट करने वाली, सब प्रकार के विषों को दूर करने वाली, बवासीर में हितकारी, मधुर, कफ, वात विनाशक, पाचक, कण्ठ शोधक, पित्त नाशक, ग्राही और हलका है। खांसी के अन्दर यह विशेष रूप से लाभदायक है। इसलिये इसका नाम कासमर्द रक्खा गया है।

इसकी जड़ दाद, बिच्छू के विष और श्लीपद में उपकारी है। इसके पत्ते सुस्वादु, कामोद्दीपक और विष नाशक होते हैं। गले के विकार, त्रिदोष जन्य बुखार और पित्तविकार में भी यह लाभदायक है।

यूनानी मत— यूनानी मत से इसके बीज तीसरे दर्जे में और इसके पत्ते दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। इसके फूल मोतदिल और जड़ गरम व तर है। इसकी जड़ सर्पदंश में भी लाभदायक है। इसका ताजा रस लगाने से दाद में बड़ा लाभ होता है। मखजन में लिखा है कि इसकी काली किस्म की जड़ को काली मिरच के साथ पीसकर पिलाने से साप के काटे हुए को आराम होता है। तालीफ शरीफ में लिखा है कि कसोंदी की जड़ की सूखी छाल ७ माशे पीसकर शहद में गोली बनाकर दूध के साथ खाकर ऊपर से प्याला भर दूध पीने से स्त्री सहवास में अत्यन्त स्तम्भन होता है। इसी प्रकार कण्ठ स्वर (आवाज) को साफ करने, कण्ठमाला रोग में, पीलिये में, गरमी में इत्यादि रोगों में यह औषधि लाभदायक है।

एक अङ्गरेज़ डाक्टर के मतानुसार इसकी जड़ की छाल, पत्ते और बीज ये सब रेचक हैं। बच्चों के हूपिंगकफ में यह औषधि बड़ी लाभदायक है। इसके पत्तों के चूर्ण की मात्रा आधा तोले तक है। इसकी जड़ और इसके बीजों के चूर्ण में दाद और खाज को नष्ट करने का विशेष गुण देखा गया है। यह औषधि कफ निस्सारक भी है। इसकी जड़ काली मिरच के साथ देने से सर्पदंश में लाभ होता है। इसकी जड़ की छाल को चाय के साथ तथा बीज के चूर्ण को शहद के साथ देने से मधुमेह में लाभ होता है। इसके बीज, पत्ते और जड़ की छाल के चूर्ण में समान भाग गन्धक मिलाकर शहद के साथ दाद, और खाज पर चुपड़ने से जादू की तरह लाभ होता है, क्योंकि इसमें "क्राई सोफेनिक एसिड़" काफी तादाद में रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें मेगनेशियम सल्फाइड, केलशियम फासफेट, केलशियम सल्फेट, आयर्न, इत्यादि तत्व भी रहते हैं। इन्हीं तत्वों की वजह से यह खासी, प्रमेह, वगैरह दर्दों को दूर करने की शक्ति रखती है।

इस वनस्पति से आयुर्वेदिक कॉफी भी बहुत अच्छी तयार होती है। उसकी तरकीब इस प्रकार है। — कसोंदी के बीज १ सेर लेकर हलकी आंच पर घी में सेंक लेना चाहिये फिर उनको पीसकर उस चूर्ण में छोटी इलायची के बीज १ तोला, ककोल आधा तोला, तज आधा तोला, जायफल ३ माशे, जावित्री ३ माशे, सोंफ ३ माशे, खस खस ३ माशे, केशर १॥ माशा लेकर सबका चूर्ण करके मिला देना चाहिये। इस औषधि को कॉफी की तरह बनाकर पीने से बालक जवान और बुड्ढे सबको बड़ा लाभ होता है इसके पीने से काम काज से आने वाली सुस्ती दूर होती है मनमें प्रसन्नता पैदा होती है। हर एक कार्य करने की उमग पैदा होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। तथा वीर्य स्थान शुद्ध होकर कामोद्दीपन की शक्ति भी बहुत बढ़ती है। (जंगलनी जडी बूटी)

वेस्ट इंडीज में इस वनस्पति की जड़ मूत्रल मानी जाती है। इसके पत्ते जलोदर की प्रारंभिक अवस्था में लाभदायक माने जाते हैं। खुजली और अन्य चर्म रोगों में ये बाहरी उपचार की तरह लगाने के काम में लिये जाते हैं।

गेम्बिया के लोग भी इस वनस्पति को सर्व व्याधिनाशक औषधि मानते हैं। शरीर के सभी प्रकार के रोगों में यह स्नान करने के काम में ली जाती है। इसके पत्तों को गरम पानी में उबालकर उस पानी से स्नान किया जाता है। आमवात को दूर करने के लिये यह उत्तम औषधि समझी गई है। सभी प्रकार के ज्वरो में इसके पत्ते रोगियों के शरीर पर मले जाते हैं।

गायना मे इस वनस्पति का हरएक हिस्सा पौष्टिक और ज्वर निवारक माना गया है। इसके ताजा पत्तों को पीसकर घाव और सूजन पर लगाया जाता है। इसमे पौष्टिक गुण होने के कारण ज्वर निवारक औषधियों मे यह क्विनाइन से भी अधिक महत्व की मानी जाती है।

गोल्ड कॉस्ट में इसके पत्तों को नमक और प्याज के साथ पीसकर नारू पर बांध देते हैं। जिससे नारू बहुत जल्दी बाहर निकल आता है। इसके पत्तों को उबालकर उस जल को बच्चों के कृमियों को दूर करने के लिये पिलाया जाता है।

हायकल के मतानुसार इसके पत्ते और बीजों का ज्वर निवारक गुण सभी देशों के चिकित्सा शास्त्रज्ञो के द्वारा स्वीकृत कर किया गया है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वर निवारक, विरेचक और सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है। इसमे एमोडिन (Emodin) ऑक्सिमेथिल एथ्राक्विनान्स (Ozymethyl anthraquinones) और टॉक्सेल बूमिन (Toxal bumin) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प विष में निरुपयोगी है।

उपयोग—

बिच्छू का जहर—कसोदी की जड़ को मुंह मे चबा चबाकर जिसको बिच्छू ने काटा हो उसके कान में बार २ फूंक मारने से विष वेदना शान्त हो जाती है। (जगलनी जड़ी बूटी)

रतोंधी—कसोंदी के ताजा पत्तों को पानी में पीसकर सम भाग गेहू के आटे में मिलाकर, रोटी बनाकर तिल के तेल के साथ खाने से लाभ होता है। इसके पत्ते का रस आख में टपकाने से रतोंधी में बहुत लाभ होता है। (खजाइनुल अदविया)

नारू—इसके पत्तों को नमक और प्याज के साथ पीसकर नारू पर बांधने से नारू बहुत जल्दी बाहर निकल आता है।

घाव—इसके पत्तों को पीसकर ताजे घाव पर लेप करने से घाव फौरन भर जाता है।

दाद—इसकी ताजी जड़ को पीसकर सन्दल या कागजी नीबू के रस के साथ लगाने से दाद में बड़ा लाभ होता है। (मखजनुल अदविया)

गरमी—कसोंदी के पत्ते १० माशे,३ माशे काली मिरच के साथ पानी में पीसकर १ हफ्ते तक रोजाना पिलाने से गरमी की बीमारी में बहुत लाभ होता है।

खांसी—इसके नरम पत्ते की तरकारी बनाकर खिलाने से सूखी और गीली खासी, पेट के कीड़े और दमा नष्ट होते हैं।

साप का जहर—इसकी ३॥ माशे जड़ और १॥। माशे काली मिरच का चूर्ण खिलाने से सांप के विष मे लाभ पहुँचता है।

कामला—इसके २, ३ पत्ते २, ३ काली मिरचो के साथ रोजाना पीसकर पिलाने से कामला रोग में लाभ होता है।

श्वेतकुष्ट—इसको और मूली के बीजो को पीसकर लेप करने से श्वेत कुष्ट में लाभ होता है।

हिचकी—इसके पत्तो का यूष बनाकर पिलाने से हिचकी मिटती है।

कण्ठमाला—इसके पत्तों और काली मिर्चों को पीसकर लेप करने से कण्ठमाला में लाभ होता है।

हूपिग कफ—इसके पत्तों का काढा पिलाने से हूपिग कफ में लाभ होता है।

मृगी—इसके सूखे फलों को पीसकर सूंघने से मृगी के रोगी को लाभ होता है।

बनावटें—

कसोंदी का रस कपूर—रस कपूर को एक महिने तक कसोंदी के रस में खरल करने से वह शुद्ध हो जाता है। इस रस कपूर को १ चावल की मात्रा में दही में मिलाकर दिन में २ बार गरमी के मरीज को देना चाहिये १२ दिन देने के बाद २ दिन दवा बन्द कर देना चाहिये और फिर २ दिन चालू करके फिर दो दिन बन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार १४ दिन तक करने से गरमी या उपदंश का रोग दूर होता है। यह प्रयोग चालू रहे तब तक बीमार को पथ्य मे केवल गेहू की रोटी, भात, दूध, और घी ये ही वस्तुए देना चाहिये। नमक, मिरची, तेल, खटाई, गुड़ वगैरह बिलकुल नहीं देना चाहिये।

प्रवाल भस्म—५ तोला अच्छे बढिया प्रवाल लेकर उनको कसोंदी के पत्ते के सेर भर रस में खरल करना चाहिये। जब सूख जाय तब उसे सराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूक देना चाहिये जिससे अति उत्तम सफेद रग की भस्म तयार हो जाती है। बच्चों के हूपिंग कफ मे इस भस्म को पाव रत्ती से २ रत्ती तक की मात्रा मे देने से अक्सीर लाभ होता है।

कसून्दा

नाम—

लेटिन—Cassia Sophera। हिन्दी—कसून्दा।

वर्णन—

यह कसोंदी का एक छोटा भेद है। कसोंदी से इसकी फलियां कुछ छोटी होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी मत के अनुसार इसके गुण दोष कसोदी के समान ही हैं। वृंदमाधव योग रत्नाकर, भैषज्य रत्नावली और चक्रदत्त के मतानुसार इसके पत्तो का रस कान में टपकाने से बिच्छू के जहर में लाभ होता है।

मद्रास में इसके पत्तों का शीत निर्यास सुजाक की बीमारी में अन्तः प्रयोग के काम में लिया जाता है। उपदंश में बाह्य उपचार की तरह भी इसका उपयोग होता है।

कोमान के मतानुसार इस वनस्पति के पंचाग का काढ़ा कफ निस्सारक है। तीव्र और भयकर खांसी के अन्दर भी यह काढा लाभ पहुँचाता है।

इसकी छाल का सत्व या इसके पीसे हुए बीज मधुमेह रोग में शहद में मिलाकर दिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सर्प दंश में उपयोगी मानी जाती है। इसमें (Emodin) इमोडिन और क्रायसोफेनिक एसिड (Chrysophanic Acid) पाये जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार इसके पत्ते सर्प और बिच्छू के जहर के लिये निरुपयोगी हैं।

उपयोग—

दाद और खाज—इसके पत्तों के रस में चन्दन घिसकर लगाने से अथवा इसकी जड़ व बीजों को गन्धक के साथ पीस कर लेप करने से या इसके पत्तों का रस लगाने से दाद, खाज, इत्यादि त्वचा के रोग और उपदंश की टाकियां आराम होती हैं।

मूत्रातिसार—इसकी छाल के काढ़े में शहद मिलाकर पिलाने से मूत्रातिसार मिटता है।

कृमि—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से पेट के कीड़े मरते हैं।

मूत्रकृच्छ्र—इसके पत्तों को काली मिरच के साथ पीस कर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

कहरवा

नाम—

यूनानी—कहरवा।

वर्णन—

यह एक प्रकार का गोंद होता है। जो बहुत सख्त और चमकदार होता है। हकीम जालीनूस ने इस को हूर नामक वृक्ष का गोंद लिखा है, मगर हूर के गोंद के जो लक्षण उन्होंने लिखे हैं उससे इसके लक्षण नहीं मिलते। किसी २ के मत से यह एक वृक्ष का मद है जो उसके पत्तों से शहद की तरह टपकता है और फिर जमकर इस शकल में हो जाता है। किसी २ के मत से, यह गूगल के पेड़ का मद है मगर

यह बात भी विश्वसनीय नहीं कही जा सकती और भी इसके विषय में यूनानी हकीमो के भिन्न मत हैं जो एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी खास विशेषता यह है कि यह शरीर के किसी भी अंग से होने वाले रक्तश्राव को रोकता है। चाहे वह रक्तश्राव मुंह के रास्ते होता हो, चाहे पेशाब के रास्ते होता हो, चाहे नकसीर के रूप में नाक के रास्ते होता हो। इन सब रोगों में यह एक विश्वसनीय औषधि है। इसके सिवाय यह हृदय को बल देता है। वमन, मिचलाहट, खूनी दस्त, पेचिश, पेशाब की जलन और उसकी रुकावट इन सब रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

इसको पीस कर लेप करने से या जखम पर छिड़क देने से यह जखम को भर देता है। हृदय की धड़कन को भी यह नियमित करता है। आग से जले हुए स्थान पर इसके चूर्ण को पानी में मिला कर लेप करने से शान्ति मिलती है। एलुए के साथ इसको पीस कर बवासीर के मस्से पर लेप करने से मस्से खिर जाते हैं।

इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से सिर का दर्द पैदा होता है और आवाज को नुकसान पहुँचाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिए बनफ्शा और लुआब बेदाना का प्रयोग करना चाहिये।

बनावटें—

कहरवा, बबूल का गोंद, निशास्ता, कतीरा, मग्ज तुख्म खयारेन, मग्ज तुख्म कद्दू, हर एक १० माशे, गुल अनार, अकाकिया, दोनो ५ माशे, इन सब औषधियों को कूट छान कर, इसबगोल के लुआब में मिलाकर टिकियां बनालें। इसकी खुराक ५ माशे तक की है। जिन लोगों के कफ में, वमन में, बवासीर में, मासिक धर्म में, नाक के रास्ते, मतलब यह कि किसी भी मार्ग से तेजी से खून बहता हो उनको यह बहुत मुफीद है।

कंकुष्ठ

नाम—

संस्कृत—कंकुष्ठ। हिन्दी—उसारे रेवन्द। गुजराती—रेवदचीनीनो शीरो! अंग्रेजी—gamboge (गेम्बोज) लेटिन—Garcinia Hanburi (गारसिनिया हंबूरि) (राधा गोविन्द मटेरिया मेडिका) garcinia morella (इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स)

वर्णन—

कंकुष्ठ के विषय में देशी वैद्यों के अंदर काफी मत भेद है। भाव प्रकाश, शालिग्राम निघंटु, इत्यादि निघंटु ग्रंथों में कंकुष्ठ को मुर्दासिंगी माना है, मगर जैपुर के सुप्रसिद्ध वैद्य स्व० स्वामी लक्ष्मी

रामजी और बंबई के सुप्रसिद्ध वैद्य जादवजी त्रिकमजी उसारे रेवंद को कंकुष्ट मानते हैं। प्राचीन ग्रंथों के अंतर्गत रसेंद्रचूडामणि तथा रस रत्नसमुच्चय नामक ग्रथ में कंकुष्ट का वर्णन करते हुए लिखा है :--

"हिमालय की तलहटी के ऊपर के भाग में कंकुष्ट पैदा होता है। इस की दो जातियाँ होती हैं। एक नलिकाकार और दूसरा रेणुकाकार। नलिका कंकुष्ट पोला, भारी और स्निग्ध होता है, यह उत्तम है। रेणुका-कंकुष्ट वजन में हलका, सत्व रहित और कालापन लिये हुए होता है। यह निकृष्ट जाति का होता है। कुछ लोग, तुरन्त के जन्मे हुए हाथी के बच्चे के मल को जो कि काले और पीले रंग का और होता है, उसे कंकुष्ट कहते हैं। कुछ लोग घोड़े के बच्चे की नाल को कंकुष्ट कहते हैं जो कि हलके पीले रंग की और अत्यन्त रेचक होती है। मगर ये दोनों ही बातें गलत हैं। कंकुष्ट रस में तीखा, कड़ुआ उष्ण-वीर्य, तीव्ररेचक और व्रण, उदावर्त, शूल, गुल्म, प्लीहा-वृद्धि और अर्श का नाश करने वाला होता है। यह कंकुष्ट स्वयं सत्व रूप होने से इसके सत्व पातन की विधि शास्त्र में नहीं बतलाई गई है।

आयुर्वेद प्रकाश में भी यही मत दिया गया है। मूल सुश्रुत के अन्दर कंकुष्ट शब्द केवल एक स्थान पर मिलता है। मगर सुश्रुत के टीकाकारो ने उसमें आये हुए स्वर्णक्षीरी, हेमक्षीरी, कनकक्षीरी, आदि शब्दों का अर्थ कंकुष्ट किया है। इसी प्रकार वाग्भट्ट के टीकाकारों ने भी स्वर्णक्षीरी, कनकक्षीरी, इत्यादि शब्दो का अर्थ कंकुष्ट ही किया है। इससे पता चलता है कि सब टीकाकारों ने स्वर्णक्षीरी को ही कंकुष्ट माना है। इससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि वे लोग कंकुष्ट को वनस्पति विशेष ही मानते थे, मुर्दासिंगी की तरह खनिज-द्रव्य नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि उस समय जिस वस्तु को स्वर्णक्षीरी लिखा गया है, वह वस्तु वास्तव में क्या है? आजकल के लोग, स्वर्णक्षीरी सत्यानाशी या पीले धतूरे को मानते हैं। मगर आज से एक हजार वर्ष पहिले रेवन्द चीनी को ही स्वर्णक्षीरी माना जाता था और इसी कारण धनवन्तरि निघण्टु और राजनिघंटु में उसे स्पष्ट "हिमाद्रिजा" लिखा है। सत्यानाशी तो भारतवर्ष मे सर्वत्र होती है, मगर रेवन्दचीनी केवल हिमालय और हिमालय के उत्तर प्रदेश में होती है। इसलिये "हिमाद्रिजा" शब्द रेवन्दचीनी ही के लिये अधिक उपयुक्त होता है। सत्यानाशी में काटे और पीले फूल होते हैं। मगर स्वर्णक्षीरी के विवेचन मे काटे और पीले फूलो का पर्यायवाचक कोई नाम नहीं पाया जाता। इससे मालूम होता है कि प्राचीन-काल में रेवेन्दचीनी को ही स्वर्णक्षीरी माना जाता था। हां, राजनिघंटु मे एक दूसरे प्रकार की स्वर्णक्षीरी का और वर्णन पाया जाता है, सम्भव है कि वही सत्यानाशी हो।

क्षीरिणी कांचनक्षीरी कर्षणी कटुपर्णिका। तिक्त दुग्धा हैमवती हेम दुग्धा॥
हिमाद्रिजा पीतदुग्धा यवचिचा हिमोद्भवा। हैमीच हिमजा चेति चतुरेक गुणाह्वया॥
अन्या स्वर्णक्षीरी स्वर्णदुग्धास्वर्णाह्वा रुक्मिणी तथा।
सुवर्णा हेमदुग्धा च हेमक्षीरी च कांचनी॥"
(राजनिघंटु पर्पटादिवर्ग)

सुश्रुत के चिकित्सा स्थान में भी २ प्रकार की काचन क्षीरी सुश्रुत ने लिखी है। इससे मालूम होता है कि एक स्वर्ण क्षीरी, रेवद चीनी और दूसरी सत्यानाशी होना चाहिये।

इन सब दलीलों के साथ बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्यराज जादवजी त्रिकमजी आचार्य ने यह तथ्य निकाला है कि जहा पर कंकुष्ट का वर्णन आया हो वहा उसे "उसारे रेवन्द" समझना चाहिये और जहा स्वर्ण क्षीरी का वर्णन आया हो वहा उसे प्रसग के अनुसार रेवन्दचीनी अथवा सत्यानाशी समझना चाहिये।

उसारे रेवन्द पर डाक्टरी मत—डाक्टर राधा गोविन्दकर, एल० आर० सी० पी० अपनी मटेरिया मेडिका में लिखते हैं कि इस वनस्पति को अग्रेजी में gamboge और लेटिन में garcania Hanburu कहते हैं। उसारे रेवन्द इस वृक्ष में से उत्पन्न होने वाला गोंद और राल का मिश्रण है। यह चीन, ब्रह्मदेश, भारतवर्ष और सीलोन में पैदा होता है। इस वृक्ष की कोमल शाखा और पत्तों को तोड़ने से उसमें उजला पीले रंग का दूध निकलता है। इसको बास की नली मे सग्रह करके सुखाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है। एक नलिकाकार और दूसरा पिंडाकार। नलिकाकार को पाइप गेम्बोज और पिडाकार को केक गेम्बोज कहते हैं। यह कठिन, उजला, पीले रंग का गंध रहित और अग्नि में जलने वाला होता है। इसमें ७० से ७६ प्रति सैकडा राल और गोंद रहता है। इसकी मात्रा आधी ग्रेन से दो ग्रेन तक की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीव्ररेचक और कृमि नाशक होता है। इससे विरेचन, वमन, घबराहट और पेट में वेदना होती है। किसी क्षार के साथ मिलाकर देने से यह पेट के दर्द को दूर करता है। रजस्वला स्त्री और जिनके आमाशय में दाह हो उनको यह नुकसान दायक है। (राधा गोविन्द मटेरिया मेडिका)

आयुर्वेदिक मत— रस रत्न समुच्चय के मतानुसार कंकुष्ट रस में तीखा, कड़ुवा, उष्णवीर्य, तीव्र, रेचक और वृण, उदावर्त, शूल, गुल्म, प्लीहा वृद्धि और अर्श का नाश करने वाला होता है। एक जौ के बराबर मात्रा लेने से यह कब्जियत को दूर करता है। इसका जुलाब देने से आमज्वर का शीघ्र नाश होता है। अगर इसके अधिक उपयोग से उपद्रव हो तो बबूल की जड़ के क्वाथ में जीरा और टंकण क्षार (सुहागा) देने से इसके उपद्रव शान्त होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह आमाशय और यकृत के तमाम दोषों को वमन और विरेचन के द्वारा शुद्ध करता है। जलोदर, कामला, पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप, श्वास और खासी में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसका गुलकन्द और बदाम के तेल के साथ मिला कर देने से इसकी उग्रता कम हो जाती है।

कंकर

नाम—

संस्कृत—काकचेदि, पप्पान, पापट, तिरियक फल। हिन्दी—कंकर, पापरी। बंगाली—[illegible]

चर, छुइ। मराठी--पापड़ी। बम्बई—पापट। कनारी--पावटी। तामील—अरणनियाँ, करनई, कडु-करनई। तेलगू—दुइपपट, मंजिपपट। लेटिन--Ixora Paniculata. (इक्सोरा पेनीक्यूलेटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष की पहाड़ी जमीन पर तथा सीलोन मलाया प्रायः द्वीप, दक्षिणी चीन और उत्तरी आस्ट्रेलिया में पैदा होती है। यह एक झाड़ीदार वृक्ष होता है। इसकी बाहरी छाल पतली, मुलायम, पीली और काग़जी होती है। इसके पत्ते झिल्लीदार और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल सफेद और सुगंधित रहते हैं। इसका फल गोल, काला और मुलायम होता है।

औषधि प्रयोग में इसके जड़ की छाल और पत्ते काम में आते हैं। इसकी मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ कड़वी और मृदु विरेचक होती है। इसकी जड़ का चूर्ण सोंठ और चांवल के पानी के साथ मिलाकर जलोदर की बीमारी में दिया जाता है। इसके पत्तों को जल में उबाल कर, खूनी बवासीर का सेंक करने से शान्ति मिलती है।

इण्डो चायना में इसकी लकड़ी का शीत निर्यास गठिया की बीमारी में दिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पति की जड़ में एक प्रकार का कड़वा ग्लुकोसाइड पाया जाता है, जो गोंद की तरह पारदर्शक होता है। यह बहुत प्रभावशाली तत्व है। यह सेलीसिन (Salicin) से बहुत मिलता जुलता होता है। यह जल में कुछ २ घुलता है मगर अलकोहल में पूरी तरह से घुल जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मृदु विरेचक है। यह जलोदर की बीमारी में काम में ली जाती है। इसमें ग्लुकोसाइड्स पाये जाते हैं।

काई

नाम—

संस्कृत—शेवाल। हिन्दी—काई, शेवाल। सिंध—शेवाला। मराठी—शेंवर। अरबी—तहल्लिब। लेटिन—Vallisneria Spiralis व्हेलिसनेरिया स्पायरेलिस।

वर्णन—

यह उस हरियाली का नाम है जो रुके हुए पानी पर हरी २ जम जाती है, जिसकी वजह से पानी गन्दला भी हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। समुद्र में पैदा होने वाली काई गर्म और खुश्क होती है। किसी स्थान से अगर खून बहता हो तो इसका लेप लगाने से या जौ के

आटे के साथ इसको मिलाकर चिपका देने से बन्द हो जाता है। गरमी की वजह से होने वाले सूजन में और बच्चों की अण्ड वृद्धि में भी यह बहुत मुफीद है।

अगर किसी के गले में जोंक चिपट जाय तो काई को जेतून के तेल में गरम करके पीना चाहिये और उसके ऊपर गरम पानी पीकर कै कर देना चाहिये जिससे जोक बाहर चली आयगी।

✓ काई का चूर्ण ३ माशे रोज कई दिनों तक लेने से औरत के सन्तान होना बन्द हो जाती है। सूखी कांजी के चूर्ण को लेने से बच्चों के हरे पीले दस्त आना बन्द हो जाते हैं।

आयुर्वेद के मत से काई ठण्डी, हजम होने में हलकी, चिकनी होती है। यह प्यास, बुखार की खुश्की और गर्मी के जखम को मिटाती है।

उपयोग—

✓ *वीर्य का पतलापन*—काई को एक मिट्टी के ठीकरे में भर आग पर चढ़ाकर भस्म कर लेना चाहिये। उस भस्म में बराबर की मिश्री मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को ४ माशे की मात्रा में रोजाना लेने से वीर्य का पतलापन और प्रमेह मिटता है।

सुजाक—काई को निचोकर उसका पानी मूत्रेन्द्रिय के छेद में टपकाने से घाव भर जाता है।

काकजंघा

नाम—

संस्कृत—काकजंघा, काकाचि, काकांगी, ध्वांक्षजघा, सुरपदी, काकनासिका, इत्यादि। हिन्दी—काकजघा, मसि। मराठी-कागा चे झाड। गुजराती—अघेड़ी। बंगाली—काकजंघा। तेलंगी-नाला दुन्चिणीके। लेटिन—Leea Hirta (लीआ हिरटा), Leea Acquata (लीआ एक्वेटा)

वर्णन—

यह औषधि सिकिम, हिमालय, पूर्व बंगाल, सिलहट, बरमा, खासिया पहाड़, अण्डमान, मलाया प्रायःद्वीप, सुमात्रा और जावा में पैदा होती है। यह एक छोटी क्षुप जाति की वनस्पति होती है जो १·२ से लगाकर ३ मीटर तक ऊँची होती है। इसके पत्ते ७·५ सेंटीमीटर से १८ सेंटीमीटर तक लम्बे और २·५ से लगाकर ४·५ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। ये हरे, काले रंग के, गोलाकार, तीखी नोक वाले और रुएँदार होते हैं। इसके फूल छोटे २, सफेद और काले रंग के होते हैं। इसका फल पकने पर काला हो जाता है। इसकी शाखाएँ गाँठदार होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, कसैली, गरम और चरपरी होती है। यह कृमि नाशक, व्रण पूरक, ज्वर निवारक और विष नाशक होती है। यह वायुनलियों के प्रदाह में, चर्म की निसंज्ञ स्थिति पर, अग्नि मांद्य पर, पित्त जनित ज्वर में, कुष्ट रोग में, खुजली में और क्षय रोग जनित व्रणों पर बहुत ही लाभजनक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से सर्द और तर है। यह औषधि कफ को निकालती है। फोड़े फुन्सी को नष्ट करती है। गहरे जखम को भरती है। "तज़ किरतुल हिन्द" नामक पुस्तक में लिखा है कि एक आदमी को एक प्रकार का कुष्ट हो गया था, जिससे उसका सारा बदन तांबे की तरह लाल हो गया था और उसे बड़ी तकलीफ थी। उसको काकजंघा का शीरा तीन तोले से शुरू करके १॥ पाव तक खिलाया गया और शरीर पर कुट्ठ तुम्बी के बीजों का तेल मालिश किया गया जिससे उसको बहुत जल्दी आराम हो गया।

हकीम अब्दुल कासिम का कहना है कि अगर किसी को कच्चा पारा या रस कपूर के खाने से नुकसान पहुँचे तो उसको काकजंघा का शीरा ७।८ काली मिरचों के साथ देना चाहिये। एक दफ़ा मेरे पास एक मर्द और एक औरत आई और बयान किया कि हमने पारे की भस्म खाई थी, उसने बहुत नुकसान दिया। उनका तमाम शरीर लाल हो गया था। दोनो के चेहरे पर सूजन आ गई थी और मुँह में इतने छाले थे कि बात करना मुश्किल थी। मैंने अपने आदमी से काकजघा मगाकर उनको देदी और उसे पीने की सीधी तरकीब बतलादी। १४ दिन में उनको बिलकुल आराम हो गया।

हकीम शेख रईस का कथन है कि काकजघा की जड़ पुराने दस्तों को बन्द करती है। पेट का दर्द मिटाती है। दस्तो को रोकने के लिये यह बहुत ही प्रभावशाली है। एक व्यक्ति को २० साल से दस्त जारी थे। सो वे इसके इस्तेमाल से बन्द हो गये।

उपयोग—

काकजघा रसायन—काकजंघा की डाली, पत्ते और जड़ तीनों को कुचल कर रस निकाल लेना चाहिये। फिर उस रस को धीमी आंच पर इतना औटाना चाहिये कि उसके दो हिस्से जल जाय और वह गाढ़ा हो जाय। फिर उसे एक बर्तन में रख कर धूप में रख देना चाहिये। जब मोम की तरह वह जम जाय तब उसकी टिकिया बना कर डोरे में पिरो लेना चाहिये। इन टिकियाओं को पानी में गलाकर गठिया पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

श्वेत प्रदर—इसकी जड़ को चांवलों के पानी के साथ पीस कर पीने से श्वेत प्रदर मिटता है।

कफ़ का प्रदर—इसकी जड़ के रस में लोद का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से कफ का प्रदर मिटता है।

काकंज

नाम—

संस्कृत—हेमन्तफल, राजपुत्रिका। हिन्दी—काकंज, पपूटन। अरबी—काकज। यूनानी—कचूगन, अरुसक-पास-इ-परदा। लेटिन—Physalis Alkekenji (फिसेलिस अलकेकेंजी)

वर्णन—

यह वनस्पति मकोय की एक उपजाति है। इसके पौधे हाथ भर से लेकर दो, ढाई हाथ लम्बे होते हैं। इसकी शाखाएँ नाजुक होती हैं। पत्ते नरम, चिकने और नोकदार होते हैं। ये हलके हरे रंग के होते हैं। इसके फूल खुबसूरत, बनफशी और सफेद रंग के होते हैं। इसके फल छोटे २ लाल रंग के बेरों की तरह होते हैं। औषधि के प्रयोग में विशेष कर इसका फल ही काम में आता है।

यूनानी मत से इसकी तीन जातियां होती हैं। पहली बस्तानी, दूसरी पहाड़ी और तीसरी जंगली।

गुण धर्म और प्रभाव —

(१) *कांकज बस्तानी (यूनानी मत)*—यूनानी मत से इसकी बस्तानी जाति मूत्रल, कृमिनाशक और जलोदर रोग में मुफीद होती है। इसके रस को कानो में टपकाने से फुन्सिया जाती रहती हैं। इसकी जड़ को घिस कर, उसमें कपड़े को तर कर बत्ती बनाकर नासूर में रखने से नासूर मिट जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पति में दो प्रकार के अलकेलाइड्स पाये जाते हैं जो पानी में घुलनशील नहीं होते। इसमें डलकेमारिन और ग्लुकोसाइड भी पाये जाते हैं।

(१) *काकंज पहाड़ी*—इसको यूनानी में काकंज मनूम व अम्बुस सालिम मनूम भी कहते हैं। इसके पत्ते सेब और बीही के से होते हैं। इसके फूल काले रंग के होते हैं। इसके फल गुच्छों में लगते हैं। यूनानी मत से यह वनस्पति शरीर को सुन्न करने और नींद लाने का काम करती है। यह एक नशीली वस्तु है। इसको ४ माशे की मात्रा में खाने से नींद आ जाती है। इससे ज्यादा मात्रा में खाने से पागलपन पैदा हो जाता है। इसके बीज मूत्रल और गुर्दे तथा मसाने को साफ करने वाले होते हैं। ये स्वप्नदोष को भी बन्द करते हैं। मगर अधिक मात्रा मे खाने से जहरीले हो जाते हैं।

(३) *काकंज जगली*—यह काकंज पहाड़ी से भी अधिक जहरीली होती है। इसको ४ माशे की मात्रा में खाने से बहुत नशा आता है। यहा तक कि पागलपन पैदा हो जाता है। १॥ तोले की की मात्रा में खाने से जबान खुश्क हो जाती है। हिचकी आने लगती है, थूक, वमन और दस्त में खून आने लगता है और आखिर में आदमी मर जाता है। इसके जहर को नष्ट करने के लिये शहद पिलाना चाहिये तथा दूध, अनिसून और शहद के पानी से वमन कराना चाहिये।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि अजवायन खुरासानी, मकोय और चिलगोजा है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार काकंज, आनुलोमिक, उत्तम मूत्र निस्सारक और वेदना नाशक है। वस्तिशोथ, सुजाक और मूत्रेन्द्रिय के अन्य विकारों में इसका प्रयोग करने से अधिक पेशाब होकर शान्ति प्राप्त होती है। चर्म रोग और जीर्ण आम वात में इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से लाभ होता है।

काकजेंबू

नाम—

संस्कृत—काकजेंबू। मलयालम—अतुकनिला। तामील—वेलीकाया। कनाड़ी—उदि-देलि। लेटिन—Memecylon Angustifolium (मेमीसीलोन एंगस्टी फोलियम)

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण हिंदुस्तान और सीलोन में पैदा होती है। यह एक प्रकार की छोटी झाड़ी होती है। इसकी ऊंचाई १·८ से २·४ मीटर तक होती है। इसकी शाखाएं सीधी और नाजुक रहती हैं। इसके पत्ते ५ से लगाकर ७·५ सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। ये बरछी के आकार के रहते हैं। ये ऊपर से चमकीले और नीचे से फीके रंग के होते हैं। इसके फूल बहुत नाजुक पुष्पवृन्त पर लगे हुए रहते हैं। इसका फल छोटा रहता है। यह आकार में ४ मिलीमीटर का होता है। इसका रंग काला और बैंगनी होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका छिलका पौष्टिक, ज्वरोपशामक और तृषा निवारक औषधि की तौर पर काम में लिया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसका छिलटा पौष्टिक और शीतल है।

कांकड़

नाम—

हिन्दी—काकड़, केकर, घोगर; खरपट। अलमोड़ा—तितमेर। बंगाली—दबदबे, जूम, नीलभादि। बोम्बे—कांकड़, कुंगुर, पुरक। गुजराती—कंकोड़, कुसिम्ब। काठियावाड़—करंठी। कुमाऊ—कटुला, खरपट, किलमिरा। पंजाब—करपड़, कटुला। तामील—करुवेम्बु। तेलगू—गरुगा-चेट्टू। लेटिन—Garuga Pinnata (गेरुगा पेनेटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति कर्नाटक और बरमा में बहुत पैदा होती है। इसकी पत्तियां ६ से लगाकर १० तक के जोड़े में रहती हैं। ये बरछी के आकार की होती हैं। इसका फल काला और दलदार होता है। इसका जायका खट्टा होता है। इसका गोंद पीला और पारदर्शक होता है। यह गोंद अलकोहल में घुलनशील नहीं होता। इसकी छाल का रस चिकना और सुगन्धित होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति शीतल और पाचन होती है। इसकी छाल स्तम्भक होती है। इसके फलों का मुरब्बा और अचार डाला जाता है जो शीतल और अग्निदीपक औषधि की तरह काम में आता है। इसके

पत्तो का रस, अडूसे के पत्ते, निगूंडी और सुरस वृक्ष के रस के साथ में शहद मिलाकर दमे की बीमारी में देते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह अग्नि वर्धक, संकोचक और दमें के रोग मे लाभ दायक है।

काकड़ासिंघी

नाम

संस्कृत—कर्कट श्रंगी, चक्र, चक्रंगी, चन्द्रस्पद, घोषा, कर्कटी, कुलिगी, महाघोष, वक्र, विशानिका। हिन्दी—काकड़ासिंगी, काकड़ा। पंजाब—सुमक, द्रेक, काकर, काकरेईं, काकरा, काकरेन, इत्यादि। बंगाल—काकड़ा। गुजराती—काकड़ा। मराठी—काकड़ा। गढ़वाल—काकर। कुमायू—काकड़ा। काश्मीर—द्रेक, गुरगू, काकर। उर्दू—काकरा। लेटिन—Pistacia Integerrima पिस्टेसिया इ टेजेरिमा।

वर्णन—

यह वनस्पति पंजाब और सीमाप्रान्त में विशेष रूप से पैदा होती है। इसका वृक्ष ४० फीट या इससे भी कुछ ज्यादा ऊँचा होता है। इसके तने की गोलाई ८।९ फीट तक और कभी कभी १२।१४ फीट तक की देखी जाती है। इसकी छाल का रंग सफेद होता है। इसकी छोटी डालियाँ खाकी या कुछ भूरे रंग की होती हैं। इसकी ६ से ६ इ च लम्बी सींक पर ४।५ चौड़े पत्तों के जोड़े लगते हैं। इन पत्तों के ऊपर कुछ पित्त कोष से निशान पाये जाते हैं, जो दूर से सींगो की तरह दिखलाई देते है। ये सींग (galls) आकार में भिन्न २ होते हैं। ये वास्तव में इस वृक्ष के अग नहीं होते वल्कि इन्हे इस वृक्ष पर रहने वाला एफिस नामक कृमि वनाता है। ये दीखने में हलके, हरे और वादामी रग के नजर आते हैं। इनको फोड़ने पर ये लाल रग के दिखाई देते हैं और इनमें उन कृमियो का मल भी रहता है। इनको पीसकर चखने पर इनका स्वाद कड़वा मालूम होता है। ये सकोंचक होते हैं और इनमें तारबीन के तेल की तरह गन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—काकड़ासिंगी कड़वी, गरम और तिक्त होती है। यह पचने मे भारी रहती है। यह कृमि नाशक, पौष्टिक, कफ निस्सारक, और वात को दूर करने वाली होती है। यह कफ, श्वास, हिचकी, पेचिश, रक्त विकार, पित्त, ज्वर, वायु नलियों का प्रदाह, क्षय, वमन, प्यास, मूर्छा, मुख का खराब स्वाद और क्षय रोग सम्बन्धी वृणो में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे मे खुश्क होती है। यह हर तरह की खासी, दमा, हिचकी, वमन और खूनी दस्तों को बन्द करती है। कफ के उपद्रवों को दूर करती है। प्यास को मिटाती है। जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। क्षय रोग में लाभ दायक है। ववा-और वायु गोला को भी फायदा पहुँचाती है। मेदे को ताकत देती है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण करने पर इस वनस्पति में निम्न लिखित द्रव्य पाये गये।

(१) इसेंशिअल आइल (Essential oil.) १.२१ प्र० श०

(२) क्रिस्टालिन हाइड्रो कारबन (Crystalline Hydrocarbon) ३.४ प्र० सै०

(३) टेनिन सब्स्टेंस (Tannine substance.) ६० प्रति सैंकड़ा।

(४) गम मेस्टिक (Gum Mastic) ५ प्रति सैंकड़ा

इसमें से इसेशियल आइल जो कि बाष्प क्रिया द्वारा निकाला जाता है हलके हरे, पीले रंग का होता है। इसमें तारपीन सरीखा स्वाद और सुगन्ध रहती है। इसमे पाये जाने वाले टेनिन्स पीले रंग के रहते हैं।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि काकड़ासिंगी आयुर्वेदीय, चिकित्सा शास्त्रों में कई वर्षों से कफ में क्षय और खांसी की उपयोगी औषधि मानी गई है। इसकी साधारण मात्रा २० ग्रेन की है। यह शान्ति दायक एवम् सुगन्धित पदार्थों के सम्मेलन में दी जाती है। यूनानी हकीम इसे फुफ्फुस की तकलीफों में, रक्तातिसार में और वमन मे उपयोगी मानते हैं। यूरोपियन लेखक भी इस वस्तु का उल्लेख करते हैं, किन्तु इसके गुणों के विषय में उन्होंने कोई विशेष बात नहीं कही।

फुफ्फुस की पीड़ाओं में यह अवश्य ही लाभजनक है। इसका कारण यह है कि इसमें इसेंशियल आइल काफी मात्रा मे मौजूद है। इसमे पाये जाने वाले टेनिन्स भी अपना संकोचक गुण दिखलाते हैं, किन्तु यह पाया जाता हैं कि इस वस्तु की प्रशंसा आवश्यकता से अधिक की जा रही है। इसे टरपेन्टाइन जाति के संकोचक पदार्थों में शरीक किया जा सकता है, मगर ब्रिटिश फरमाकोपिया में सम्मत अन्य कफनिस्सारक औषधियों की तुलना मे यह अधिक लाभजनक नहीं है।

सुश्रुत के मतानुसार यह वस्तु अन्य औषधियों के साथ सर्प और बिच्छू के ज़हर को दूर करने के काम मे ली जाती है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कफ रोगों के लिये काकड़ासिंगी बहुत उपयोगी वस्तु है। इस वस्तु के सेवन से श्वास नलिका की नवीन और प्राचीन सूजन नष्ट हो जाती है। जमा हुआ कफ निकल जाता है और नया कफ पैदा नहीं होता। इपिकोना से भी कफ निकलता है, मगर नवीन कफ पैदा नहीं होता। श्वास-नलिका की श्लेष्म त्वचा पर इपिकोना की अपेक्षा काकड़ासिंगी का असर अधिक प्रभावशाली होता है। श्वास नलिका को सूजन से जो शिथिलता उत्पन्न हो जाती है और जिससे खांसी होती है, वह काकड़ासिंगी के सेवन से बन्द हो जाती है।

आमाशय की दाह से जो उल्टी, हिचकी और अतिसार पैदा होते हैं, उसमे काकड़ासिंगी काफी लाभ पहुँचाती है। बड़े मनुष्यों की अपेक्षा छोटे बच्चों के लिये यह औषधि और भी प्रभावशाली है।

वगसेन के मतानुसार यह वस्तु समान भाग, मूली के वीज, शहद और घी के साथ में बच्चों की आक्षेपजनक खांसी में उपयोगी होती है।

उपयोग —

खांसी— काकड़ा सिंगी और कटेरी को औटा कर पिलाने से खासी दूर होती है।

बदहजमी—काकड़ासिंगी और पीपर को पीसकर चटाने से हाजमें की कमजोरी दूर होती है।

आंव के दस्त—इसके सवा माशे चूर्ण को मलाई के साथ चटाने से आव के दस्त वंद हो जाते हैं।

दमा—इसको और कायफल को शहद के साथ चटाने से दमे में लाभ होता है।

अतिसार—बेलगिरी के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से अतिसार मिटता है।

बालरोग--काकड़ासिंगी, अतीस और नागर मोथा, इन तीनो को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को ४ रत्ती से ८ रत्ती की मात्रा में बच्चों को देने से ज्वर, अतिसार, खासी, दांत निकलने के समय के उपद्रव, इत्यादि सब नष्ट होकर बच्चा हृष्टपुष्ट और तन्दुरूस्त रहता है।

काकड़ासिंगी नकली

नाम —

हिन्दी— काकड़ासिंगी नकली। बंगाल— काकड़ासिंगी। पंजाब--होलारि,होलासिंग, रिखुल, काकरिम, चोकलू। नेपाल—रनिबलाई। संयुक्त प्रान्त--अरखोल। तामील—करकड़ गचिंगी। तेलगू—करकर श्रंगी। लेटिन—Rhus-Succedania (रस सेसीडेनिया)

वर्णन —

यह औषधि काश्मीर से लगाकर सिकिम तक के समशीतोष्ण प्रान्तों में ३००० से ६००० फीट की ऊंचाई तक तथा भूटान और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है जो ३० फीट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते और इसकी शाखाऐं मुलायम रहता हैं। इसकी डालियों पर ६ से १२ इन्च तक लम्बी सींकों पर पत्तों के ३ से लेकर ६ तक जोडे लगे रहते हैं। इसके पत्ते बरछी के आकार के और ४ इन्च लम्बे होते हैं। इसके फूल इसके पत्तों से करीब आधे लम्बे होते हैं। इसका फल दबा हुआ, चमकीला और हलके बादामी रंग का होता है। इसमें एक किस्म का राल की तरह गोंद भी लगता है।

गुण दोष और प्रभाव —

यूनानी मत से इसके दरख्त का दूधिया रस बहुत दाहक होता है। इसको चमडे पर लगाने से फफोले उठ जाते हैं। हकीम लोग इसको असली काकड़ासिंगी के बदले में इस्तेमाल करते हैं।

जापान के लोग इसके फलों को निंबोली के साथ कूट कर, उबाल कर, सांचे में दबाकर एक किस्म का मोम निकालते हैं जो जापान वेक्स के नाम से मशहूर है और जिसकी मोम बत्तिया बनाई जाती हैं।

काश्मीर में इसका फल क्षय रोग की बीमारी के लिये काम में लिया जाता है।

कोमान के मतानुसार इसकी शाखाओं पर पाई जाने वाली काँटे सरीखी वस्तु रक्तातिसार और आमातिसार से आक्रान्त बच्चों को दी जाती है। एक उत्तम सकोचक औषधि मानी गई है। इस वस्तु के इस्तेमाल से बहुत बीमार दुरुस्त हो गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके और असली काकड़ा सिंगी के गुण समान हैं।

काकतुण्डी

नाम—

संस्कृत—काकतुण्डी, रक्तपुष्पा, दुग्धच्छुप, वनपिचुल। हिन्दी—काकतुण्डी, कौवाडोड़ी। पंजाब—काकतुण्डी। बम्बई—काकतुण्डी, कुरकी। लेटिन—Asclepias Curassavica एसक्लेपिअस कुरेसेविका)

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की बहु वर्ष जीवी वनस्पति होती है। इसके पत्ते कनेर के पत्तों की तरह पतले, झिल्ली दार और दोनों किनारों पर तंग होते हैं। इसके फूल नारंगी रंग के होते हैं। इसका पत्र वृन्द २.५ सेन्टिमिटर लंबा रहता है। इसकी पुष्प कटोरी २.५ मिली मीटर लम्बी होती है। इसका डोड़ा ७.५ से १० मिली मीटर तक चौड़ा होता है। इसके बीज गोल, गहरे बादामी और ५ मिली मीटर लम्बे होते हैं। इसकी जड़ें बारीक और गुच्छे दार होती हैं। इनका स्वाद कड़वा और तीखा होता है। औषधि में इसकी जड़ और फूल काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि की क्रिया शरीर के अंदर इपिकेकोना (इमेटिन) की तरह होती है। इसी प्रकार आक (मदार) की जड और काकतुण्डी की जड़ की क्रिया भी करीब २ एक ही समान होती है। यह औषधि वमन कारक और रक्तश्राव को रोकने वाली है। इसके सेवन से रक्त वाहिनी शिराओं का संकोचन और मोटी धमनियों का विकास होता है। हृदय पर यह अवसादक असर करती है। छोटी मात्रा में यह आमाशय और यकृत को उत्तेजना देने वाली पित्त श्रावक, स्वेदजनक, कफघ्न और बड़ी मात्रा में वमन कारक, कृमिघ्न और आनुलोमिक होती है। इसकी जड़ का चूर्ण पाव रत्ती से १ रत्ती तक कफ निकालने के लिये और ७ रत्ती से १५ रत्ती तक उल्टी होने के लिये दिया जाता है।

इसकी जड़ों का उपयोग इपिकेकोना के बदले में किया जाता है। रक्तश्राव बन्द करने के

लिये भी यह उपयोगी होती है। इसके पत्तों या फूलों को पीस कर लेप करते ही जखम से बहने वाला खून बन्द हो जाता है। इसमें से निकलने वाले दूध को जखम या व्रण पर लगाने से वह सूख जाता है।

श्वास नली के नवीन अथवा प्राचीन सूजन में इसकी जड़ को देने से कफ पतला होकर निकल जाता है और सूजन कम हो जाती है।

गायना में इसकी जड़ वमन कारक और विरेचक समझी जाती है। धवल रोग में इन्जेक्शन द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।

गोल्डकास्ट में इसके पत्ते और फूल घावों के इलाज में काम मे लिये जाते हैं। यह वनस्पति क्षय रोग में भी उत्तम मानी गई है। बवासीर और सूजाक में भी यह लाभ दायक मानी गई है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वमन कारक और रक्तश्राव रोधक है। इसमें ग्लुको-साइड (Glucoside) एस्क्लेपिएडिन (Asclepiadin) और विन्सेटाक्सिन (Vincetoxin) पाये जाते हैं।

काकतेंदू

नाम –

संस्कृत—काकतिंदुक, काकेन्दु, दीर्घपत्रक, जलजा, काकवीजक, इत्यादि। हिन्दी—तेंदू काकतेंदू, मकर तेंदुआ, टेमरू, इत्यादि। बड़ोदा—टेमरण। बम्बई—टेमरू, तिवरणी, टुमरी। गुजराती-टमरुण, टिबरनी, ठूमरी, टमरुजा। मराठी—टेमरू, तेंदू, काकतिवरनी। तामील—करई, करून्दुम्बी। तेलगू—मजिगट, नलतुमिकी। उर्दू—आवनूस। फारसी—आवनूस। अरबी—आवनूस। लेटिन—Diospyros Melanoxylon. (डिओस पायरस मेलेनोक्झिलोन)।

वर्णन--

यह वृक्ष मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, बिहार, पश्चिमीय प्रायः द्वीप और सीलोन के जंगलों में होता है। यह आवनूस की जाति का ही एक वृक्ष होता है। यह मध्यम श्रेणी का वृक्ष है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की अथवा काली रहती है। इसकी कोमल डण्डियों पर रुआँ रहता है। इसके पत्ते ६.२ से १५ सेण्टिमीटर तक लम्बे और २.५ से ७ सेण्टिमीटर तक चौड़े होते हैं। इनकी नोक तीखी रहती है। इन पत्तों के पीछे ६ से लगाकर १० तक नसें रहती हैं। इसका फल टीमरू की तरह ही होता है। इसमें २ से लगाकर ८ तक गुटलियां रहती हैं। ये टीमरू की गुटलियों की तरह ही चमकती हुई होती हैं।

औषधि प्रयोग में इसकी छाल ही विशेष रूप से काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल कड़वा, कसैला, शीतल, पचने में हलका, चरपरा, मल रोधक, और आंतों को सिकोड़ने वाला होता है। पकने पर यह पित्त और वात को दूर करता है।

यूनानी मत— यूनानी मत से इसके पत्ते मूत्रल, पेट के आफरे को दूर करने वाले, मृदु विरेचक, और रक्तस्राव रोधक होते हैं। ये नकसीर और रतोंधी में फायदा पहुचाते हैं। नेत्रों की ज्योति को सुधारते हैं तथा चक्षुरोग, केशरोग, दाह, खुजली, पुराने घाव और क्षय की ग्रंथियों में लाभदायक हैं। इसके सूखे हुए फूल कामोद्दीपक, रक्त वर्धक, मूत्रल और श्वेत प्रदर में लाभदायक है। मूत्रकृच्छ्, तिल्ली के प्रदाह, खुजली, रतोंधी और रक्ताल्पता में भी यह लाभदायक है।

इस वृक्ष की छाल संकोचक होती है। इस छाल का काढा शिथिलता प्रधान मन्दाग्नि, रक्तातिसार और जीर्ण आम में पौष्टिक वस्तु के बतौर दिया जाता है। इसके छाने हुए जल से आंखे धोने से नेत्राभिष्यन्द रोग में फायदा होता है।

हानिग्बरगर के मतानुसार हकीम लोग इसके चूर्ण को चक्षुपटल के व्रणों को दूर करने के काम में लेते हैं। इसकी छाल को कालीमिरच के साथ मिलाकर पेचिश के बीमारों को पिलाई जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु अतिसार और अग्निमांद्य में उपयोगी तथा पौष्टिक है।

काकनज (पनीर)

नाम —

हिन्दी— आकरी, बिनपुतका, पनीर, काकंज । बम्बई—काकंज । बंगाली—अश्वगन्ध । पंजाब— खाम जारिया, खमजीरा, कुटिलाना। सिंध— पनीरबन्द । तामील—अमुकुरा । तेलगू - पनेरूगदा । फारसी— काकजेहिन्दी, काकुनबा, पनीरबन्द । अरबी— काकजेहिन्द, जबबुल मिजाज । उर्दू—काकंज । लेटिन—Withania Coagulans (विठेनिया कोएगुलंस) ।

वर्णन —

यह वनस्पति पंजाब, सतजल का किनारा, सिंध, बिलोचिस्तान और अफगानिस्तान में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसकी शाखाओं पर भूरा और पीला रुआं रहता है। इसके फूल गुच्छों में होते हैं। इसके फल छोटे, शुरु में हरे, फिर पीले और उसके बाद लाल हो जाते हैं। ये देखने में मकोय के फल की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव —

इसके फल थोड़ी मात्रा में पाचक, मूत्र निस्सारक, वेदना नाशक और स्नेहन होते हैं। पाचन क्रिया की विकृति में और यकृत के विकारों से पैदा हुई बदहजमी में इसके फल लाभदायक होते हैं। इनको अधिक मात्रा में लेने से ये वामक हो जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल मीठा, घाव को भरने वाला और दमा, पित्त और पथरी को नाश करने वाला होता है। इसके बीज दुग्ध वर्धक और मूत्र निस्सारक होते हैं। कटिवात, चक्षुरोग और बवासीर में ये लाभदायक हैं।

इसके पके फल धातु परिवर्तक, मूत्रल, वेदनानाशक और शान्तिदायक होते हैं। यकृत की पुरानी शिकायतों में ये बहुत उपयोगी माने जाते हैं।

सिंध में इसके सूखे हुए फल पनीर जाफता के नाम से बेचे जाते है। इन्हें मन्दाग्नि और वात जनित उदर शूल में काम में लिया जाता है। इनका शीत निर्यास स्वतन्त्र रूप में अथवा सनवार के पत्तों के साथ में कटु पौष्टिक औषधि की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसके सूखे हुए फल पनीर के बनाने में, दूध जमाने के काम में लिये जाते हैं।

बम्बई में इसका फल रक्तशोधक माना जाता है।

हॉनिग्बर्गर कहते हैं कि इसके कड़वे पत्ते लुहानी लोगों के द्वारा ज्वर को दूर करने के काम में लिये जाते हैं।

लास बेला में इसका फल पीसकर उदरशूल के इलाज में काम में लिया जाता है। इसकी लकड़ी दांत साफ करने के काम मे ली जाती है इसका धुआ दात के दर्द पर लगाया जाता है जिससे कि कृमि नष्ट होते हैं। (हक्सबूलर)

डाक्टर चोपरा के मतानुसार यह वमन कारक, धातु परिवर्तक और मूत्रल है। यह दूध जमाने के काम में लिया जाता है।

काकपु

नाम—

मलयालम—काकपु। सिंहाली—कोतला वेल। लेटिन—Torenia Asiatica. टोरेनिया एशियाटिका।

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण हिन्दुस्तान, सीलोन, बरमा, जावा और चीन में पैदा होती है। इसके पत्तों के दोनों तरफ रुएँ होते हैं। ये दो से लगाकर ३ २ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फलिया आती हैं जिनमे बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस वनस्पति के पत्तों का रस सुजाक में, लाभदायक होता है।

काकमारी

नाम—

संस्कृत—काकमारी, काकघ्नी, गरलफल। गुजराती—काकफल, काकमारी। हिन्दी—जरमेह, काकमारी। बंगाली—काकमारी। मराठी—काकमारी। कोकण—गरुड़फल। पंजाब—नेरमल, हबूबेर। तेलगू—काकमारी। फारसी—महीजेहरेह। तामील—काकफुल्ली। इंगलिश—Crow Killer क्रो किलर। लेटिन—Anamirta Cocculus एनामिरटा कोक्यूलस।

वर्णन—

यह वनस्पति खासिया पहाड़, आसाम, पूर्वी बंगाल, उड़ीसा, कोंकण और मलाया द्वीप समूह में पैदा होती है। यह एक बड़ी झाड़ीनुमा पराश्रयी बेल होती है। इसकी छाल खाकी रंग की, खुरदरी और मोटी होती है। इसके पत्ते हृदय की आकृति के होते हैं। ये ऊपर से मुलायम और नीचे से फीके रंग के होते हैं। इसके फूल ६ मिली मीटर के आकार के होते है। इसके पके हुए फल अण्डाकृति, मुलायम और काले होते हैं। ये बहुत कड़वे और जहरीले होते हैं। फलों के सूखने पर मिरची सरीखे, काले बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फल जहरीले होते हैं। ये स्वाद में कड़वे होते हैं। यूनानी मत से यह एक प्रकार की उत्तम कफ निस्सारक औषधि है। यह अँतड़ियों में से गेज को दूर करती है। इसको आम-वात और प्रदाह पर लगाने के काम में लेते हैं। इसके कड़वे फल लेप के काम में लिये जाते हैं। यह लेप कृमिघ्न औषधि के रूप में लगाया जाता है। पुराने चर्मरोगों में भी यह लाभदायक है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह कृमिघ्न और चर्मरोगनाशक है। कम मात्रा में देने से यह अन्न को पचाती है और कफ को निकाल देती है। अधिक मात्रा में देने से रोगी को वमन होता है और जहरीला असर होकर वह बकने लगता है और बेसुध होने लगता है। शरीर में काकमारी की क्रिया अफीम की क्रिया से बिलकुल विपरीत होती है। इसलिये कभी-कभी अफीम का विष उतारने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। रक्ताभिसरण क्रिया पर काकमारी का असर अफीम से बिलकुल विपरीत होता है।

बंगाल में इसके ताजा पत्ते मोसमी बुखार में सुंघाने के काम में लिये जाते हैं। सीलोन में इसके ताजा छिलके को रगड़ कर सर्पदंश पर लगाते हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पीसे हुए बीजों को ३॥ माशे लेकर १ औंस व्हेसलीन में मिला कर नवीन दाद के ऊपर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है, मगर पुराने दाद पर इसका कोई असर नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके जहरीले गुण और औषधि-शास्त्र में इसकी उपयोगिता दोनों ही इसमें पाये जाने वाले (Picrotoxin) पिक्रोटाक्सिन नामक पदार्थ पर बहुत अवलम्बित हैं। पिक्रोटाक्सिन के अतिरिक्त इसमें मिनिस्परमाइन और पेटा मिनिस्परमाइन नामक दो पदार्थ और पाये जाते हैं। मगर वे ज्यादा लाभ दायक नहीं हैं।

वड्वुड के मतानुसार इसके फल बहुत जहरीले होते हैं। ये पिक्रोटाक्सिन से परिपूर्ण रहते हैं। इनके अन्तःप्रयोग से मस्तिष्क और स्नायु मण्डल में, जलन और आक्षेप पैदा होता है। अतः इनका

बाह्य प्रयोग ही करना चाहिये। रगड़ या ऐसे घाव जिनमें खून बहता हो इसको नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि उससे सारे शरीर में जहर फैल जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसके बीज क्षय रोग में रात में पसीना आने की बीमारी पर उपयोगी होते हैं। इनमें Picrotoxin (पिक्रोटाक्सिन), Coculin (कॉक्यूलन), Anamirtin (एनेमिरटिन) नाम के पदार्थ पाये जाते हैं।

काकमुलु

नाम—

मलायलम्—काकमुलु, काकुमुला। बरमा—साकौक, सुगौक। तेगेलाग—कमिट केबाग, सपीनीत। तेलगू—मुलुतिगे। लेटिन—Cassalpinia Nuga (केसेलपिनिया नुगा)

वानस्पतिक विवरण—

यह वृक्ष पूर्व के उष्ण प्रान्तों में पाया जाता है।

यह एक बड़ा वृक्ष है। इसका छिलटा खुरदरा, तन्तुवाला और पीले भूरे रंग का होता है। इसकी छोटी शाखाएँ गहरे हरे रंग की और मुलायम रहती हैं। इस पर काले और बाँके काँटे होते हैं। इसके पत्ते बड़े रहते हैं। ये बिलकुल मुलायम होते हैं। इसके फूल बड़े लम्बे झंवरों पर रहते हैं। इसके पापड़े नोकदार व गहरे बादामी रंग के होते हैं। इसका पापड़ा ५.७ से ६.३ से० मी० तक लम्बा रहता है और ३.२ सेन्टिमीटर चौड़ा होता है। इसके बीजे करीब दो सेन्टिमीटर लम्बे बैंगनी बादामी रंग के होते हैं।

गुण—

इस वृक्ष की जड़ें मूत्रल हैं। यह मूत्राशय में पथरी की बीमारी में मुफीद बताई गई हैं। इसकी लकड़ी का रस नेत्र रोगों में भीतरी एवं बाह्य रूप में प्रयोग में लिया जाता है। इसके भुंजे हुए फल भी इस उपयोग में आते हैं। इनका स्वाद कड़वा होता है। प्रसव के बाद में गर्भाशय को ताकत पहुँचाने के लिये इसके पत्ते प्रयोग में लिये जाते हैं।

डाक्टर चौपरा के मत के अनुसार इसकी जड़े मूत्रल पौष्टिक होती है। ये मूत्राशय की पथरी सम्बन्धी बीमारी में काम में ली जाती है।

✓ काकली

नाम—

यूनानी—काकली।

वर्णन—

यह एक प्रकार की रोइदगी [क्षुप] है। जो अश्नान की तरह होती है। इसके पत्ते नरम

और छोटे होते हैं। यह रब्बी (गरमी) की मौसम में पैदा होती है। ऊंट इसे बड़े शौक से खाता है। शामी के मतानुसार यह एक नमकीन घास है जो बीरान और नमकीन जगह में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके प्रयोग से मेदे की कमजोरी और ढीलापन मिट जाता है, हृदय बलवान होता है, कमर का दर्द जाता रहता है, यह पित्त को दस्तों के जरिये बाहर निकाल देती है। इसको हरी हालत में खाने से स्त्रियों के दूध और पुरुषों के वीर्य की वृद्धि होती है। इसकी मात्रा १०॥ माशे तक है। (ख०अ०)

काकालिया

नाम—

यूनानी—काकालिया।

वर्णन—

यह एक तरह का छोटी जाति का पौधा होता है। इसके पत्ते सफेद और बड़े होते हैं। शाखा पत्तों के दरमियान से खड़ी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसकी जड़ को शराब में भिगो कर, मल छान कर पीने से खांसी और फेफड़े की सख्ती मिटती है। इसके बीजों को पीस कर रोगन मोम में मिला कर मलने से एंठन और खिंचावट मिटती है। (ख०अ०)

काकावलि

नाम—

कनाड़ी—तुरबिलंगी। *मलयालम*—काकावलि। *तामील*—कलगइवलि। *तेलगू*—इतुगेदुलगोंदि। लेटिन—Mucuna gigantea (मुसुना जायजेंटिआ)।

यह वृक्ष हिन्दुस्तान और मलाया के सामुद्रिक किनारों पर पाया जाता है।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है। इसका प्रकाड बहुत ऊँचाई तक पहुँचता है। इसकी शाखाएँ नाजुक और मुलायम होती हैं। इसके पत्ते काफी लंबे होते हैं। ये दोनों तरफ मुलायम रहते हैं। इसकी फलियों के ऊपर कुछ पीला, बादामी रुआं रहता है। इसपर हाथ लगाने से यह अंग पर जलन करता है। इसमें २ से लगाकर ६ तक बीज रहते हैं।

गुण—

इसका छिलटा गठिये की शिकायतों में काम में लिया जाता है। इसको सोंठ के साथ

मिलाकर अंग पर मसलने के भी काम में लेते हैं। यह पीसकर सोंठ के साथ में आमवात से पीड़ित अंगों पर लगाया जाता है।

इसके पापड़े के ऊपर के काटे मलाथा प्रायः न्दीप में विष के तौर पर काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह आमवात में उपयोगी है।

काकोली

नाम—

संस्कृत– काकोली, धान शिखा, वयस्था, जीवन्ती, मधुरा, शीतपाकी, शुक्लक्षीरा, क्षीरा, वीरा, धीरा, लवंगलता इत्यादि। हिन्दी—काकोली। बंगाली – काकल। लेटिन - Luvanga Scadens, (लवंगा स्केडन्स)।

वर्णन—

यह वनस्पति आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्ट वर्ग की आठ दिव्यौषधियों में से एक है। अभी तक अष्टवर्ग की औषधियां प्रायः अप्राप्य रहीं हैं और जो मिली भी हैं वे बहुत सन्दिग्ध हैं। आयुर्वेद के मतानुसार काकोली का कन्द शतावर की तरह कुछ श्याम वर्ण को लिये हुए होता है। इसमें एक प्रकार का सुगन्धित दूध निकलता है। आधुनिक खोजों के अनुसार इसको लेटिन में "लवंगा स्केडन्स" कहते हैं और यह पूर्वी बंगाल, आसाम, खासिया पहाड़िया, चिटगाव और देहरादून के ऊपर हिमालय पहाड़ पर पैदा होती है।

यह एक प्रकार की झाडीनुमा वेल है। यह काटेदार होती है। इसके पत्रवंत बड़े और मुलायम रहते हैं। इसकी पत्तिया बरछी आकार होती हैं। ये ७.५ से लगाकर २५ सेंटि मीटर तक लम्बी होती हैं। इसके सफेद फूल होते हैं। इसका फल गोलाकार होता है। यह कबूतर के अण्डे से मिलता जुलता रहता है। उसमें १ से ३ तक बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव

आयुर्वैदिक मत— आयुर्वैदिक मत से काकोली शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर. धातुवर्द्धक, कड़वी, कफकारक, भारी तथा क्षय, पित्त, तृषा, रुधिरविकार, रक्तपित्त, दाह, ज्वर, विष वायु और पित्त रोग को दूर करती है। यह वृष्य, अवस्थास्थापक, पाक और रस में स्वादिष्ट. बलकारक, शीतवीर्य और जीवनप्रद है।

इसके फलों से एक प्रकार का सुगन्धित तेल जोकि औषधि के रूप में भी काम में आता है तैयार किया जाता है और वह "काकला" के नाम से बंगाल के बाजारों में बिकता है।

इसकी जड़ और इसके फल दूसरी औषधियों के साथ सर्प और बिच्छू के विष को दूर करने के काम में लिये जाते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार ये दोनों ही वस्तुएं सर्प और बिच्छू के विष के लिये निरुपयोगी हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु बिच्छू के विष में उपयोगी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि बुखार को मिटाती है। तपेदिक में लाभदायक है। कमजोरी को दूर करती है। और "इस्तस्का ज्की" जो कि जलोदर ही की एक किस्म होती है उसमें बहुत फायदा पहुँचाती है। (ख० अ०)

काखश

नाम —

पंजाब— काखश, दिओ, काकेई, लूंगार। चाइनीज—चुराह। मलाया—कीट। मलायलम— तवि। तामील— परनइ। लेटिन - Pteris Aquilina (टेरिस एक्विलिना)

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति आर्कटिक कटिबन्ध व दक्षिण अमेरिका के कुछ उष्ण भागों को छोड़ कर प्रायः सारे संसार में होती है।

वानस्पतिक विवरण—

इसका पाताली धड़ मोटा होता है। यह जमीन में फैलता है। इसकी गठानें लम्बी चौड़ी रहती हैं।

गुण —

इसकी गठाने सकोचक और कृमि नाशक मानी जाती है।

इसकी गठाने व जड़ का काढा तिल्ली व अन्य उदर रोगों के कारण पैदा हुए विकारों में देने के काम में लिया जाता है।

डॉक्टर चोपरा के मतानुसार इसकी गठाने सकोचक और कृमिनाशक हैं।

कांगनी

नाम —

संस्कृत— चिनका, कगु, पीततन्दुल, कगुनिका, कंगुनी, प्रियंगु। हिन्दी— कांगनी, वरतिया, कालाकांगनी, कंगु कौनी। बम्बई— कग, कांगनी, कोराकग, बावनी। बुन्देलखण्ड—काकुन। बरमा—पुकि। मध्यप्रदेश—कुंगनी, राला। काश्मीर— पिंगनिशालि। कुमाऊ— चिना, गदरा, मन्दिग, मुदुवा, शगुरा। मराठी— चेना, कांग, कंगु, राल। पंजाब— चांवलकागनी, चूर, गाल, स्वेतकागनी। तामील— तेनई। तेलगू— शाक, शालि। सिन्ध— किरंग। अरबी —दुखन। फारसी— गाल। लेटिन— Setaria Italica (सेटेरिया इटालिका)।

वर्णन —

यह वस्तु गरम प्रदेशों में पैदा होती है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। यह हिन्दुस्तान में बहुत स्थानों में बोई जाती है। यह यहा का एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। इसके यूष, पूरी, कचोरी,

इत्यादि अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं। इसके पत्तों का शाग बनाया जाता है। १०० तोले काँगनी में प्रायः ७३ तोले मेदा और ३ तोले तेल निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति मृदु, तिक्त, मज्जावर्धक और कामोद्दीपक और कब्जियत पैदा करनेवाली होती है। जलन और अस्थि भंग में यह लाभदायक है। गर्भवती के गर्भाशय को यह शान्ति देती है।

प्रसव वेदना को कम करने के लिये, यह एक उत्तम घरेलू औषधि मानी गई है। यह मूत्रल और सकोचक होती है। आमवात में इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि मूत्रल, और सकोचक होती है। यह आमवात में काम मे ली जाती है।

उपयोग—

गठिया—इसका लेप करने से गठिया की पीड़ा मिटती है।

मूत्र वृद्धि—इसको औटाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है।

अतिसार—इसकी फक्की लेने से अतिसार में लाभ होता है।

कर्णरोग— इसकी रज को कान में बुरकाने से कान का बहना मिटता है।

कांगचेत्री

नाम—

संस्कृत— कांगचेत्री।

वर्णन—

रसेंद्र चूडामणि नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि कागचेत्री वनस्पति की लता होती है। यह छत्री के आकार की होती है और इसको तोड़ने से इसके अन्दर दूध निकलता है। इस लता की जड़ में एक कन्द होता है।

उपरोक्त वर्णन के सिवाय इस वनस्पति के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की जानकारी हमारे देखने में नहीं आई। न हमें इस बात का ही पता लगा कि इस वनस्पति के दूसरी भाषाओं में क्या नाम हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कागचेत्री यथा नामा, औषधि परम शुभः।
तस्य स्पर्शस्य मात्रेण, बध्यते सूत राजकः॥

अर्थात् कागचेत्री नामक वनस्पति इतनी प्रभावशाली होती है कि उसके रस का स्पर्श होने ही पारे की गोली बन्ध जाती है। इस तरह से बन्धी हुई पारे की गोली को तावे अथवा चांदी के रस में

डालने से उसका सोना हो जाता है। इसी प्रकार इस गोली को मुंह में रख कर स्त्री सम्भोग करने से अत्यन्त स्तम्भन होता है।

उपरोक्त बातों में सत्य का कितना अंश है यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

कांजी

नाम—

हिन्दी, उर्दू, गुजराती—काजी।

वर्णन—

भाव प्रकाश में लिखा है कि हर किस्म के गल्ले को उबाल कर उसके ऊपर का पानी लेकर, उससे काजी बनाई जाती है। खजाइनुल अदविया के लेखक इसके बनाने की तरकीब इस तरह लिखते हैं।

"आग पर थोड़ा सा जीरा और लहसन तथा थोड़ा सा सरसों या राई का तेल डाल दें जिससे धुआं निकलने लगे। उस धुए पर एक मिट्टी के बरतन को औंधा रखदे। फिर राई, नमक, अजवायन व जीरे को पीसकर पानी में मिलाकर उस बरतन में भरदें और उसका मुंह बन्द करके धूप में रखदें जिससे उसमें खमीर पैदा हो जाय। यह गरमी के दिनों में जल्द तैयार होती है। सरदी में कुछ देर लगती है। यह जितनी पुरानी पड़ती है उतनी ही अच्छी होती है।

✓ काजी दो प्रकार की होती है, एक देशी और दूसरी विलायती। विलायती काजी को बनाने की तरकीब इस प्रकार है।

"जौ का आटा और पोदीना दोनों लेकर पानी में मिला धूप में रखकर खमीर उठाले। फिर उसकी रोटी बनाकर तदूर या तवे पर पका लें। फिर उसका जितना वजन हो उसी के बराबर माधा आबेकाम या फ्रोजिज (?) या इसी किस्म का नमक, चौथाई हिस्सा सौंफ और थोड़ी अजमोद, दालचीनी और लौंग मिलाकर सब चीजों को पानी में तरकर के २० दिन तक धूप में रखदें और बार बार किसी चीज से हिलादिया करें तथा थोड़ा पानी भी डाल दिया करे। जब सब चीजें काली पड जांय और उनमें से बदबू निकलने लगे तब उन्हे पानी में घोलकर छान लें और बोतलो में भर ले। इन बोतलों को फिर धूप में रखे और रोज हिलाते रहें। बाद में उपयोग करें। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से काजी कब्ज को दूर करनेवाली, गरम, भूख लगानेवाली, पाचक और हलकी होती है।

यूनानी मत से देशी काजी सर्द और तर है और विलायती काजी तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। हिन्दी काजी कफ, पित्त, पेट का दर्द, पेट का फुलाव और कब्जियत को मिटाती है। इसको

बदनपर मलने से गर्मी और बुखार जाता रहता है। उर्द वगैरे के बड़ों से जो कांजी बनाई जाती है वह ज्यादा मुफीद और हलकी होती है।

विलायती काजी पाचक, भूख बढ़ानेवाली और कब्जियत को दूर करने वाली होती है। यह शरीर की विषैली सामग्री को बाहर निकालती है। मेदे के कीड़ों को नष्ट करती है। बवासीर में भी मुफीद है। यह आतों को खुश्क करती हैं जिससे आंतें कमजोर होती हैं।

काजू

नाम—

संस्कृत—अग्निकृत, अरुष्कर, गुच्छपुष्प, कजूष्क, पृथकबीज, उपपुष्पिका। **हिन्दी—**काजू। **मराठी—**काजू, कजुकाबि। **गुजराती—**काजू। **बंगाल—**काजू, हाजली बदाम। **कनाड़ी—**गेरबीज। **तामील—**आदिमा। **तेलगू—**जिडीमामिडो। **लेटिन—**Anacardium Occidentale (एनाकार्डि-यम ऑक्सिडेंटल)

वर्णन—

काजू का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका का उष्ण कटिबन्ध है। मगर कई वर्षों से यह भारत वर्ष के सामुद्रिक किनारों पर भी बहुतायत से पैदा होती है। इसका वृक्ष छोटे कद का होता है। इसकी शाखाएं मुलायम रहती हैं। इसके पत्ते १० से लगाकर १५ से०मी० तक लम्बे और ३·८ से ७·५ से०मी० तक चौड़े खिरनी या कटहल के पत्तों की तरह होते हैं। इसके एक प्रकार गोंद भी लगता है जो पीला या कुछ ललाई लिये हुए रहता है, इसके फल सरदी के दिनों में मेवे के रूप में सारे भारतवर्ष के बाजारों में बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह फल कषैला, मीठा और गरम होता है। वात, कफ, अर्बुद, जलोदर, ज्वर, वृण, बवलरोग और अन्य चर्मरोगों को यह दूर करता है। यह कामोद्दीपक और कृमि नाशक होता है। पेचिश, बवासीर और भूख की कमजोरी में यह लाभदायक है।

इसके छिलटे में धातु परिवर्तक गुण रहते हैं। इसकी जड़ विरेचक मानी जाती है। इसका फल रक्तातिसार को दूर करने वाला होता है।

इसके छिलके से एक प्रकार का तेल प्राप्त किया जाता है जो दाहक होता है और शरीर पर लगाने से फोला पैदा कर देता है। इसे कोढ, दाद, वृण, और अन्य चर्म रोगों पर लगाने के काम में लेते हैं। इसके १०० तोले छिलकों में २९॥ तोला तेल निकलता है। इसका रंग काला और स्वाद कड़वा होता है।

यूरोप में इसके बीज कोष का तेल कृमिनाशक वस्तु के तौर पर काम में लिया जाता है।

डॉक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसका मगज पौष्टिक, शान्तिदायक और स्निग्ध वस्तु है। यह कमजोर रोगियों को जो वमन के रोग से पीड़ित हो, खाद्य के रूप में दिया जाता है। इसके साथ

में "एसिड हाइड्रो सिएनिकम" (Acid Hydrocyanic dil) भी दिया जाता है। काजू का तेल विष प्रति रोधक भी है। यह पेट और आंतों के ऊपर जमकर विषजनित प्रदाह से रक्षा ही नहीं करता है बल्कि उसकी तेजी को नष्ट कर देता है। यह कई प्रकार के लेप और बाह्य प्रयोगों के लिये उत्तम वस्तु है।

अमेरिकन जरनल फारमोकोपिया (१८८२) के अनुसार इसके छिलके के नीचे एक काला पदार्थ रहता है जिसे कारडोल (Cardol) कहते हैं। बेथीनर के मतानुसार कारडोल का इंजेक्शन जानवरों को क्रियाहीन करने वाला और उनकी श्वास क्रिया को नष्ट करने वाला होता है। यदि यह कपड़े पर लगा कर सीने पर चिपका दिया जाय तो १४ घण्टे में छाला पैदा कर देता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह मेवा गरम और तर होता है। यह शरीर को मोटा करता है, दिल को ताकत देता है; कामोद्दीपक है, वीर्य को बढाता है, गुर्दे को ताकत देता है और दिमाग के लिये मुफीद है। अगर इसको बासी मुंह खाकर थोड़ी सी शहद चाटले तो दिमाग की कमजोरी मिट जाती है। सर्द और तर मिजाज वालों के लिए यह भिलामे के समान लाभ दायक है। (ख०अ०)

गोल्डकास्ट में इसका छिलका और इसकी पत्ती दांतों की पीड़ा और मसूड़ों के सूजन में काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलटा धातु परिवर्तक और संकोचक है। इसका फल कोढ़, व्रण पर लगाया जाता है। यह प्रदाह को मिटाने वाला है। इसमे कारडोल (Cardol) और (Anacardic Acid) नाम के तत्व पाये जाते हैं।

उपयोग—

शरीर के मस्से—शरीर पर जो छोटे २ काले मस्से हो जाते हैं उनको जलाने के लिये इसके छिलकों का तेल लगाया जाता है।

त्वचा की शून्यता—कोढ़ से पैदा हुई त्वचा की शून्यता भी इस तेल के लगाने से मिटती है

बिवाई—इसके छिलकों का तेल लगाने से पैरों के अन्दर फटी हुई बिवाई मिट जाती है।

उपदंश—उपदंश से पैदा हुए फोडे या लाल चट्टों को मिटाने के लिये इसका तेल लगाना चाहिये।

नोट—इसके छिलकों का तेल बहुत दाहक और फोला उठाने वाला है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये।

कांटा चौलाई (कांटाभाजी)

नाम—

संस्कृत—बहुवीर्य, तन्दुला, तन्दुलीबीज, विषघ्न, कडेरा, इत्यादि। हिन्दी—कांटा चौलाई, छोलाई। कटेनतिया। बंगाली-कॉटानतिया, कॅटानरीस। गुजराती—कांटाडो डॉभो। मराठी—चनलई,

कंटीभाजी, तन्दुलिरा, कांटेमाठ। तामील-मुलुकिरइ। तेलगू -नलदोगलि। लेटिन -Amaranthus Spinosa (एमेरेंथस स्पिनोसा)।

वर्णन—

यह चौलाई नामक तरकारी ही की एक जाति होती है। पर इसके पौधे पर कांटे होते हैं। इस पौधे का तना लाल रंग का होता है। इसके पत्ते चौड़े, लम्बगोल और लम्बे डठलवाले होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए लाल रंग के होते हैं। वर्षाऋतु में यह वनस्पति अपने आप थोकबन्द पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, मूत्रल, लघु, गर्भाशय की वेदना को दूर करनेवाली, दूध बढ़ानेवाली, गर्भाशय को शक्ति देनेवाली और विषनाशक होती है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई का मत है कि अत्यार्तव अर्थात् मेनीरोजिया के ऊपर यह वनस्पति अंग्रेजी औषधि अर्गट के समान ही काम करती है। इससे गर्भाशय का शूल बन्द होता है और रक्त का बहना बन्द हो जाता है। इस औषधि के बराबर आवला, अशोक की छाल और दारू-हल्दी मिलाकर देने से यह लाभ और भी जल्दी होता है। श्वेत प्रदर में इसको और हीरा-बोल को बराबर मिलाकर देने से जल्दी लाभ होता है। जिन स्त्रियों को गर्भपात होने की आदत हो जाती है, उनको रजोदर्शन के समय ४।५ दिन तक इसका क्वाथ देने से गर्भपात का होना रुक जाता है। बद गाठ और कठमाला पर भी इस औषधि की जड़ का लेप करने से लाभ होता है।

सुजाक की पहली और दूसरी अवस्था में भी यह औषधि बड़ी लाभदायक है। इसकी जड़, मुलेठी और अपामार्ग को समान भाग लेकर उसका क्वाथ पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर सुजाक नष्ट हो जाता है।

मेडागास्कर में इसकी जड़ मूत्रल, मृदु विरेचक और दूध बढ़ाने वाली समझी जाती है। इसका काढ़ा मूत्रावरोध के लिये काम में लिया जाता है। इसकी जड़ को या इसके पत्तों को पानी के साथ पीस कर खुजली और फोड़े फुन्सियों पर लेप किया जाता है। इसकी जड़ की राख उपदंश के घावों में लाभदायक है।

लारियूनियन में यह वनस्पति ज्वर निवारक और मूत्रल वस्तु की तरह काम मे ली जाती है। इसकी जड़ अत्यधिक रजःश्राव मे चूसी जाती है और इसका काढ़ा भी पिया जाता है।

सुजाक और पेशाब की जलन पर इसकी जड़ बहुत फायदा करती है। इसके सम्बन्ध में यह औषधि एलौपैथिक फरमाकोपिया में भी सम्मिलित करली गई है।

उदर शूल पर भी इसकी जड़ फायदे मन्द है और सांप के विष पर भी यह सारा पौधा उप-योगी माना जाता है।

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार यह औषधि अत्यधिक रजःश्राव, सुजाक, खुजली और सर्पदंश में काम में ली जाती है।

उपयोग—

सर्पविष—इसके पचांग का रस पिलाने से सर्प विष में लाभ होता है।

बिच्छू का विष—इसकी जड़ को पानी में घिस कर लेप करने से बिच्छू का जहर उतर जाता है।

नकसीर—इसके और नीम के पत्तों को पीस कर कनपटी पर लेप करने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

पथरी—इसका शाग खिलाने से पथरी गल जाती है।

नारू—इसकी जड़ को पीसकर नारू पर बांधने से नारू गल जाता है।

मकड़ी का विष—इसके पत्तों को पानी के साथ पीस कर लेप करने से मकड़ी का विष दूर होता है।

रक्तपित्त—शहद के साथ इसका अवलेह बनाकर चटाने से रक्तपित्त मिटता है।

इसके अतिरिक्त अत्यधिक रजःश्राव, श्वेत प्रदर, सुजाक, फोड़े फुंसी इत्यादि रोगों पर इसका उपयोग करने की विधि ऊपर लिखी जा चुकी है।

कांटोसरियो

नाम—

अफगानिस्तान—पलोसा। बिलोचिस्तान—पलोस, पलोसा, फुलाब। सिलोन—फुलि। गुजरात—कांटोसरियो। पंजाब—फुलाई, फुलई। लेटिन—Acacia ।Modesta (एकेशिया मोडेस्टा)

उत्पत्ति स्थान—

हिमालय की तलहटी में, पंजाब से पूर्व में जमना तक ४ हजार फीट की ऊंचाई तक, वजीरीस्तान और बिलूचिस्तान में।

वानस्पतिक विवरण—

यह एक छोटा मध्यम श्रेणी का वृक्ष है। इसके कांटे भी होते हैं। इसके फूल फीके रंग के और सफेद रहते हैं। इसके पापड़े पतले, चपटे और सफेद होते हैं। इनमें तीन से लगाकर पांच तक बीजे पाये जाते हैं।

गुण—

इस वृक्ष से एक प्रकार का गोंद पाया जाता है, जिसे कि पेशावर की व्हेली के लोग बल-वर्धक समझते हैं। (वेलो)

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गोंद बलवर्धक है।

कांटासलाई

नाम—

यूनानी--कांटा सलाई।

वर्णन--

यह पौधा गज भर ऊंचा होता है। इसकी शाखाओं के सिरे पर काटे होते हैं। पत्ते लाल मिर्च के पत्तों की तरह, मगर उनसे खरदरे होते हैं। फूल पीले, चम्पा के फूलो की तरह मगर उनसे छोटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का स्वभाव सर्द और खुश्क है। यह खासी, बुखार और पेचिश में मुफीद है।

जिस औरत को सन्तान न होती हो और मासिक धर्म के समय गर्भाशय में दर्द होता हो, उसे इसके मुठी भर पत्तों का रस निकाल कर ४ तोले दही में मिलाकर तीन दिन तक भूखे पेट देना चाहिये और इस अर्से में बिना नमक की रोटी दही के साथ खाना चाहिये। इसके प्रयोग से गर्भाशय के दोष मिट कर गर्भ स्थित हो जाता है। (ख०अ०)

काठ आमला

नाम—

संस्कृत—गगेरुक, कर्क, कर्कफल, कर्कट इत्यादि। हिन्दी--ककरोल, गगेरुआ, काठ आंवला, गुलकाकरा। बंगाली-काठ आवला, गुलकाकरा। गुजराती –कर्पट। उर्दू—काकरोल। लेटिन-Momardica Cochinchinensis (मोमोर्डिका कोचिनचिनेनसिस)

वर्णन—

काठ आवला के वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष, मलाया, चोन और फिलिपाइन्स द्वीप समूह में होता है। यह एक मजबूत झाड़ होता है। इसकी जडें गठानदार होती हैं। इसका पिंड भारी होता है। इसके तन्तु सीधे होते हैं। पत्ते काफी लम्बे, चौडे और कुछ कटे हुए, तीखी नोक वाले और मुलायम होते हैं। इस पर नर और मादा दोनों तरह के फूल आते हैं। इसका फल गोल, नुकीदार, लाल और दलदार होता है (इं० मे० प्लांट्स)

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल ग्राही, खट्टा, हल्का, गरम, क्षुधा-वर्द्धक और पित्तकारक होता है। इसका पका फल मीठा, चिकना, कसैला और कफ, वात-नाशक होता है।

यूनानी मत— यूनानी मत से इसके बीज खासी और सीने की शिकायतो में मुफीद होते हैं। येगर्भाशय को उत्तेजना देते हैं।

इसके बीज खासी और सीने के तकलीफों में मुफीद माने गये हैं। इनको पीस कर एक गरम पदार्थ तैय्यार किया जाता है जो कि बंगाल में जाल के नाम से मशहूर है। इस वस्तु को गरम घी के साथ मिलाकर प्रसव के बाद में स्त्रियों को दिया जाता है।

इण्डोचायना में इसकी जड़ें आमवात और छोटे अगों की सूजन पर दी जाती हैं। इसके बीज फोड़े, नासूर और गठानों पर मुफीद माने जाते हैं। ये फोड़े को पका कर रोगी को तसल्ली देते हैं।

चीन में इसके बीज मृदु विरेचक माने जाते हैं। ये अर्बुद और फोड़ों के इलाज में काम में लिये जाते हैं। यकृत और तिल्ली की पीड़ा में भी यह लाभ दायक है। (इ० मे० प्लाट्स)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि अग्नि प्रवर्द्धक और उत्तेजक है। यह खांसी के रोग में मुफीद है।

काठगूलर (कठूमर)

नाम—

संस्कृत—काकोदुम्बरिका, खरपत्रिका, फल्गुवटिका इत्यादि। **हिन्दी**—कठूमर, गोवला, कठगुलरिया। **बंगाली**-काकडूमर। **मराठी**-कालाऊमर। **गुजराती**-जंगली अंजीर, टेड़ऊमरो। **फारसी**-अंगीरेदस्ती। **अरबी**—तनबर्रि। **लेटिन**—Ficus Hispida (फिकस हिसपिडा)

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष और सीलोन में पैदा होती है। यह गूलर की जाति का एक वृक्ष होता है पर इसके पत्ते गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं। इसकी छाल पतली, खुरदरी और भूरे रंग की होती है। गूलर की तरह इस वृक्ष के फूल नहीं आते, शाखाओं में ही इसके फल लगते हैं। इसके पत्तों को छूने से हाथ में खुजली होने लगती है। इसके पत्ते और डालियों को तोड़ने पर उनमे से दूध निकलता है। इस औषधि के पौधे २ से ३ हाथ तक ऊंचे रहते हैं। इसके पत्ते की लंबाई १ से १॥ फुट तक और चौडाई आधे से पौन फुट तक होती है। पत्ते खरदरे होते हैं इस के फल अंजीर या गूलर के फल की तरह होते हैं और झाड में से फूटते हैं। इस की जड तूरी और मधुर, पत्ते तूरे और फल तूरे होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत--आयुर्वेदिक मत से यह वस्तु शीतल, कड़वी और कसैली होती है। यह सकोचक और रक्तातिसार में लाभ पहुँचाती है। चर्मरोग, रक्तपित्त, कफ, श्वेतकुष्ट, पांडुरोग, बवासीर, कामला और सूजन में यह लाभदायक है। इसका फल मीठा, सुस्वादु, शीतल, तृप्तिकारक, कामोद्दीपक पचने में मधुर, वातकारक और ग्राही होता है। यह माता के स्तनों में दूध पैदा करता है।

यूनानी मत--बस्तानी अंजीर से यह जङ्गली अञ्जीर बहुत तेज और सख्त होता है। इसका लेप सफेद दाग, स्याह दाग और दाद में मुफीद है। इसके पत्तों को पीस कर तलुओं और मस्सो पर लगाने से बड़ा लाभ होता है। सिर की गंज पर इसके कच्चे फलों को सिरके और नमक के साथ लगाने से लाभ होता है। इसका दूध जहरीला होता है, इसलिये इसका उपयोग समझ बूझ कर करना चाहिये।

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसके फल, बीज और छाल एक उत्तम वमनकारक औषधि है।

बनावटें—

इसका चूर्ण, क्वाथ और आसव ये तीन बनावटें विशेषरूप से प्रयोग में आती हैं।

चूर्ण—इसकी जड़ को पीसकर कपड़छान करके उस चूर्ण को इसके पचाग के स्वरस की तीन भावनाएँ देकर तैयार करना चाहिये।

क्वाथ—इसकी जड़ २. तोला लेकर सवा पाव पानी में रात को मिट्टी के बरतन में भिगो देना चाहिये सबेरे उसे उबालकर जब चौथाई पानी शेष रहे तब छानकर एक तोला शहद मिलाकर शीशी में भर लेना चाहिये। इसको दिन में तीन बार पिलाना चाहिये।

गोली—इसकी जड़ दस तोले, मुलेठी पाच तोला, आकड़े (मदार) के सूखे फूल एक तोला लौग एक तोला और कालीमिरच एक तोला। इन सबका कपड़छन चूर्ण करके बढ़िया शहद में डेढ़ डेढ़ माशे की गोलिया बनालेना चाहिये। इसकी मात्रा दो से चार गोली तक की है।

आसव-काठगूलर की जड़ १४० तोला, मुलेठी ४० तोला, बेल की जड़ १० तोला। अड़ूसे की जड दस तोला, गोखरू दस तोला। इन सबको जौकुट कर के २५ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १२॥ सेर पानी रह जाय तब उसको छानकर उसमें कबाब चीनी तीन तोला, सोंठ तीन तोला, पीपर तीन तोला, मिरच तीन तोला, जायफल तीन तोला, चन्दन का बुरादा तीन तोला, चित्रकमूल तीन तोला, लौंग तीन तोला, कालीदाख २५ तोला, और धावड़ी के फूल २५ तोला। ये सब कूटकर मिला देना चाहिये। इनके साथ पाच सेर गुड़ मिलाकर खूब हिला देना चाहिये। पीछे चीनी की बर्नियों में भरकर २० दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये। तब आसव तैयार हो जायगा।

उपयोग—

रक्तपित्त और बवासीर—इसका ऊपर बताया हुआ चूर्ण तीन माशे शहद और घी के साथ चटाने से, अथवा इसके आसव के प्रयोग से भयंकर रक्त पित्त (शरीर के चाहे जिस अंग से बहनेवाला खून) रुकता है। बवासीर का दर्द मिटता है। खून को बन्द करने मे यह चीज बहुत ही अक्सीर है। १५-२० दिन तक उपयोग करना चाहिये।

पाडु और कामला—इसके आसव के साथ तीन माशे कुटकी का चूर्ण दिन मे दो बार देने से पाडुरोग और कामला मिटता है।

रक्त विकार—इसका काढ़ा अथवा आसव एक मास तक पीने से खाज खुजली, फोड़े फुंसी, दाद, खून की गरमी वगैरह तमाम त्वचा के रोग मिटते हैं।

सुजाक और प्रमेह—इसके क्वाथ और आसव के सेवन से पेशाब के तमाम रोग, सुजाक, जलन, वीर्यश्राव और पित्त प्रमेह मिट जाते हैं। मूत्रनाली साफ होती है।

खांसी—इसकी उपर लिखी हुई गोलियों के सेवन करने से हर तरह की खासी, छाती का दर्द और छाती की जलन मिटती है। हर्रे के चूर्ण के साथ इन गोलियों के सेवन करने से बैठा हुआ कंठ खुल जाता है। इसके आसव का मंडूर के साथ सेवन करने से क्षय रोग में भी लाभ होता है।

गर्भिणी की उबाक—इसकी ऊपर बताई हुई गोलियों के सेवन करने से गर्भिणी को होनेवाली उबाक और उलटिया मिट जाती हैं।

दुष्ट व्रण—न भरनेवाले घाव और व्रणों मे इसकी जड़ का चूर्ण दबाने से और इसके क्वाथ से उनको धोने से घाव भर जाते हैं।

विस्फोटक—इसकी जड़ को जलाकर, उसकी राखकर उस राख को इसके पचाग के काढ़े की चार भावना देकर उस राख को सुखाकर १०० बार धोये हुए घी मे उस राख को मिलाकर मलहम बनालेना चाहिये। इस मलहम में जितना इसका वजन हो उससे आधी शेड़ी के (एक जानवर होता है, जो जंगल मे रहता है उसपर लम्बे लम्बे काटे होते हैं) काटों की राख मिलाकर भयकर विस्फोटक, नासुर, भगदर इत्यादि दुष्ट व्रणों पर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक और वमनकारक है। इसमें सेपानिन (Saponin) नामक पदार्थ पाया जाता है।

ज्वर—इसकी छाल के चूर्ण को १ माशे से २ माशे तक की मात्रा में दिन में तीन-चार बार देने से बारी से आने वाला ज्वर मिट जाता है।

गाँठ—इसके फलों का पुल्टिश बना कर बद गाठ पर बाधने से लाभ होता है।

गर्भपात—इसके फलों को खाने से गर्भपात का होना बन्द हो जाता है।

प्रदर—इसके फलों के चूर्ण में बराबर शकर और शहद मिला कर मोदक बाध कर खिलाने से प्रदर रोग मिटता है।

कुत्ते का विष—इसकी जड़ और धतूरे के बीजों को चावलों के पानी के साथ पीसकर पिलाने से कुत्ते का जहर उतर जाता है।

वमन—इसके पके हुए फलो के बीजों का चूर्ण चार माशे की मात्रा में गरम पानी के साथ देने से वमन हो जाती है।

प्रमेह—इसकी बड़ी जाति के फल के सेवन से प्रमेह और रक्त-प्रदर में लाभ होता है।

कादिकपान

नाम —

संस्कृत—अश्वकातरी। बम्बई—कादिकपान, वादर, बाशिंव। मराठी—अश्वकत्री, बाशिंघ। कनाड़ी—मरचप्परिके। मलयालम—पन्नकिलहेतुमरवला। लेटिन—Polypodium quercifolium (पोलीपोडियम क्वरशिफोलियम) (2) Drynaria quercifolium (ड्रायनेरिया क्वरसी फोलियम)।

वर्णन —

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पहाड़ों की नीची भूमिपर, भाड़े पर, और नीचे के मैदानों में पैदा होती है। इसकी बेल छोटी, मजबूत और रुएँदार होती है। ये पुराने वृक्षों के ऊपर चढ़ती है। इसके पत्ते कँगूरेदार, नुकीदार और गोल रहते हैं। इस वनस्पति की जड़ें औषधि के काम में आती हैं। गोआ में ये जड़ें बिकती हुई मिलती हैं। इसकी जड़ें मोटी और रेशम के समान गुदगुदीदार होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत —आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, पौष्टिक और आंतों को सिकोड़नेवाली होती है। यह आंतों के ज्वर में लाभदायक है।

क्षय रोग में भी यह वनस्पति उपयोगी है। यह अग्निमांद्य और खांसी में लाभदायक है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई लिखते हैं कि यह औषधि बहुत पुराने समय से यहां प्रचलित है। यह कड़वी, पौष्टिक और ग्राही होती है। इसका क्वाथ २ से ४ तोले की मात्रा में दिन में तीन बार दिया जाता है।

जीर्ण विषम ज्वरों में रक्त शुद्धि के लिये चिरायता और गोखरू की जड़ के साथ इस औषधि का काढ़ा दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह क्षय, ज्वर और मंदाग्नि में लाभदायक है।

कान्तलोह

नाम —

संस्कृत—लोहकान्तक, तीक्ष्ण, शास्त्रालय, शस्त्र, शस्त्रकान्ति इत्यादि। हिन्दी—लोहा, इस्पात, फौलाद। बंगाल—लोह, तीखा, इस्पात, काललोह। मराठी—लोखंड, फौलाद, तीखें। गुजराती—लोढूं, मोलसूं, गजवेल। फारसी—आहन, फौलाद, संगेआहन। अरबी—हदीद, हजरूल। अंग्रेजी—Iron (आयर्न), Steel (स्टील)। लेटिन—Ferrum (फेरम)।

वर्णन —

लोहा —यह संसार प्रसिद्ध धातु है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रंथों में लिखा हुआ

है कि पूर्वकाल में देवताओं के द्वारा युद्ध में विनाश किये हुए जो लोमिन दैत्य थे, उनके शरीर से अनेक प्रकार के लोहे उत्पन्न हुए, इस प्रकार लोहे की उत्पत्ति हुई। लोहा कई प्रकार का होता है जिसमें कान्त लोह, कृष्ण लोह, मुड लोह ये जातियां प्रधान हैं।

कान्त लोह की परीक्षा—

कान्त लोह के लक्षण लिखते हुए शालिग्राम निघण्टु मे लिखा है:—

"यत्पात्रे न प्रसरति जले तैल बिन्दुः प्रतप्ते हिंगुगन्ध त्यजति च निज तिक्तता निम्ब कल्कः। तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारक नैति भूमिं कृष्णागः स्यात् सजल चणकः कान्ति लोहं तदुक्तम ॥

अर्थ—जिसके बर्तन द्वारा जल में तेल की बूंद डालने से नहीं फैलती, जिसमें तपाने से हींग अपनी गन्ध को छोड़ देवे और नीम का कल्क रखने से मीठा हो जाय तथा जिसमें दूध औटाने से दूध शिखर के आकार का ऊपर को खड़ा हो जावे, परन्तु फैले नहीं और जिसमें जल सहित चने भिगोने से काले हो जावे उसको कान्त लोह कहते हैं।

फौलाद की तलवारें, सोने चांदी के तार खींचने की जन्त्रिया, लोहा रेतने की रेतिया इत्यादि वस्तुओं का फौलाद साधारणतया अच्छा होता है। अतः कान्तिसार बनाने के लिये इसी प्रकार का फौलाद उपयोग में लेना चाहिये।

लोहे को शुद्ध करने की क्रियाएं—

अशुद्ध लोहा शरीर में कोढ़, हृदय रोग, शूल, पथरी इत्यादि अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा करता है। इसलिये लोहे की भस्म बनाने के पहिले उसको शुद्ध कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। उसको शुद्ध करने की क्रियाएं इस प्रकार हैं:—

(१) जिस लोहे की भस्म बनाना हो उस लोह को लाकर पहले रेती से रेतवाकर बारीक बुरादा करवा लेना चाहिये। उसके बाद उस बुरादे को किसी लोहे के बरतन में डाल कर आग पर खूब लाल करना चाहिये और उस तप्त लोहे को बार २ गरम करके ४ बार त्रिफले के काढ़े में, ४ बार नींबू के रस में, ४ बार गौ मूत्र में, ४ बार बथुए के रस में, ४ बार इमली के रस में, ४ बार मट्ठे में, और ४ बार आक के दूध में बुझाना चाहिये। इस प्रकार इन सातों चीजों में २८ बार लोहे के बुरादे को लाल कर २ के बुझाने से लोहा शुद्ध हो जाता है।

(२) *लोहे की विशेष शुद्धि*—त्रिफले का क्वाथ, इमली की छाल का क्वाथ, केले की जड़ों का स्वरस और समालू की छाल का काढा इन चारों चीजों में लोहे के चूर्ण को गरम कर २ के सात-सात बार बुझाने से लोहे की विशेष शुद्धि होती है। बुझाने के लिये जहा तक बने वहा तक प्रत्येक बार नया रस लेना चाहिये।

लोहभस्म की विधियां—

(१) एक सेर गौ-मूत्र और एक सेर त्रिफला का काढा इन दो सेर को अथवा केवल दो सेर त्रिफला के काढ़े को पकावे २ चतुर्थांश रख ले अथवा और भी पका कर इतना गाढ़ा कर ले जिसमें

कलछी में लगने लगे। इसके साथ कपड़ छन किए हुए शुद्ध लोहे के चूर्ण को घोट कर टिकिया बना लें और धूप में रख कर खूब सुखालें फिर सम्पुट में रख कर गजपुट की एक आंच दें। यह लोह भस्म योगों में डालने के लिये उत्तम है। उक्त पदार्थों के क्वाथ और स्वरस में सात २ बार शोधने ही से यद्यपि लोह भस्मी भूत हो चुका है तथापि गुण वृद्धि के लिये एक गजपुट उपरोक्त विधि से देलें।

(२) निशोत, विधायरा, सोना पाढ़ा, केवटी मोथा, दोनो प्रकार की शखिनी, पठानी लौद, त्रिफला, पलाश की छाल, शीशम की छाल इन दस चीजो के जुदे २ क्वाथ में लोहे के पत्रों को अथवा बुरादे को इक्कीस बार गरम कर २ के बुझावें। इस प्रकार सब मिला कर २१० बार बुझावें।

इस प्रकार बुझे हुए लोहे को कूट कर गाढ़े कपड़े में छान कर उस भस्म से दुगना पंच-कोल (पीपल, पीपला मूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) का चूर्ण लेकर भस्म से दूनी शहद लेवें और शहद से कुछ कम या ज्यादा घी लें और उक्त १० चीजों के क्वाथ को पका कर अवलेह की भांति गाढ़ा कर ले। तत्पश्चात् इन सबको चिकने घड़े मे अथवा शुद्ध किए हुए लोहे के पात्र में भर कर एक महिने तक रख छोड़ें। सुश्रुताचार्य इसको "अय स्कृति" कहते हैं। इस अयस्कृति की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक देश, काल, अग्नि, बलाबल, आदि देख कर असमान घी और शहद के साथ देना चाहिये। मात्रा पच जाने पर नोन, तेल और खटाई छोड़ कर भोजन करना चाहिये। इसके सेवन से असाध्य कुष्ठ, प्रमेह, मेदवृद्धि, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। (रसायनसार)

(३) आधपाव शुद्ध पारद, आध पाव शुद्ध गंधक, दोनों की कज्जली करके घृत कुमारी के रस की एक भावना दें। बाद उस कज्जली में आध पाव शुद्ध कपड़छन किया हुआ लोहे का चूर्ण घोट कर मन्दार के दूध की एक भावना दे और सबकी एक टिकिया बनालें।

बाद उस टिकिया को खूब धूप में सुखा कर "नलिका डमरूयंत्र" में तालादि भस्मकारी भट्ठी पर रख कर मन्द, मध्यम, तीव्र क्रम के अनुसार ८ प्रहर तक आच दें। भट्ठी मे लगते हुए कोयलों को निकाले नहीं किन्तु उसी में सुलगते हुए छोड़ कर यंत्र को स्वांग शीतल कर लें।

फिर नलिका डमरू यंत्र की मुद्रा को खोलकर ऊपर की हाडी में से सिन्दुर रस निकाललें और नीचे की हाडी से लोह भस्म को निकाल कर पूर्व की तरह आध २ पाव पारे गन्धक की कज्जली में घृत कुमारी की और मन्दार के दूध की एक भावना दें। मन्दार का दूध नहीं मिले तो, मन्दार के पत्तो के स्वरस से भी काम चल सकता है। जब टिकिया सूख जाय तब फिर नलिका डमरु यंत्र में रखकर आठ प्रहर की आच दें। ऐसे तीन बार करने से जल के ऊपर तिरने वाली परम विशुद्ध लोह भस्म तयार हो जायगी। यह अनेक रोगों का नाश करने वाली है और लोह रसायन आदि अनेक योगों में डालने से तत्काल फायदा करने वाली है। इस प्रकार आध पाव भस्म बनाने में डेढ पाव पारद खर्च हुआ है। उसका भी सिंदूर रस मिल जायगा। (रसायनसार)

(४) कपड़ छन किया हुआ शुद्ध लोह आध पाव, नौसादर एक छटाक दोनों को खूब घोटकर

कज्जली करले। उस कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई हांडी में रखकर दम चूल्हे में कोयला सुलगा कर उस पर हाडी को रखदे। हांडी के ऊपर एक सराव रखदें। जब हांडी से धुआं निकलना बन्द हो जाय तब उसको ठण्डा होने पर निकाल लें और उस लोह में एक छटांक नौसादर डालकर घोटें। इस प्रकार तीन बार पकालें। परन्तु इस विधि में नौसादर धूम होकर उड़ जायगा। यदि नौसादर क्षार के बचाने की इच्छा हो तो उस कज्जली को नलिका डमरूयंत्र में भरकर आंच दे। स्वाग शीतल होने पर ऊपर की हांडी से नौसादर क्षार को निकालता जाय। इस प्रकार तीन बार आंच दें।

बाद तीनों गन्धक (शुद्ध आमलसार गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल) और तीनों के बराबर शुद्ध पारद चारों को घोटकर कज्जली करलें और उस कज्जली में पूर्वोक्त आधा पाव लोह को डाल कर घृत कुमारी के रस के साथ एक दो दिन तक खूब घोंटे। बाद में सबकी एक टिकिया बनाकर और धूप में सुखाकर "नलिका डमरू यंत्र" मे दो दिन (१६ प्रहर) तक आच दें।

स्वाग शीतल होने पर परम विशुद्ध लोह की भस्म को निकालले और ऊपर की हांडी में लगे हुए विचित्र (तालशिला सिन्दूर) रस को भी निकाल ले। (रसायनसार)

(५) धतूरे का स्वरस, जामुन का सिरका, आँकडे का दूध, गंवार पाठे का रस, सफेद चिरमी का क्वाथ, थूहर का दूध, ईख का सिरका, और पाखान भेद लकड़ी का क्वाथ, इन सब औषधियों के रस में शुद्ध लोहे को अलग २ घोटकर हरएक के २५ पचीस पुट देवे। अगर अधिक देने की इच्छा हो तो अधिक भी दे सकते हैं। जितने अधिक पुट दिये जायगे उतना ही लोहा अधिक गुणकारी होगा। सब पुट देने के पश्चात् जितना लोहा हो उससे दूनी पारद और गन्धक की कज्जली के साथ घी गवार के रस में घोटकर उसकी टिकिया बनाले। उन टिकियाओं को सुखाकर "नलिका डमरू यन्त्र" में रखकर जब तक गन्धक जारण हो और धूम निकलना बन्द न हो तब तक एक या दो दिन तक आंच देकर फिर उतारलें और सर्वांग शीतल होने पर खोल लें नीचे की हाडी में लोह भस्म मिलेगी और ऊपर को हांडी में सिन्दूर रस मिलेगा। (रसायनसार)

(६) *मृतोत्थापन लोह भस्म*—लोहे के चूर्ण को शुद्ध करके एक पाव भर लें। उसमें एक छटाक सफेद संखिया डालकर असल ब्राण्डी शराब में दो प्रहर तक घोटकर एक टिकिया बनाले। उसे हाडी में रखकर मुद्रा करदे और कुक्कुर पुट में २ सेर उपले कण्डे रखकर जलावें और उस पर उस हांडी को रखदें। यह स्मरण रहे कि हाडी के ऊपर उपला न रहे नहीं तो लोह भस्म में से संखिया उड़ जायगा। अग्नि हाडी के नीचे के भाग में लगना चाहिये। जब रात्रि भर में सर्वांग शीतल हो जाय तब प्रातः काल टिकिया को निकालकर फिर उसी प्रकार मदिरा और संखिया के साथ घोटकर कुक्कुर पुट की आंच दें। जब वजन बढ़ते दो ढाई सेर हो जाय तब टिकिया को डमरू यंत्र में रखकर दोपहर की आंच दें। ऐसा करने से पाव भर लोह भस्म नीचे की हांडी में रह जायगी और संखिया सब ऊपर की हांडी में आ लगेगा। तब फिर उसी उड़ी हुई संखिया में से एक २ छटाक संखिया उस लोह के साथ ब्रांडी में घोट

कर कुक्कुर पुट की आंच देते रहें। जब ५० आच पूरी हो जाय तब संखिया की जगह एक २ छटाक सिंगरफ के साथ उस लोह को ग्वाडी में घोट २ कर इसी प्रकार ५० आच कुक्कुर पुट की दें। इस प्रकार सिंगरफ के भी ५० पुट पूरे हो जाने पर पाव भर लोह भस्म की जगह आधा सेर या डेढ़ पाव भस्म जरूर मिलेगी। इस भस्म को घी गवार के रस में घोटकर गजपुट में देने से हींगलू के समान लाल भस्म तैयार होगी तथा संखिया और हींगलू की मिली हुई हीरे के समान चमकती हुई जो डलियें डमरू यंत्र की ऊपर की हाडी से निकलें उनको समान भाग गन्धक में घोटकर कज्जली बनालें और उस कज्जली को एक आतशी शीशी में रखकर बालुका यत्र से मल्ल सिंदूर बना लें।

यह लोह भस्म तथा मल्ल सिंदूर ऐसे उग्र वीर्य हैं कि मरते हुए आदमी को भी तत्काल प्राण दान देते हैं। रसायन सार के कर्ता श्याम सुन्दराचार्य लिखते हैं कि जिस आदमी को सर्प काटले और मुंह में झाग आने लगें तथा जो मूर्छित होकर गिर पड़े उसको यह भस्म एक रत्ती की मात्रा में पान के रस या अदरख के रस के साथ देने से मूर्च्छा खुल जायगी और वह आदमी बच जायगा। इस लोह भस्म को पचामृत पर्पटी आदि में डालने से चन्द्रोदय के समान ही चमत्कार दिखलाई पड़ता है और यह मल्लसिंदूर भी सन्निपात, ज्वर, हैजा इत्यादि रोगो में कभी पीछा पाव नहीं डालता। ये दोनों रस बहुत गरम हैं। इसलिये अगर इनको ठण्डा करना हो तो एक महिने तक कांच की शीशी में भरकर केले की जड़ में गाड़ दे जिससे इनका उष्ण वीर्य कम हो जायगा।

लोह भस्म का महावाजीकरण योग—

शुद्ध किया हुआ असली फौलाद बुरादा २० तोले लेकर उसमें एक तोला संखिया और १॥ माशे भीमसेनी कपूर डालकर गवार पाठे के रस में १२ घण्टे तक खरल करना चाहिये। उसके पश्चात् इसकी टिकिया बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर उन्हे मिट्टी के कुल्लड़ में रखकर उस पर ढकना ढक कर कपड़ मिट्टी करके, एक गड्ढे में ५ सेर उपले कण्डे भरकर उनके बीच में कुल्हड़ को रख कर आग लगा देना चाहिये। जब आग ठण्डी हो जाय तब उस कुल्हड़ को गड्ढे में से निकाल कर फौलाद की भस्म को उसमें से बाहर निकाल लेना चाहिये।

दूसरी बात—उसी भस्म को एक तोले असली तबकिया हरताल और १॥ माशे भीमसेनी कपूर के साथ घी गवार के रस में घोटकर, ऊपर की तरह ५ सेर कण्डों की आंच में फूंक देना चाहिये।

तीसरी बात—उसी भस्म को एक तोले आवला सार गन्धक और डेढ़ माशे भीमसेनी कपूर के साथ घी गवार के रस मे घोटकर उपरोक्त विधि से ही फूंकना चाहिये।

चौथी बात—उसी भस्म को निकाल कर एक तोला शुद्ध अष्ट संस्कारित पारा और १॥ माशे भीमसेनी कपूर के साथ घी गवार के रस में घोटकर फूंक देना चाहिये।

ये चार पुट हुए। इसके बाद फिर संखिया का पुट प्रारंभ होना चाहिये। इस प्रकार एक के बाद एक इन चारों चीजों के चार २ पुट देना चाहिये। ऐसे कुल १६ पुट लगने के बाद असली फौलाद की भस्म तयार हो जायगी।

इस फौलाद भस्म को एक लोहे की कढाई में डालकर तोल में जितनी भस्म हो उतने ही वजन की सूखी वीर बहूटी लेकर कढाई में उस भस्म पर बिछा देना चाहिये और नीचे आग जला देना चाहिये जब सारी बीर बहूटी जल जावें तब उनको हवा से उड़ा देना चाहिये। बीर बहूटी उड़ जावेगी और उनकी टागे रह जावेगी। इन टागो को होशियारी से निकाल लेना चाहिये। (चि० चं०)

सेवन विधि—

इस भस्म की मात्रा चार चावल से एक रत्ती तक की है। एक मात्रा भस्म को लेकर मक्खन या मलाई के साथ खाकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पीना चाहिये। पथ्य में अनार, सेव, अंगूर, घी, शक्कर, इत्यादि तरावट और पौष्टिक पदार्थ खाना चाहिये। लाल मिरच, तेल, खटाई, नमक, स्त्री प्रसग दिन मे सोना और रात में जागना मना है।

इस भस्म के सेवन से नया खून पैदा होता है। २१ दिन में चेहरा लाल सुर्ख हो जाता है। यह भस्म अत्यन्त कामोद्दीपक है। ६-७ मात्रा खाते ही कामवासना बलवान होने लगती है और ४० दिन में पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। मूत्रमेह, पाडु और यकृत के रोगियों के लिये भी यह अक्सीर चीज है। ६-७ दिन में ही आदमी का वजन ४-५ पौंड बढ जाता है।

यह नुसखा सैकड़ो, हजारों आदमियों पर अजमाया जा चुका है और इसके विज्ञापन से कुछ लोगों ने हजारों, लाखों रुपयों का फायदा भी उठाया है।

लोह रसायन—

एक छटाक शुद्ध पारा, दो छटांक शुद्ध गंधक, तीन छटांक लोह की कोमल भस्म, इन तीनों चीजों को घृत कुमारी के साथ तीन दिन घोट कर गोला बनाकर सुखा लें। इस गोले को रेंडी के पत्तों से लपेट कर, ताम्बे के पात्र में रखकर इस पात्र को एक महीने तक धान की राशि में गाड दें। धान की राशि नही मिले तो गेहूँ, जौ की राशि के बीच में रख दें। एक महीने के बाद ताम्र पात्र में से गोले को निकालकर इतनी चीजों के रसों की तीन तीन भावना देकर सुखा ले।

मीउडी (संभालू), अडूसा, केला की जड़, गिलोय, अनारदाने, नील के पत्ते, इतनी चीजों का स्वरस व त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) शतावर, इनका क्वाथ, नींबूका रस, खिरेटी, कंघई बबूल की पत्ती (पापरा) गोखरू, बिजैसार, ढाक की छाल, गोरखमुंडी, चित्रक, पियावांसा, (कटसरैया) इन औषधियों में जो गीली मिले उनका स्वरस और जो सूखी मिलें उनका क्वाथ लेकर तीन तीन भावना दें। इसको लोह रसायन कहते हैं।

इस रसायन को निरोग पुरुष पुष्टि के लिये तीन महीने तक शहद और घी के साथ खाया करें और वृद्ध पुरुष वृद्धावस्था के दूर करने के लिये सेवन किया करे। अनुकूल अनुपान के साथ इसका सेवन करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं। इसकी पूर्ण मात्रा एक माशे की है। (रसायनसार)

इसको मधु, पीपल के साथ खाने से मंदाग्नि, कफ रोग, खासी, वात व्याधि, पाण्डुरोग, श्वास दूर

हो जाते हैं और शहद या मुलहटी के साथ खाने से संग्रहणी, मूत्रविकार, वात रक्त रोग, अण्ड वृद्धि दूर हो जाते हैं।

इसके सेवन करने से बल और कान्ति बढती है। यह रसायन पौष्टिक है, आयु को हितकारी है। इस के सेवन करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह काशी फल, तेल, खटाई, उर्द के पदार्थ, मदिरा सेवन न करे और ब्रह्मचर्य पाले।

लोह भस्म गुण—

लोह भस्म के सेवन करने से बल, वीर्य, आयु बढती है और वात, पित्त, कफ-जन्य अनेक रोग नष्ट होते हैं। यदि इसका चिरकाल तक सेवन किया जाय तो कामदेव की वृद्धि होती है।

लोह भस्म के सेवन करने वाले पुरुष के पास कोई रोग नहीं आते और यह मनुष्यों को बहुत ताकत देने वाली चीज है। अधिक क्या कहें उचित अनुपान के योग से यह सभी रोगों को जड़ से उखाड़ देने वाली वस्तु है।

अशुद्ध लोहा-भस्म के विकारों की शान्ति के उपाय--अगर कोई अशुद्ध लोहा भस्म खाकर रोगी हो जाय तो उसे विडंग के चूर्ण में अगस्तिया के रस की भावना देनी चाहिये। फिर उस चूर्ण को अगस्तिया के रस के साथ गले से उतार कर धूप में बैठना चाहिये। पसीनों के द्वारा सारे विकार निकल जायगे।

उपयोग—

(१) *शरीर की पुष्टि को*—पीपल के चूर्ण और शहद के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।
(२) कफ *रोग नाशार्थ*--पीपल के चूर्ण और शहद के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।
(३) *रक्त पित्त*— मिश्री के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।
(४) *बल वृद्धि के लिये*—साठी की जड़ गाय के दूध में पीस कर उसमें लोहा भस्म मिलाकर खाना चाहिये।
(५) *पांडु रोग*— साठी के रस के साथ लोह भस्म सेवन करना चाहिये।
(६) *प्रमेह में* · हरी पीपलो के चूर्ण और शहद के साथ खाना चाहिये।
(७) *मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में*-- शिलाजीत के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।
(८) *वात ज्वर में*— अदरख के रस, घी और शहद के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।
(९) *सन्निपात ज्वर में*— अदरख के रस और गोल मिर्च के साथ लोह भस्म खाना चाहिये।
(१०) *पित्त ज्वर में*—अदरख के रस, लौंग के चूर्ण और शहद के साथ लोहाभस्म मिलाकर खाना चाहिये।
(११) *तेरह सन्निपातों में*–अदरख के रस में पीपर पीस कर उसमें लोहा भस्म खाना चाहिये।
(१२) ८० *वायु रोगों में*-निर्गुंडी के रस और सोंठ के चूर्ण के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।
(१३) ४० *पित्त रोगों में*— मिश्री के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(१४) २० कफ रोगों में— पीपल के चूर्ण के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।

(१५) सन्धि रोगों में— दाल चीनी, इलायची और तेजपात के चूर्ण के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(१६) प्रमेह में— त्रिफला के चूर्ण के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।

(१७) वात रोगों में—तुलसी की पत्ती, मिर्च के चूर्ण और घी के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(१८) पांचों खांसियों में— अडूसे के रस के संग लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(१९) मन्दाग्नि में-दाख,पीपल के चूर्ण और शहद के साथ लोह भस्म सेवन करना चाहिये।

(२०) वीर्य और कांति की वृद्धि में-नागर बेल के पान के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२१) शरीर निरोग करने को-त्रिफला और शहद के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२२) शरीर पुष्टि को— छोटी हरड़ और मिश्री के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२३) ८० शूल वात नाशार्थ— घी और हींग के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२४) जीर्ण ज्वर में— पीपल और शहद के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।

(२५) श्वास में— लहसन और घी के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२६) शरीर के शीत रोग नाशार्थ— सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।

(२७) प्रमेह रोग में— पान और मिर्च के साथ लोहा भस्म सेवन करना चाहिये।

(२८) सन्नीपातज शिरोरोग में— त्रिफले के चूर्ण और मिश्री के साथ लोहा भस्म खाना चाहिये।

(२९) कफ की खासी में— लोहा भस्म पीपल पान या शहद में लेना चाहिये।

(३०) जाड़े के ज्वर में—मुनक्का भूनकर, उसमें लोहा भस्म रखकर ज्वर चढ़ने से एक घण्टा पहिले खाना चाहिये।

नोट—अगर खुश्की हो, तो कासनी के पत्ते फाड़कर, उस में शिकंजबीन दारमी डालकर, उसके साथ लोहा भस्म लेना चाहिये।

(३१) सास में—लोहा भस्म पीपल के साथ खाना चाहिये।

(३२) बुखार और खुश्की में— लोहा भस्म शर्बत नीलोफर के साथ सेवन करना चाहिये।

कॉफी (कहवा)

नाम—

हिन्दी— काफी। यूनानी—कहवा। मराठी—बुंद। लेटिन—Coffea Arabica. (काफिआ अरेबिका।)

वर्णन—

काफी हिन्दुस्थान का एक सुप्रसिद्ध पेय पदार्थ है। चाय के बाद यही पदार्थ उत्तेजक पदार्थ की तरह विशेष रूप से पिया जाता है। हिन्दुस्तान में इसकी खेती भी बहुत होती है। इस पौदे का मूल उत्पत्तिस्थान अबीसीनिया और सूडान है। मगर अबतो यह हिन्दुस्तान की भी घरेलू चीज हो गई है।

कॉफी के पौधे झाड़ीनुमा, छोटे २ करीब ८ फीट तक लम्बे होते हैं। ये बगीचों में पैदा होते हैं; इनकी खेती विशेष तौर से हिन्दुस्तान के दक्षिणी भाग में और लंका में होती है। इस पौधे के पत्ते १२.५ से लेकर १८ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इन पत्तों में ६ से लगाकर १० तक नसें होती हैं। इसके बीज गेहूँ के दाने से कुछ बड़े होते हैं। इसका आकार छोटी खजूर की गुठली की तरह होता है। इन बीजों में एक नाजुक काला परदा होता है। औषधि के रूप में इसके पत्ते और बीज उपयोग में लिये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कॉफी के पत्ते ज्वर को नष्ट करने वाले होते हैं। इसके बीज हृदय को बल देने वाले, हृदयोत्तेजक, नाड़ी और मज्जा तन्तुओं को उत्तेजना देने वाले, मूत्र निस्सारक और जीवन-विनिमय क्रिया (धातु परिवर्तक) सुधारनेवाले होते हैं।

इसके आधा तोले पत्तों का काढा करके देने से ज्वर और ज्वर की शिथिलता में लाभ होता है।

पाचन-क्रिया और जीवन विनिमय-क्रिया विगड़ने पर शरीर की सन्धियों और मूत्र पिंड में एक प्रकार का क्षार जम जाता है जिससे सन्धिवात, गठिया तथा और भी कई प्रकार की व्याधियां खड़ी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में भोजन के पश्चात् इसका काढ़ा देने से लाभ होता है।

कॉफी के बीजों को घी के अन्दर भूनकर उनका चूर्ण कर उस चूर्ण का काढ़ा बनाकर उसमें दूध और शक्कर मिलाकर देने से नाड़ी की शिथिलता मिटकर वह स्वाभाविक रूप से चलने लगती है। यह काढा उत्तम, हृदय बलकारक और हृदयोत्तेजक है। हृदय के ऊपर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष रूप में देखी जाती है। ज्वर के अन्दर अथवा और किसी दूसरे कारण से पैदा हुई हृदय की शिथिलता में इस काढ़े का प्रयोग करने से लाभ होता है। हृदय रोग की वजह से पैदा हुए उदर रोग में (हृदयोदर) में इसका काढा देने से हृदयोदर के कारण शरीर मे जमी हुई जहरीली सामग्री पेशाब के द्वारा बाहर निकल जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह खून के जोश और पित्त की तेजी को कम करती है। सुद्दे खोलती है, खिलतों की खराबी को मिटाती है। पित्त के बुखार, चेचक और खसरा में लाभदायक है। खून के फिसाद से उछली हुई पित्ती को मिटाती है। पीनस में लाभदायक है। कब्ज को मिटाती है, मूत्रल है, कफ को खासी को दूर करती है। बदन की थकावट को मिटाती है और स्फूर्ति पैदा करती है।

इन सब बातों के अतिरिक्त इसमें एक गुण यह है कि जिसकी आंत पोतों में आकर अटक जाय उसके लिये यह बड़ी लाभदायक है। आधा पोंड कहवे को पीसकर खौलते हुए पानी में डाल दिया

जाय और उसमें से एक २ प्याला हर १५ मिनिट में उस शख्स को पिलाया जाय, जिसकी आंत पोते में आकर अटक गई हो। खजाइनुल अदविया के लेखक लिखते हैं कि मइर साहब ने सन् १८५८ में इसका इसी प्रकार इस्तेमाल किया। परिणाम यह हुआ कि छठा प्याला पिलाते ही मरीज़ की आत ऊपर चढ गई। डरीडन साहब ने भी इस तरकीब को अजमाया और उनके मरीज़ ने इसका नवां प्याला पीने पर आराम पाया। इनके सिवाय और भी कई डाक्टरों ने इस बात की अजमाइश की और उन्हे भी यह तजुर्बा ठीक साबित हुआ।

रासायनिक विश्लेषण —

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस वनस्पति में केफिन (Caffeine), एडेनाइन (Adanine), झनाइन (Zanthine), अलके लॉइड्स (Alkaloids), हायपो झनाइन (Hypo zanthine), और गुएनोसाइन (Guanosine) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

इन पदार्थों में केफीन नामक पदार्थ सब से प्रधान है जिसने सारी दुनियाँ का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया है। यह एक महत्व का उपक्षार है। इसके गुण रक्ताभिसरण क्रिया और केंद्र के स्नायु मण्डलों को उत्तेजना देने वाले हैं। यह मूत्र निस्सारक भी है। इन्हीं उपरोक्त गुणों के कारण चिकित्सा शास्त्र में इसकी काफी उपयोगिता है।

इसका प्रधान असर उत्तेजक है और यह हृदय, श्वास प्रश्वास क्रिया, स्नायु मण्डल, मेरुदंड, आमाशय, गुर्दा तथा रक्त की क्रिया पर उत्तेजक प्रभाव डालती है। इसलिये जब कभी इन अंगों से सम्बन्धित कोई रोग हो और वहां किसी उत्तेजक, प्रभावशाली औषधि की आवश्यकता हो तो इससे अच्छा लाभ उठाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें पसीना लाने और पेशाब बढ़ाने का गुण भी विद्यमान है। यह स्टिम्यूलेंट भी है। इसीलिये यह सारी क्रिया को स्टिम्यूलेट करने के साथ २ पाचन क्रिया में सहायक होती है और फिर रक्त में मिल जाती है। रक्त के साथ मिलकर यह हृदय की पेशियों पर अपना उत्तेजक प्रभाव डालती है जिसके फल स्वरूप हृदय की गति (Cystol) का प्रभाव अधिक हो जाता है और (Diastol) का प्रभाव घट जाता है। इससे रक्त दबाव (Blood Pressure) बढ़कर रक्त संचालन क्रिया (Blood Circulation) में सहायक बन जाता है।

किन्तु यही अधिक मात्रा में देने से हृदय में आक्षेप पैदा करती है जिससे हार्ट पेरेलाइज हो जाता है।

श्वास प्रश्वास की क्रिया पर भी यह अपना उत्तेजक असर डालकर उसे तेज कर देती है। दिमाग के ऊपर इसका असर अफीम के असर से ठीक विपरीत होता है। इसलिये जब कभी अफीम के सेवन से नींद आती हो, मेधा और स्मरण शक्ति में ह्रास मालूम होता हो, शरीर में शिथिलता प्रतीत होती हो तो इसके प्रयोग से ये सब उपद्रव दूर हो सकते हैं। इसके प्रभाव से शरीर और दिमाग की शिथिलता और थकावट दूर हो जाती है।

गुर्दे (Kidneys) पर इसका प्रभाव मूत्रल होता है। मूत्रल होने के कारण जलोदर (Dropsy) में भी केफ़ीन का व्यवहार किया जाता है और यह सर्वांग शोथ (Anasarica) उदरशोथ (Ascites) और फुस्फुस आवरण शोथ (Hydrothaix of Pluerisy) में समान रूप से लाभ पहुँचाता है क्योंकि इन रोगों में रक्त का जलीय अंश बढ़कर उसमें रुकावट आ जाती है। केफ़ीन अपने मूत्रल और स्वेदल प्रभाव से मूत्र और पसीने के जरिये इस रुकावट को दूर कर देता है। किन्तु जब हृदय की गति तीव्र हो तब इसको व्यवहार करना हानि कारक होगा क्योंकि उस समय इसका उत्तेजक प्रभाव और भी उत्तेजना पैदा करेगा।

केफ़ीन सूर्यावर्त (Hemicurania) और आधासीसी (Migrine) रोग में भी महान उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे दर्द फौरन दूर हो जाता है। सिरदर्द और दूसरे दर्दों के लिए इसको (Aspirine) एस्प्रिन के साथ मिलाकर विशेष रूप से व्यवहार किया जाता है। इसके मेल से एस्प्रिन में हृदय की गति को अव्यवस्थित करने का जो असर रहता है वह मिट जाता है और केफ़ीन की ताकत भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार कुचले के सत्व के साथ (Strychnuine) इसका व्यवहार किया जाता है और इससे भी इसकी शक्ति बढ़ती है। इसके सेवन से दमे के दौरे का वेग भी मिट जाता है। अफ़ीम के विष को दूर करने में भी इसका बड़ा सफल और सुन्दर व्यवहार होता है।

इसके लगातार व्यवहार से इसका व्यसन पड़ जाता है, अनिद्रा रोग पैदा हो जाता है। खून का दबाव, दिल की खराबी, इत्यादि बीमारियां पैदा हो जाती हैं। जिस प्रकार केफ़ीन अफीम के विष और उपद्रवों को दूर करता है। उसी प्रकार केफ़ीन के विष और उपद्रवों को नाइट्रोग्लिसरिन (Nitro Glycerine) या ट्रिन्ट्रिन (Trintrine) नामक दवाएं दूर करती हैं।

केफ़ीन की मात्रा १ से ५ ग्रेन तक है और केफ़ीन सायट्रेट (नींबू के रस सहित केफीन) की मात्रा २ से १० ग्रेन तक की है।

कामरूप

नाम—

संस्कृत—कामरूप, कटलक, शुद्र, मदिरिद। हिन्दी—कामरूप, गिनबल, जिर। मराठी—नादरूख, तुनिवृक्ष। कुमायू—अंजन, वारि। तामोल—कलिचि। तेलगू—विलाजुवि, नंदिरेका। लेटिन—Ficus Retusa फिकस रेटुसा

वर्णन—

यह वृक्ष हिमालय के पूर्व भाग में कमायूं से बंगाल तक आसाम, दक्षिणी भारत और दक्षिणी प्रायद्वीपों में पाया जाता है। इसके वृक्ष बड़े होते हैं। इस वृक्ष के पत्ते पीपल के पत्तों के समान किंतु उनसे कुछ छोटे होते हैं। इस झाड़ की छाया बहुत सघन होती है, इसलिये यह वृक्ष सड़कों के किनारे भी लगाया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत — आयुर्वेदिक मत से यह औषधि तीक्ष्ण, कड़वी, पौष्टिक, शीतल, लघु, कामोद्दीपक, ग्राही, त्रिदोष नाशक और व्रण, कुष्ठ, रक्त पित्त, श्वेतकुष्ठ, मस्तक पीड़ा, रक्त विकार और जलन में लाभदायक है।

इसकी जड़ के छिलके और पत्तों को तेल में उबाल कर, उस तेल को घाव और रगड़न पर लगाने से बहुत लाभ होता है। आमवात जनित सिरदर्द में इसके पत्ते और छाल दोनों का पुल्टिश बनाकर काम में लिया जाता है।

यूनानी मत —इसकी जड़ या जड़ की छाल या पत्ते तेल में औटाकर लगाने से जखम भरते हैं। चोट का दर्द मिटता है इसके तेल के मालिश करने से नारू का दर्द रफा होता है।

इसके पत्ते और छाल का पुल्टिश बनाकर बाधने से बादी का सर दर्द मिट जाता है।

इसके और तुलसी के पत्तो का रस बराबर लेकर उसमें आधा घी मिलाकर पिलाने से बादी से होनेवाला पेट का दर्द आराम होता है। गरम ईंट पर इसके रस को छिड़क कर बफारा देने व सेंक करने से बादी का पेट का दर्द मिटता है। (ख० अ०)

उपयोग—

योनि कन्द —कामरूप की छाल और लोध दोनों को कूट कर, उनको पानी में पका कर, लेप करने से योनिकन्द में लाभ होता है।

अण्ड वृद्धि —कामरूप के पत्तों का रस और काली तुलसी के पत्तो का रस निकाल कर, दोनों को पाच २ तोला लेकर, उनमें ५ तोला घी डालकर, आग पर हलकी आच से पकाना चाहिये। जब रस जल कर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार लेना चाहिये। इस प्रकार २१ बार इन दोनों वनस्पतियों के रस में उस घी को सिद्ध करना चाहिये। इस घी को दिन में चार पाच बार अण्डकोष पर मालिश करके गरम ईंट से सेकना चाहिये।

यकृत रोग —यकृत के रोगों को दूर करने में इस औषधि की बडी तारीफ है। इसकी छाल के १ तोला ताजा रस को दूध के साथ सेवन करने से और उपरोक्त घी की पेट पर मालिश करके, गर्म ईंट से सेक करने से, थोड़े ही दिनो मे यकृत के रोग मिट जाते हैं। (वनौषधि गुणादर्श)

कामलता

इस वनस्पति (कामलता) का वर्णन इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड के पृष्ट २५१ में इश्क पेचा के प्रकरण में दिया गया है।

कामो

नाम—

हिन्दी—कामो, हरिया। बगाली—कामो, भोरा, भारा। बम्बई—काढल, हरिया।

कनाड़ी— काडल। सिंध--कामो, किमरो, कुमरो। मराठी—कांडल। तामील— कांडल। तेलगू— अदवी पेना, मजिपोना, उपूपोना। उड़िया--राई, रोही। लेटिन— Rhizophora Mucronata रिझाफोरा मुक्रोनेटा।

वर्णन --

यह वनस्पति भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया के गरमप्रान्तों में और सीलोन के सामुद्रिक किनारों पर पैदा होती है। यह एक छोटी जाति का झाड़ीदार वृक्ष होता है। इसके पत्ते अण्डाकृति, नोक दार होते हैं। इसके फूल सुगन्धित, आच्छादन पत्र पीले और नरकेसर मोटी और बड़ी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल रक्तश्राव और पेशाब में रक्त जाने की बीमारी को दूर करने के लिये दी जाती है।

रीड़ के मतानुसार इसकी छाल मधुमेह रोग में उपयोगी होती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह संकोचक और मधुमेह रोग में उपयोगी है। इसमें टेनिन्स पाये जाते हैं।

कायफल

नाम —

संस्कृत—कटफल, कुमुद, कुमुदिका, सोमवृक्ष, उग्र गन्ध, रोहणी, श्री पर्णिका। हिन्दी-- कायफल। बंगाल—कायफल,सात्सारिला। बम्बई—कायफल। मराठी—कायफल। गुजराती –कारि-फल,कायफल। अरबी – औदुल, कन्दोल। तेलगू— कैदारियम। तामील —मरुदम। फारसी—दर्शि-शान। लेटिन— Myrica Nagi (मारिका नेगी)

वर्णन—

यह एक छोटे कद का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष है। इसका छिलटा खुरदरा बादामी और भूरे रंग का होता है। इसके पत्ते गुच्छों में लगते हैं। उनकी लम्बाइ ७'५ से १२'५ सेंटि मीटर तक होती है और चौड़ाई २ ५ से ५ सेण्टिमीटर तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल गरम, कड़वी, कसेली और तीखी होती है। यह वात, कफ, श्वास, ज्वर, मूत्र सम्बन्धी बीमारियां, बवासीर, वायु नलियों के प्रदाह, गले की शिकायतें, खून की कमी, जीर्ण आमातिसार और व्रण में बहुत लाभदायक है। सिर दर्द में इसको सूंघने से लाभ होता है। मगर यह बहुत उग्र है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। नेत्र रोगों में इसका अंजन बहुत लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। सरदी के सर दर्दों को दूर करता है, पट्ठों को कूवत देता है और बवासीर के मस्सों में लाभ पहुँचाता है। इसको दालचीनी के साथ खाने से पुरानी खांसी, चौथिया बुखार, बवासीर और धातु पतन की बीमारी में लाभ होता है। इसके काढ़े के कुल्ले करने से दांत और मसूड़े मजबूत होते हैं। किसी तेल में इसको मिलाकर कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है।

अगर किसी को सरदी की वजह से मेदे का दर्द हो, और किसी दवा से न जाता हो तो इसको ४ माशे लेकर और पानी में जोश देकर मिश्री मिलाकर पीने से आराम होता है।

इसको सिरके के अन्दर पीसकर, दांतों और मसूड़ों पर मलने से दांत और मसूड़ों का दर्द दूर होता है। इसको पानी में पीसकर, गरम करके लेप करने से गाठ आराम हो जाती है।

यह तिल्ली और जिगर को नुकसान पहुँचाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा और बबूल का गोंद उपयोगी है।

कायफल के फूलों का तेल दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होता है। इसके लेप से सूजन मिट जाती है। इसको नाक में टपकाने से आधाशीशी, सर दर्द और नजला दूर होता है। इसके मालिश से लकवे में भी लाभ होता है। यह दिमाग के सुद्दों को खोलता है। कामेंद्रिय पर इसको मलने से नपुंसकता में लाभ होता है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई का कथन है कि उत्तर हिन्दुस्तान में कायफल एक घरेलू औषधि की तरह व्यवहार किया जाता है। कफ और वात के द्वारा पैदा हुए रोगों में यह विशेष रूप से दिया जाता है। सरदी के सिर दर्द को मिटाने और छाती के अन्दर जमे हुए कफ को निकालने में इसका सफलता पूर्वक उपयोग किया जाता है। दमा और कफ के रोगों में इसका क्वाथ देने से बड़ा लाभ होता है। हृदय रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। अग्निमांद्य, अरुचि, बदहजमी और बदहजमी से पैदा हुई दस्तों को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। बवासीर के रोग मे कायफल खिलाया भी जाता है और इसके तेल का लेप भी किया जाता है। मासिक धर्म के कष्ट में कायफल, केशर और काले तिल के साथ कूटकर गुड़ मे मिलाकर देते हैं। इस औषधि के देने से थोड़ी देर बाद रोगी को भोजन दिया जाता है नहीं तो उसका जी घबराता है। इस रोग में यह औषधि बहुत उत्तम साबित हुई है। कायफल की बत्ती को योनि मार्ग में रखने से गर्भाशय की संकोच-विकास क्रिया बढ़ती है और मासिक धर्म ठीक होने लगता है।

सरदी के सिर दर्द में और चक्कर आने में इसका चूर्ण लाभ दायक है। इसका तेल सधिवात और व्रणों पर लगाने के काम में आता है। इसकी छाल का चूर्ण और क्वाथ व्रण शुद्धि और व्रणरोपण के लिये उपयोगी है। चोट, सूजन, मार, वगैरह पर कायफल के चूर्ण को पानी में पीसकर गरम करके लेप किया जाता है। जिससे रक्त बिखर कर सूजन नष्ट हो जाती है। हैजा या किसी दूसरी बीमारी मे जब

हाथ पांव ठण्डे पड़ जाते हैं तब कायफल और सूंठ के चूर्ण को मिलाकर उन अंगो पर मलने से फौरन गर्मी पैदा होती है।

कायफल और अध्रसी रोग— काशी निवासी रसायनाचार्य स्वर्गीय वैद्य श्यामसुन्दराचार्य लिखते हैं कि जब मैं रसायन सार ग्रंथ को छपाने में लगा था तब एकाएक मुझे अध्रसी नामक वायु का रोग हो गया और कमर से लेकर पैर तक सारा हिस्सा बेकार हो गया। कई नामांकित डाक्टर और वैद्यों के पास इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ और मेरा इरादा दुखी होकर उस पैर को कटा डालने का हुआ। पर इतने में सौभाग्य से नेपाल सरकार के राजवैद्य श्री पुरुषोत्तमदासजी ने मुझे एक उपाय बताया जिससे मुझे पूरी तरह से आराम हो गया। वह उपाय यह है—

आधा सेर कायफल को कूट कर तार की चलनी में छान लें। बाद एक सेर कड़वा तेल कढाई में डालकर चूल्हे पर मन्दी २ आंच से पकावे और एक २ तोला कायफल के चूर्ण को डालते जाय। इस प्रकार ३।४ घण्टे में सब चूर्ण को जला दें। बाद में इस तेल को कपड़े में छान लें। जब कपड़ा स्पर्श करने लायक ठण्डा हो जाय, तब दोनो हाथों से दबाकर तेल को निचोड़ लें। बाद में कपड़े के किट्ट को चिकनी हाडी में भरकर रख छोड़ें और तेल को भी चिकनी हाडी में भर दे। जब तेल का मल हाडी के तल भाग में बैठ जाय, तब नितरे हुए तेल को बोतल में भरकर रख छोड़ें। और हाडी में की गाद को उसी किट्ट मे मिलादे। जिस अंग में जहां पर पीड़ा हो उस अग पर दो घण्टे तक नौकर से यह तेल मलवावे। परन्तु सुलगे हुए कोयले पास में रक्खे रहे। उनपर अपने हाथों को गरम कर २ के नौकर मालिश करे। दो घण्टे के बाद उस हाडी के किट्ट को कढ़ाई में गरम करके कपड़े की पोटली बनाले। उस पोटली से धीरे २ अंग को सेके। जब कीट सहने योग्य गरम रहे, तब उसी कपड़े पर उसे बिछाकर उस अङ्ग के ऊपर बाध दे। इस प्रकार रोज तेल से मालिश करना और किट्ट से सेकना। उस किट्ट को फैकने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसी किट्ट से रोज सेका करे। इस कायफल के तेल में थोड़ी अफीम जला ली जाय तो और भी अच्छा है।

आधा सेर कायफल में ४ सेर पानी डालकर क्वाथ करले। जब जलते २ दो सेर रहजाय, तब क्वाथ को छानकर दो सेर घी में मिलाकर मन्दी २ आंच से घी को पकावे, जब क्वाथ जल जाय तब घी को छानकर रख छोड़े। इस घी का स्वाद वैसा ही बना रहता है। उपर की दवा के साथ इस घी को रोगी खाया करे। यदि अधिक खाने की इच्छा नहीं हो तो २।३ तोले तो अवश्य ही खाया करे। यह भी बहुत उत्तम चीज है। इसके साथ योगराज गुगल भी खाया करे। ३।४ दिन में ही चमत्कार दीख पड़ता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कायफल, सोंठ और दालचीनी का काढ़ा प्राचीन वायुनलियों के प्रदाह, श्वास, खासी और जुकाम में बहुत उपयोगी है। आमातिसार और रक्तातिसार में भी यह संकोचक वस्तु के बतौर दिया जाता है। यह सकोचक, उत्तेजक, पेट के अफरे को दूर करने वाला और कृमिनाशक है।

उपयोग—

जुकाम—कायफल की छाल को महीन पीसकर सुंघाने से छींके आकार जुकाम मिटता है, मगर यह औषधि उग्र है, छींके बहुत जोर से आती हैं। इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये।

दन्त पीड़ा—कायफल को सिरके में पीसकर लगाने से मसूड़े और दांतों की पीड़ा मिटती है और दांत मजबूत होते हैं।

कान की पीड़ा— कायफल को तेल में पकाकर उसकी बूंदे कान में डालने से कान की पीड़ा मिटती है।

दमा—कायफल का क्वाथ पिलाने से दमे में लाभ होता है।

अतिसार— कायफल और बेलगिरी के क्वाथ को देने से अतिसार मिटता है।

घाव— इसका चूर्ण बिगड़े हुए घावो पर छिड़कने से और इसके हिम से घाव को धोने से घाव जल्दी भर जाते हैं।

बवासीर— इसको महीन पीसकर घी में मिलाकर लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

गले के रोग—इसको पान में रखकर चबा २ कर रस उतारने से गले के रोग मिटते हैं।

अपस्मार—कायफल, नक छिकनी और कटेरी के सूखे फल छः २ माशे और तमाखू ४ तोले, इन सबका कपडछन चूर्ण बनाकर दो माशे नित्य सूंघने से अपस्मार मिटता है।

नपुंसकता—इसको भैंस के दूध में पीसकर रात को कामेंद्रिय पर लेप करना चाहिये और सवेरे धो डालना चाहिये। ऐसा कई दिनों तक करने से नपुंसकता मिटती है।

वन्ध्यत्व—कायफल और मिश्री दोनों को समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण कर, उस चूर्ण मे से ७॥ माशा चूर्ण वन्ध्या स्त्री को मासिक धर्म से शुद्ध होने के पीछे लगातार तीन दिन तक देने से वह गर्भ धारण करने के योग्य हो जाती है। मगर इस औषधि से जी बहुत मिचलाता है। इसलिये कमजोर प्रकृति की स्त्रियों को नहीं देना चाहिये।

कारी

नाम—

संस्कृत—कारी, भाडीर, वरही, वरहा, भाडिरा, कुकुरा, शुक वरहा, शुकच्छदा इत्यादि। हिन्दी–कारी, भांट, घटो, शुनेरा। मराठी—करि, भदिरा, शुनोरा। बंगाली—भाट, घेट्टू। पंजाबी—वरंगु, कलीवसूनी। देहरादून—कारू। नेपाल—चितु। तामील—पेरूगिल्ले, करूकनि, वेलिकनि। तेलगू–बसवन पाहू, सेगड़ा, गुरुजा, मण्डुक ब्राह्मी। लेटिन – Clerodendron Infortunatum क्लेरोडेन्ड्रोन इनफारच्यूनेटम।

वर्णन—

यह बड़े पत्तों का झाड़ीनुमा पौधा ३ से ४ फीट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते गोलाकार, बालिश्त भर लम्बे, दोनों तरफ रुएंदार और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद, लम्बे और सुगन्ध युक्त होते हैं। इनका पराग केशर मुलायम होता है। इसके पत्ते दुर्गन्धियुक्त, स्वाद में बहुत कड़वे और कुछ कसैले होते हैं। औषधि में इसके पत्ते और जड़ें उपयोग में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, तीक्ष्ण, सुगन्धयुक्त, पौष्टिक, कामोद्दीपक, ज्वरघ्न और कृमि नाशक होती है। पित्त, कफ और त्रिदोष में तथा धवल रोग, प्यास, जलन, रक्तविकार और मुंह की दुर्गन्ध पर यह लाभदायक है।

यह एक मूल्यवान और गुणकारी, कटु पौष्टिक, उत्तम आनुलौमिक, पित्तकारक, कृमिघ्न और ज्वरनाशक वनस्पति है। इसके सूखे हुए पानों के चूर्ण की मात्रा २ से ५ रत्ती तक होती है। इसका धर्म चिरायते के समान होता है। पाली अर्थात् तिजारी बुखार में यह बहुत गुणकारी होती है। इसके पत्तों के रस की पिचकारी देने से बच्चों के गुदास्थान के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

इसके पत्ते और इसकी जड़ें अर्बुद एवम् चर्म रोगों में बाह्य उपचार के काम में ली जाती हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी कोमल कोंपलें, पत्ते और फूल साप और बिच्छू के जहर में उपयोगी हैं।

मगर केस और महस्कर के मतानुसार ये दोनों ही बातों में निरुपयोगी हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक, पित्त निस्सारक और कृमि नाशक होती है। यह साप और बिच्छू के जहर में उपयोगी मानी जाती है। इसमें कुछ कटु तत्व पाये जाते हैं।

काला खजूर

नाम—

संस्कृत—अरंगक। हिन्दी—काला खजूर। गुजराती—कड़ खजूर, लेंबारो। बम्बई—लिंबारा। मराठी—लिंबाड़ा, निंबारा। तामील—मल्लेवेंबू। आसाम—दिंकरलिंक। नेपाल—लपशी। लेटिन—Melia Composita मेलीया कंपोजिटा (2) Melia Dubia मेलिया डूबिया।

वर्णन—

यह वनस्पति पूर्वी हिमालय पर ६००० फीट की ऊंचाई तक, आसाम, पश्चिमीय घाट, गंजाम, डेकन, सीलोन और मलाया प्रायःद्वीप में पैदा होती है। यह वृक्ष नीम के छोटे वृक्ष के समान नजर आता है। यह सीधा और ऊंचा बढ़ता है। इसकी छोटी शाखाएं बहुत चिकनी और फिसलनी होती हैं। इसके पत्ते नीम के पत्तों की तरह दो या ३ भागों में विभक्त, लम्बगोल और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल हरापन लिये हुए सफेद रंग के होते हैं। इसके फल लम्बाई लिये हुए गोल, पीले रंग के होते है। सूखे हुए फल बिलकुल खजूर की तरह होते हैं। मगर स्वाद में ये अत्यन्त कड़वे होते

है। इसीलिये इनको कड़ू खजूर कहते हैं। इसकी गुठली बड़ी और कठोर होती है। औषधि के लिये इसके फलों का गूदा काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत से इसका फल कड़वा और वमन कारक होता है। यह उदर शूल के लिये लाभदायक है। मलेरिया ज्वर में इसे पित्त निस्सारक औषधि के रूप में दिया जाता है।

यद्यपि इस औषधि में ज्वर नाशक गुण नहीं है। फिर भी इसके योग से शरीर का सचित पित्त बाहर निकल जाता है और उस पित्त के साथ ज्वर का विष भी निकल आता है। इसीलिये यह पित्त ज्वर मे फायदा करती है।

इसके फल का गूदा कड़वा और वमनकारक होता है। मजदूर लोगों में यह उदर शूल रोग की उत्तम और घरेलू औषधि मानी जाती है। अजीर्ण और उदर शूल मे इसके फलों का गूदा ५ से १५ रत्ती तक दिया जाता है।

कोकण में इसके हरे फल का सत्व १ भाग लेकर उसमें तीसरा हिस्सा गन्धक मिलाकर, इन दोनो चीजों को समान भाग दही में मिला कर एक तावे के बरतन में रख आग पर गरम करके तर खुजली पर लगाने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चर्म रोग में लाभदायक और कृमि नाशक है।

काला डामर

नाम —

संस्कृत—रालधूप, मन्दधूप। हिन्दी, गुजराती, बगाली—काला डामर। मराठी—धूप, रालधूप, कालाडामर। कनाड़ी—रालधूप, मन्दधूप। तामील—करूपडामर। तेलगू—नल्लरोजन। लेटिन—canarium Strictum केनेरियम स्ट्रिक्टम।

वर्णन —

यह एक वृक्ष का गोंद होता है। यह वृक्ष कोकण, ट्रावनकोर, कर्नाटक, और त्रिनेवेल्लि में होता है। यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके कोमल पत्ते किरमिजि रग के होते हैं। इससे यह झाड़ सहज ही पहचाना जा सकता है। इसके फूल छोटे होते हैं। इसका फल ३·८ से ५ सेन्टिमीटर तक लम्बा होता है। यह गुलाई लिये हुए दोनों तरफ से नोकदार रहता है। इसकी गुठली कठोर होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु बाह्य उपचार की तरह काम मे ली जाती है। कमर दुखना, पुरानी वात पीड़ा और सन्निपात में इसको तिल के या सोंठ के तेल के साथ मिलाकर मालिश करने से लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पुराने चर्म रोगो मे उपयोगी है। इसमें इसेंशियल आइल पाया जाता है और यह पलस्तर बनाने के काम में लिया जाता है।

काली हलदी

नाम---

गुजरात, हिन्दी--काली हलदी, नरकचूर। बंगाली--काली हलदी, नीलकण्ठ। बम्बई--नरकचूर। मराठी--काली हलदी। तेलगू--मानपसुक। लेटिन--Curcuma Cacsia (करकुमा केकसिया)

वर्णन--

यह कचूर की ही एक उपजाति है जिसका वर्णन पहले कचूर के प्रकरण में दिया जा चुका है। यह बंगाल में बहुत पैदा होती है। बंगाल मे यह उबटन के काम मे भी ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव--

इसके गुण-दोष कचूर से मिलते-जुलते हैं।

टर्की के लोग इस वस्तु को चर्म दाहक पदार्थ के तौर पर काम में लेते हैं। वे इसे टर्किशस्नान के बाद शरीर पर उबटन करने के काम भी लेते हैं।

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार इसके गुण साधारण हलदी के समान होते हैं।

कालीनगद

नाम--

संस्कृत--नागदमनी, नागपत्रा, नागपुष्पी, मदघ्नी, दुर्धर्षा। हिन्दी--नागदमन, नागदौन। मारवाड़ी--कालीनगद। गुजराती--नागदमण। मराठी--नागदवणी। बंगाल--नागदमना। पंजाब--नागदौन। तामील--माचीपत्री। तेलगू--ईश्वरी चेट्टु। नेपाल--तीतापान। लेटिन--Artemisia Vulgaris. (आर्टिमीसिया व्हलगेरिस)

वर्णन--

यह एक झाड़ीनुमा सुगन्धित बहु वर्षजीवी पौधा होता है। इसके पत्ते ५ से टिमीटर से लगाकर १० से टिमीटर तक लम्बे और २.५ सेंटिमीटर से लगाकर ५ से टिमीटर तक चोड़े होते हैं। इसके छोटी २ मजरिया लगती है। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव--

भावप्रकाश के मतानुसार कालीनगद चरपरी, कड़वी, हलकी तथा पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ, घाव, भूत बाधा और जालगर्दभ रोग को दूर करने वाली है। यह सब ग्रहो को शान्ति करने वाली, विषनाशक, जयकारक और सुमतिदायक है।

राज निघटु के मतानुसार यह त्रिदोष नाशक, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, कड़वी, पेट के आफरे को नष्ट करने वाली और कोठे को शुद्ध करने वाली है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह बच्चों के लिये एक दिव्य औषधि है। बचों के सब रोगों में यह दी जाती है। वात और संकोच-विकास प्रधान रोगों में तथा कमजोरी में इसको देने से बच्चों को बड़ा लाभ होता है। आमाशय और अंतड़ियों के रोगों मे यह सोंठ, मिरच, पीपर और डीका-मारी के साथ, ज्वर में इन्द्रजौ और कट करज के (तणगच) साथ, कृमियुक्त ज्वर मे डीकामारी और विडग के साथ देने से बड़ा लाभ पहुंचाती है।

मासिक धर्म की रुकावट और भूतोन्माद में इसकी फांट बनाकर दी जाती है। इसके स्वरस को कान में टपकाने से कर्णशूल बन्द होता है। इसके काढ़े से दुष्ट व्रणों को धोने से उनकी शुद्धि होती है।

श्वास रोग और मस्तक की बामारियों में इसके पत्ते लाभदायक हैं। कमजोरी के कारण पैदा हुई स्नायुमण्डल सम्बन्धी बीमारियों में यह उपयोगी है।

अफगानिस्तान और सारे भारतवर्ष में कृमिनाश करने के लिये इसका काढ़ा दिया जाता है। यह बच्चों की खसरे की बीमारी में फायदा पहुँचाता है। इसका शीतनिर्यास पौष्टिक माना गया है।

चीन और जापान में इसके पत्तों को पानी में डालकर खरल में खूब घोटकर सुखा लेते हैं। इसके चूर्ण को आराम न होने वाले घावों को आराम करने के काम में लेते है। यह घाव के सड़े हुए हिस्से को जला देता है। कई प्रकार के चर्म रोगों में बहुत लाभ पहुँचाता है। वंध्यत्व की बीमारी में भी इसका उपयोग किया जाता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्ते और डण्ठलों का शीत निर्यास स्नायु मण्डल की बीमारियों को नष्ट करने के लिये दिया जाता है। कीटाणुओं को नष्ट करने के उपयोग में भी यह आता है। यह अग्निदीपक और तनाव की बीमारी को दूर करने वाला माना जाता है। मासिक धर्म के बन्द होने पर, उन्माद की बीमारी पर और पथरी को गलाने के लिये इसका शीत निर्यास दिया जाता है। यह गर्भ श्राव को नहीं होने देता और प्रसव में सहायक होता है।

सुश्रुत इस वनस्पति को साप और बिच्छू की चिकित्सा में उपयोगी मानते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह इन दोनों ही में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक, विषनाशक और कफ निस्सारक है।

कालाबास

नाम—

हिन्दी—कालाबास। अफ्रिका—कालाबास। तामील—तिरुवोतुकेइ। लेटिन—Crescentia Cujete (क्रेसेंशिआ कुजेटे)

उत्पत्ति स्थान—

आफ्रिका का उष्ण भाग।

वानस्पतिक विवरण—

यह बहु शाखी वृक्ष है। इसके पत्ते लंबे, चौड़े और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल अकेले या जोड़ में लगते हैं। इनकी सुगन्ध हृदय प्रिय नही होती। इसका पुष्प बाह्यावरण हलके हरे रंग का होता है। इनमें नाज़ुक बेंगनी लकीरे रहती हैं। इसका फल गोल, हरा या बैंगनी रंग का होता है। इसका आकार १५ से लगाकर १८ सेंटीमिटर तक का रहता है।

गुण—इसका फल मृदु विरेचक, शीतल और ज्वर निवारक है।

ब्राझील में इसके कच्चे फल का गूदा शकर डालकर मीठा कर लिया जाता है। यह ज्वर नाशक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। इसके पक्के फल का पुल्टीस बनाकर सिर दर्द में लगाने के काम में लेते हैं।

ट्रांसवाल में इसके फल को जलाकर व पीसकर सर्प दंश में अन्तः एवम बाह्य दोनों प्रयोगो में काम में लेते हैं। इसके बीज खासकर सर्प दंश पर ज्यादे मुफीद माने गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मृदु विरेचक, शीतल, और ज्वर निवारक है।

——

काली जरी

नाम—

पंजाब—गुरगुमा, हालू, कालीजरी, काफरा, पापरा, शोम्रि, थट। लेटिन—Salvia moorcroftiana (सेलविया मूरक्राफसियाना)

उत्पत्ति स्थान—

पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कमायूं तक ६००० से ६००० फीट की ऊँचाई तक।

वानस्पतिक विवरण—

यह वनस्पति सफेद और मुलायम रुएँवाली होती है। इसके पत्ते जाड़े लंबे डण्ठलवाले और अण्डाकार होते हैं। इनकी किनोरे कटी हुई रहती हैं। इसके फूल लम्बे और हलके नीले रंग के होते हैं।

गुण—

इसकी जड़ खासी में दी जाती है। इसके बीज वमन कारक वस्तु के तौर पर काम में लिये जाते हैं। इसके पत्ते खुजली और नारू के कीडे की औषधि है। ये पुल्टिस के रूप में घाव पर लगाये जाते हैं। लाहोर में इसके बीजे उदर शूल और पेचिश में दिये जाते हैं और इन्हें फोड़ा पर लगाते हैं। इसके बीज रक्तार्श में भी दिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ खासी मे उपयोगी है और इसके बीज रक्तार्श में उपयोगी माने गये हैं।

कालकूट

नाम—

संस्कृत—कालकूट। हिन्दी—कालकूट।

वर्णन -

यह एक प्रकार का वानस्पतिक विष होता है। प्राचीन कथा है कि देव असुरों के संग्राम में देवों ने जब पृथुमालि दैत्य को मारा तब उस दैत्य के रुधिर से पीपल के वृक्ष की तरह कालकूट का वृक्ष उत्पन्न हुआ। इस वृक्ष के गोंद को कालकूट विष कहते हैं। यह अहिच्छत्र, श्रंगबेर, कोकण और मलाबार में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के अन्दर नौ प्रकार के कन्द विष माने गये हैं:- वत्सनाभ, हारिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्र, श्रृंगिक, कालकूट, हलाहल, और ब्रह्मपुत्र। ये नौ ही प्रकार के विष प्राण घातक होते हैं मगर अल्प मात्रा में विधि पूर्वक सेवन करने से अमृत तुल्य होजाते हैं।

कालकूट विष के सेवन से ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलवेदना, मुख में झागों का आना, वमन, अरुचि, श्वास, मूर्च्छा, चिरमिराहट, स्पर्शशून्यता तथा अकड़न पैदा हो जाती है।

इस विष के सयोग से कई औषधियां तैयार होती हैं, मगर आजकल इस विष का प्रचार अधिक न होने से इसकी विशेषजानकारी भी निघण्टु ग्रथों मे देखने में नहीं आती।

कालादाना

नाम—

संस्कृत—कृष्णबीज, श्यामबीज, श्यामल बीजक। हिन्दी—कालादाना, मिरचई। बंगाल—नील कलमी। गुजराती—काला दाना, काल कुपान, कालोकुम्पो। मराठी—कालादाना, नीलपुष्पी, नील वेल। पंजाब—बिल्दी, इस्पेका, केर, किटपवा, फफ्रूसाग। तामील—काकटन, सिरीखि। तेलगू—जीरीकि। उर्दू—कालादाना। फारसी—तुख्मनील। अरबी—हब्बूनिल। लेटन—Ipomoea Hederacea (आयपोमिया हेड्रेशिया)

वर्णन—

यह एक लता होती है। यह भारतवर्ष के जंगलों में स्वाभाविक तौर से भी पैदा होती है। और इसकी बहुत बडे प्रमाण में खेती भी की जाती है। इसका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है। इसकी बेल इश्क पेंचा की बेलों की तरह होती है। इस बेल की शाखाएँ पतली और हरी होती हैं। इसके पत्ते हरे और इश्कपेंचा के पत्तों से बड़े होते हैं। इसके हर एक पत्ते में एक नीलाफूल लगता है। इसी से इसे कई स्थानों पर नीलपुष्पी भी कहते हैं। इसके बीज फलियों में लगते हैं। ये फलियां ८ मिलिमीटर लम्बी होती हैं। एक एक फली में ४ से लेकर ६ तक बीज पाये जाते हैं। इन बीजों का रंग काला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कालादाना विरेचक, पेट के आफरे को दूर करनेवाला और प्रदाह, उदर रोग, ज्वर, सिरदर्द, मस्तिष्क के रोग और वायुनलियों के प्रदाह में मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गर्म और खुश्क माना जाता है। इसके बीज कड़वे, अरोचक, विरेचक, और कृमिनाशक होते हैं। ये यकृत, तिल्ली, जोड़ों की बीमारी, धवल रोग, खाज और पित्त में लाभदायक होते हैं। ये कफ को सुखाते हैं और शरीर में से दूषित रसों को निकाल देते हैं।

यह औषधि अँग्रेजी की सुप्रसिद्ध दवा "जेलप" की उत्तम प्रतिनिधि साबित हुई है। सबसे पहिले रॉक्सबर्ग ने इसके गुणो की जाच करके यूरोप के डॉक्टरों के सामने जेलप के मुकाबिले में इसे रक्खा और उन लोगों ने इसकी उपयोगिता को एक मत से स्वीकार किया। तब से यह औषधि और इसका सत्व टरपेथिन (Turpethin) जेलप के स्थान पर उपयोग में लिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

काले दाने के रासायनिक विश्लेषण में मुख्य तया एक प्रकार का गोंद पाया जाता है जिसका नाम कर्नल चोपरा ने Turpethin टरपेथिन और के० एल० डे ने Pharbisin फारबिस्सिन लिखा है। यह इसमें करीब ८ प्रति शत पाया जाता है। इसका स्वाद कड़वा और वमन कारक होता है। गरम करने पर इसमें विशेष प्रकार की तेज गन्ध पैदा हो जाती है। यह द्रव्य तीव्र विरेचक होता है। इसके गुण जेलप के गुणों की तरह ही होते हैं।

काले दाने के बीज तीव्र विरेचक होते हैं। इसकी जड भी विरेचक, प्रदाह पैदा करने वाली और भ्रूण हत्याकारक होती है। यह यकृत, श्वास और रजोश्राव की तकलीफों में मुफीद है।

उपयोग—

बद्धकोष्ट—इसको ६ माशे की मात्रा में भूनकर दो माशे सोंठ के साथ लेने से अच्छा जुलाब लग जाता है और शरीर की सब गन्दगी को दस्त की राह निकाल देता है।

रक्त विकार—इसका लेप करने से "बर्स" (एक प्रकार का श्वेत कुष्ट) (Leucoderma) और वहेक (Pityriasis) नामक कुष्ट रोग में लाभ होता है।

कृमि—इसके जुलाब से पेट के कृमि निकल जाते हैं।

इसके खाने से पेट के अन्दर मरोडी पैदा होती है। इसलिये इसको पीसकर एक रात बादाम के तेल में तर रखकर सुबह खाने से मरोडी पैदा नहीं होती। अगर काले दाने के जुलाब से ज्यादा दस्त आवे और बन्द न हो तो ठण्डा पानी पिलाने से और कतीरा गोंद देने से लाभ होता है।

जिनकी आते कमजोर हों उनको यह जुलाब नहीं लेना चाहिये।

इसी प्रकार दिल और जिगर के रोगियो को भी यह नुकसान करता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये गुलाब के फूल, हरड़ के छिलके और बादाम के तेल का उपयोग करना चाहिये।

काली मिरच

नाम –

संस्कृत— मरिच, पवित, श्याम, वेणुज, यवनप्रिय,वल्लिज,शिरोवृत, कटुक,वृत्तफल, इत्यादि। **हिन्दी**— काली मिरच, गोल मिरच, सफेद मिरच, मिरच। **बंगाली**— गोल मोरिच, मरिच, मुरिचग। **मराठी**— मिरें, पांढरें, मिरी। **बम्बई**—काला मिरी, मिरि, पाढारिमिरी। **गुजराती**— काली मिरच। **कश्मीर**— मर्ज। **काठियावाड़**— तीखन। **सिन्ध**— गुल मिरियन। **तेलगू**— मरिचम्, मिरेसु, सव्यमु। **तामील**— अरिसु, इरम्बिवम। **फारसी**—फिल फिले स्वद, फिल फिले स्याह। **अरबी**- फिल फिलुस्वद। **अफगानिस्तान**— दारुगर्म। **उर्दू**— कालीमिरच। **लेटिन**— Piper Nigrum (पीपर नायग्रम)। **अंगरेजी**—Black Papper।

वर्णन—

यह लता जाति की वनस्पति है। ट्रावनकोर और मलाबार की उपजाऊ भूमि में इसकी खेती बहुत होती है। वहा के रहने वाले इस लता के छोटे २ टुकड़े करके बड़े २ वृक्षों की जड़ में लगा देते हैं। ये टुकड़े उन वृक्षों के आसरे चल निकलते हैं और तीन वर्ष में उन पर फल लगते हैं। इस लता के पत्ते नागर वेल के पत्ते की तरह मगर उससे बहुत छोटे, सनोवरी शक्ल के होते हैं। इसके फल गुच्छों के आकार में लगते हैं। जो शुरू में हरे, पकने पर लाल और सूखने पर काले हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत— आयुर्वैदिक मत से काली मिरच चरपरी, तीक्ष्ण, अग्नि को दीपन करने वाली, कफ वात नाशक, गरम, पित्त जनक, रूखी तथा दमा, शूल और कृमियों को नष्ट करने वाली होती है।

कच्ची काली मिरच पाक में मधुर, किंचित उष्ण, चरपरी, भारी, कफ को निकालने वाली होती है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार काली मिरच कड़वी, चरपरी, हलकी, गरम, रुचि कारक, अग्नि दीपक, तीक्ष्ण, छेदक,शोषक, रुक्ष, पित्त कारक और कृमि रोग, श्वास, खांसी, हृदय रोग, शूल, प्रमेह और बवासीर का नाश करने वाली होती है।

भारतवर्ष के अन्दर यह औषधि अत्यन्त प्राचीन काल से एक लोक प्रिय और घरेलू औषधि के बतौर रहती आई है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध "त्रिकुटा" (सोंठ, मिरच, पीपल) नामक औषधि समूह का यह वस्तु भी एक अंग है। आयुर्वेद के भिन्न २ बीमारियों पर बनने वाले हजारों नुस्खों में इस औषधि का बड़े आदर के साथ उपयोग होता है। औषधि के प्रधान द्रव्य की अपेक्षा सहायक द्रव्य के रूप में ही इसका उपयोग अधिक होता है। सहायक रूप से जहा यह मानव शरीर में होने वाली प्रत्येक

रोग की औषधि में मिलाई जाती है। वहां प्रधान रूप से यह मन्दाग्नि, ज्वर, पेट का आफरा, और चर्म रोगों में काम में ली जाती है। चर्म रोगो में इसके बाहरी उपयोग से बड़ा लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसका फल तेज चरपरा, पेट के आफरे को दूर करने वाला, डकार लाने वाला, कामोद्दीपक और विरेचक होता है। यह दांतों की पीड़ा और प्रदाह में उपयोगी है। यकृत और पेशियो के दर्द में, तिल्ली की बिमारी में, उद्गीरण (Eructitions) में, धवल रोग में, कटिवात, में जीर्ण ज्वरों में, पक्षाघात में तथा कष्ट प्रद मासिक धर्म में यह लाभदायक है।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह गर्मी को पैदा करने वाली, कफ को छांटने वाली और हाजमें को कूवत देने वाली होती है। यह दिमागी अकल को मजबूत करती है। भूख बढ़ाती है। दम, खासी, प्रमेह और सीने के दर्द में मुफीद है। अगर मासिकधर्म से शुद्ध होकर स्त्री कुछ दिनों तक इसकी बत्ती को योनि में रक्खे तो उसको गर्भ स्थित नहीं होगा। इसको सिरके के साथ पीसकर तिल्ली (Spleen) पर लेप करने से वरम बिखर जाता है। इसको घिसकर आंख में लगाने से आंख की धुन्द, जाला और नाखुना में लाभ पहुँचता है। इसके लेप से कण्ठमाला की सूजन बिखर जाती है। इसका क्वाथ साप, बिच्छू के जहर और अफीम के विष पर भी लाभदायक होता है।

हकीम जालीनूस का कहना है कि मिर्चों को पीसकर तेल में मिलाकर लकवे के रोगी को लेप करने से इतना फायदा होता है जितना किसी दूसरी दवा से नहीं होता।

काली मिर्च को सिरके में जोश देकर कुल्ले करने से दांतों का दर्द जाता रहता है।

हकीम गिलानी का कथन है कि तन्दुरुस्त आदमियों को भोजन के साथ काली मिरच खिलाने से उनकी भूख बढ़ती है और हाजमा दुरुस्त रहता है। पानी और शहद के साथ इसको खाने से मेदे और जिगर की बादी नष्ट होकर उनमें गरमी आ जाती है और खट्टी डकारें आना बन्द हो जाती हैं।

काली मिरच विशूचिका (हैजा) रोग में सुगन्धित, उत्तेजक पदार्थ की तौर पर अधिक काम में ली जाती है। यह ज्वर के बाद होने वाली कमजोरी में भी उपयोगी है। अग्निमांद्य और बद्ध कोष्ठ में अग्नि प्रवर्द्धक वस्तु की तौर पर यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। मलेरिया और जूड़ी बुखार में भी यह लाभदायक है। अर्द्धांग या लकवे मे यह धातु परिवर्तक मानी जाती है। संधिवात सम्बन्धी बीमारियों में भी यह मुफीद है।

बाह्य प्रयोग में यह चर्मदाहक पदार्थ की तौर पर काम में ली जाती है। गले की सूजन, बवासीर और अन्य चर्म रोगों में भी इसका बाह्य प्रयोग (लेप) लाभदायक होता है।

मलाया देश में यह वस्तु गर्भश्रावक मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह उत्तेजक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, तथा हैजा,

मन्दाग्नि, कब्जियत, रक्तातिसार और पाकस्थली के दूसरे रोगों में उपयोगी है। हैजे में इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है। कालीमिरच २० ग्रेन, हींग २० ग्रेन, अफीम २० ग्रेन। इन सबको मिलाकर १२ गोलियां बनाली जायें। इनमें से एक एक गोली घण्टे घण्टे भर में रोगी को देने से लाभ होता है। इसके सिवाय यह औषधि बाह्य प्रयोग के काम में भी आती है। इसको घी के साथ मिलाकर चर्म रोगों पर लगाने के काम में लिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

डॉयमॉक के मतानुसार काली मिरच में एक प्रकार का कड़वा गल, व्होलेटाइल (Volatileoil) स्टार्च, (Starch) ऑइल, गम (Cum) और कुछ अन्य प्रकार का तेल रहता है। इसमें ५ सैंकड़ा के करीब इन आर्गेनिक पदार्थ भी रहते हैं। इसमें पाया जाने वाला महत्व पूर्ण उपक्षार पिपेराईन है। यह इसमें २ से ८ प्रति सैंकड़ा तक पाया जाता है। इसमें पाया जाने वाला राल गहरे हरे रंग का होता है। यह अलकोहल, ईथर और पानी में घुल जाता है। शुद्ध पिपेराइन कुछ चरपरा रहता है। यह पानी में नहीं घुल सकता। यह बगैर गन्ध वाला और पीले रंग का होता है।

डॉयमॉक के मतानुसार काली मिरच के उपयोग से पार्यायिक ज्वर बहुत जल्दी कटता है। डॉक्टर सी० एस टेलर ने इसकी बहुत तारीफ की है। जहां कुनेन निरुपयोगी सिद्ध हो चुकी थी वहां पर इसका सत्व पेपेराइन सफल सिद्ध हुआ है। यह रोगी को प्रति घण्टे ३ ग्रेन की मात्रा में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह औषधि मन्दाग्नि, सुजाक, वात जनित उदर शूल, कब्जियत, खूनी बवासीर में भी बहुत लाभ पहुँचाती है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार काली मिरच का खास असर उत्तर गुदा पर होता है। इस कारण यह औषधि बवासीर पर विशेष लाभ दिखलाती है। इस रोग में इसका अन्तः और बाह्य दोनों तरह से प्रयोग किया जाता है। यह औषधि मूत्र पिंडों को भी उत्तेजना देती है इस कारण इसके सेवन से पेशाब बढ़ता है। मूत्राशय तथा मूत्र नाली में उत्तेजना पैदा होती है। इस कारण यह पुराने सुजाक में भी लाभदायक होती है।

उपयोग—

रतौंधी—काली मिरच को दही के साथ घिसकर आंखों में आंजने से रतौंधी (रात में नहीं दीखना) मिट जाती है। (वाग्भट्ट)

नकसीर—कालीमिरच को पीसकर दही और पुराने गुड़ के साथ देने से नाक से गिरने वाला खून बन्द हो जाता है। (भाव प्रकाश)

अतिसार—काली मिरच १ रत्ती, हींग आधी रत्ती, और अफीम पाव रत्ती। इन तीनों को मिलाकर देने से अतिसार में लाभ होता है।

मन्दाग्नि—कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, जीरा, सेन्धा नमक, सबको बराबर लेकर पीसकर १॥ या दो माशे की मात्रा में भोजन के पश्चात् देने से मन्दाग्नि दूर होकर हाजमा शक्ति बढ़ाती है।

बवासीर—काली मिर्च २ माशे, जीरा १ माशा, शहद या शकर ७॥ तोला। इनको मिलाकर १ चाय के चम्मच के बराबर खुराक में देने से बवासीर में लाभ होता है।

पागल कुत्ते का विष—काली मिर्च ५ दाने और सत्यानाशी के बीज ६ माशे। इन दोनों को पीस कर तीन दिन तक खिलाने से पागल कुत्ते के विष में लाभ पहुँचता है। मगर रोगी को ककड़ी और तेल से साल भर तक परहेज करना चाहिये। (ख० अ०)

दन्त शूल—काली मिर्च को पोस्तदानो के साथ जोश देकर कुल्ले करने से दांतों का दर्द मिटता है।

खांसी और दमा—काली मिर्च को शहद के साथ चाटने से सर्दी और तरी से होने वाली खांसी दमा और सीने का दर्द मिटता है तथा फेफड़े से कफ निकल जाता है।

सूजन—काली मिरच को पानी के साथ पीसकर उसका लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

आधाशीशी—काली मिरच को घी में घिसकर नाक में टपकाने से आधाशीशी में लाभ होता है।

पीनस—काली मिरच को गुड़ और दही के साथ खिलाने से पीनस का रोग जाता रहता है।

हिचकी—एक मिरच को सुई की नोक पर बाँदकर उसको दीपक पर जलायें। जब उसमें से धुआँ निकलने लगे तब उस धुएँ को नाक के रास्ते मस्तक में चढ़ावे। इस प्रयोग से हिचकी और सिर का दर्द दूर होता है।

नेत्र रोग—काली मिर्च को घी में मिलाकर खाने से अनेक प्रकार के नेत्र रोग मिटते हैं।

सफेद *मिरच*—

काली मिरच के ऊपर जो काला छिलका होता है उसको पानी में गलाकर या और किसी किस्म से निकाल देने से भीतर से सफेद मिरच निकल आती है। ये ही छिलका निकाली हुई काली मिरचें बाजार मे सफेद मिरचो के नाम से बिकती हैं। इनके गुण, धर्म कालीमिरच के गुण धर्म के समान ही होते हैं।

कालीजीरी

नाम—

संस्कृत—वनजीरकः, तिक्तजीरकः, बृहत्पाली, अरण्यजीरक, कृष्णफल, शूद्रपत्र, वपुषि, इत्यादि। हिन्दी—कालीजीरी, सोमराज, वनजीरा, बकशी, बाकची। गुजराती—कालीजीरी। मराठी—कलुजीरी, रणचजीरी। पंजाब—बुकोकी, काकशम, कालीजीरी, मलवचक्शी। बंगाल—हकुच, कालीजीरी, सोमराज। तेलगू—अदविजिल्कर, गरिदिकमा, विषकन्तकनुलु। तामील—कट्टुचिरगम, नेचिरि। कुमायू—कालीजीरी। लेटिन—Vernonia Anthelmintica (व्हरनोनिया एंथेलमिंटिका)।

वानस्पतिक वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी क्षुप होता है। हिन्दुस्तान में प्रायः सब दूर पड़त जमीनों में होता है। इसके पत्ते शल्याकृति और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल गुच्छों में होते हैं। बरसात के बाद इसके मंजरियाँ लगती हैं और उन मंजरियों में बीज जमते हैं। इसके बीज काले, बारीक, लंबे होते हैं। ये कड़वे और वमनकारी होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से कालीजीरी कड़वी, दीपक, वातनाशक, कट्ठ पौष्टिक, कृमिनाशक, ज्वर को दूर करने वाली, मूत्रल, दुग्धवर्धक और चर्म रोग नाशक होती है।

कालीजीरी एक उत्तम कृमिनाशक औषधि है। यह पेट के कृमियों को नष्ट कर डालती है। परन्तु इसमें आनुलोमिक-गुण न होने से उन कृमियों को बाहर निकालने के लिये जुलाब देने की आवश्यकता होती है। कृमियों को नष्ट करने के लिये इसकी मात्रा छोटे बच्चों को ५ से १० रत्ती तक और प्रौढ़ मनुष्यों को आधे से १ तोला तक दी जाती है। पेट फूलने और नलों में वायु इकट्ठी हो जाने पर यह कम मात्रा में दी जाती है। १० रत्ती की मात्रा में यह एक मूल्यवान, दीपक और पौष्टिक वस्तु है।

जीर्ण ज्वर के ऊपर भी इस वनस्पति का अच्छा उपयोग होता है। चर्मरोगों पर भी यह बड़ा लाभ बतलाती है। कुष्ठ, कच्छु, धवलरोग वगैरह रोगों में भी यह आवला और खेरसार के क्वाथ के साथ दी जाती है। इसको नीम के रस में पीसकर मालिश करने से सब प्रकार के चर्मरोग दूर होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह कृमिनाशक और विरेचक होती है। श्वास, मूत्राशय की तकलीफ और हिचकी में भी यह उपयोगी है। चर्मरोग, खुजली, आंख में चलनेवाली खुजली और सूजनपर भी इसके बाह्य प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह बलगमी मवाद को छाँट देती है। मेदे और आंतो से हर किस्म के कीड़े और कद्दू दानों को निकाल देती है। सर्दी के दर्दों को मिटाती है। इसके लेप से सर्दी की सूजन बिखर जाती है। इसकी मालिश से खुजली मिटती है। बवासीर में भी यह लाभ पहुंचाती है। १० माशा काली जीरी को लेकर उसमें से आधी को भून कर और आधी को कच्ची पीस कर तीन हिस्से करके एक हिस्सा रोज सबेरे के वक्त खा लिया करें। पथ्य में दोनों वख्त सॉंठी चावल का भात और दही खाना चाहिये। इस प्रकार कुछ दिन तक सेवन करने से खूनी और बादी दोनों प्रकार के बवासीर जड़ से नष्ट हो जाते हैं। (ख० अ०)

छोटे नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसको क्विनाइन के स्थान में व्यवहार करते हैं। पैरों के पक्षाघात में इसके पीसे हुए बीज लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा का कथन है कि इस वनस्पति के बीज वैद्य लोगों के द्वारा बहुत तेज कृमि नाशक माने गये हैं। आंत्रशूल, पाचन क्रिया की कमजोरी, धवलरोग, विसर्प रोग और अन्य चर्म रोगों में भी इनका उपयोग किया जाता है। इसके पीसे हुए बीज १॥ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में

देकर पीछे से अरंडी के तेल का जुलाब देने से पेट के गोल कृमि बाहर निकल आते हैं । भारत के यूरोपियन डाक्टरों का ध्यान भी इस वस्तु के तरफ आकर्षित हुआ और उनमें से भी कई लोगों ने इसके पीसे हुए बीजों के सत्व को गोल कृमियों को नष्ट करने के लिये उत्तम माना ।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजों में रेजिन्स पाये जाते हैं। इनमें व्हरनोनाइन (Vernonine) नामक एक उपक्षार भी पाया जाता है। इसमे एक तेल और एक क्षार ७ प्रति सैकड़ा की तादाद मे पाये गये। "स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन" ने इसके रासायनिक सगठन की फिर से जाच की, जिसके परिणाम स्वरुप इसके सूखे बीजों में निम्नलिखित तत्व पाये गये। पेट्रोलियम ईथर १८.४ प्रतिशत, क्लोरोफार्म १.२ प्र० श०, एबसोल्यूट अलकोहल १३.८ प्र० श० पाया गया। पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट में फिक्स्ड आइल पाया गया, जो कि बीजों का १८ प्र० शत था और कुछ उड़नशील तेल पाया गया जिसकी मात्रा .०२ प्र० सैकड़ा थी। क्लोरोफार्म में इसका कटुतत्व पाया गया। ऐलकोहेलिक सत्व मे खास करके रेजिन्स ही पाये गये। इसमे एलकेलाइड नहीं पाया गया।

इस वनस्पति का प्रभावशाली तत्व इसमें पाया जानेवाला कटुतत्व ही है। यह बीजों में १ प्रतिशत पाया जाता है। यह एक प्रकार का पीला पदार्थ है। इसमें न तो नाइट्रोजन है और न सल्फर है।

कर्नल चोपरा लिखते हैं : —

"The Powdered Resin, in doses of 5 to 10 grains, was tried in a number of cases of Halminthic infections at tha Carmichel Hospital for tropical Diseases. The stools were carefully examined before and after the drug was given. The Resin appears to have very little effect on the ascaris. It is, However, distinctly effective in threadworm infectious. In several children in whom the resin powder was administered, thread worms were expelled in the stools in large numbers and the symptoms which are often very troublesome, e. g , nocturnal enuresis, grinding of the teeth at night etc, were relieved. Further work is in progress."

"सार यह है कि इसके पीसे हुए रेजिन्स ५ से लगाकर १० ग्रेन तक कई रोगियों पर आजमाये गये। ये अँतड़ियों में पाये जानेवाले विशेष प्रकार के कृमियों पर काम में लिये गये। इसका प्रयोग कार्माइकेल हास्पिटल में ट्रॉपिकल डिसीजेस में किया गया। यह वस्तु देने के पूर्व और पश्चात मल का परीक्षण किया गया। यह कृमियों पर ज्यादा मुफीद पाई गई। कई बच्चों पर भी इसका अनुभव किया गया। कई दूषित चिन्ह जैसे दातों का पीसना, रात्रि के समय अनैच्छिक मूत्रश्राव दूर हुए पाये गये। इसके ऊपर अभी प्रयोग जारी है।"

सन्याल और घोष—

सन्याल और घोष के मतानुसार यह वनस्पति चर्म रोगों में लेप के बतौर काम में ली जाती है। यह धवल रोग और विसर्प रोग की खास दवा है। अन्तः प्रयोग में यह कटु, अग्नि प्रवर्द्धक, धातु-परिवर्तक, और संकोचक है। यह ज्वर, कफ और अंतड़ियों के कृमियों को नष्ट करने वाली है।

एन्सली के मतानुसार इसके बीज कृमिनाशक हैं और अन्य औषधियों के साथ में सर्प दंश में भी काम में लिये जाते हैं। कृमिनाशक वस्तु के तौर पर इसके बीजों का चूर्ण काम में लिया जाता है। फरमाकोपिया ऑफ इण्डिया के मतानुसार इसके पीसे हुए बीजों की मामूली खुराक कृमियों को नष्ट करने के लिये १॥ ड्राम (करीब ६ माशे) की है जो शहद के साथ दी जाती है। इस खुराक को देने के कुछ समय बाद मृदु विरेचक देने से अन्तड़ियों में पाये जाने वाले कृमि निर्जीव होकर बाहर निकल जाते है।

चक्रदत्त के मतानुसार चर्म रोगों में कालीजीरी और काले तिल को बराबर मात्रा में पीसकर ४ माशे की मात्रा में बड़े सबेरे व्यायाम करने के बाद कुनकुने जल के साथ देना चाहिये। इस प्रकार साल भर तक सेवन करने से भयंकर चर्म रोग भी नष्ट होते हैं।

वाग्भट्ट के मतानुसार काली जीरी का ४ हिस्सा चूर्ण, एक हिस्सा पीली हरताल के साथ मिलाकर गाय के मूत्र के साथ पीसकर धवल रोग के चकतों पर लेप करने से और इसी औषधि को काले तिलों के साथ खाने से श्वेत कुष्ट में बड़ा लाभ होता है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार यह वस्तु सर्प और बिच्छू के जहर में भी लाभदायक है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह दोनों ही प्रकार के विषों पर निरुपयोगी है।

यह औषधि बहुत उग्र है। ज्यादा खाने से मेदे और आतों को नुकसान पहुँचाती है। वमन और मरोड़ पैदा करती है। इसलिये इसको खाने के काम में सावधानी से लेना चाहिये। अगर इसके खाने से उपद्रव हो जायँ तो गाय का दूध, या ताजे आवले का रस या आंवले का मुरब्बा देने से मिट जाते हैं।

कालीपहाड़

नामः—

संस्कृत—अम्बष्टा, अविदकर्णि, लघुपाठा, मालती, पाठा, रुचिश्या, शिशिरा, वृत्तपर्णि। हिन्दी—काली पहाड़, दुःखनिविशी, हडजोरि, अकौदि, पारि। बंबई—पहाड़मूल, पहाड़वेल, वेनिवेल, मराठी—पहाड़वेल, पहाड़मूल। गुजराती—करंडियु, वेणिवेल। पंजाब—कटोरि, पाटवी। काठियावाड़—बाग, करढयू। तामील—पुनईतिटा, पट्टुतिरुपि, पुनमूप्टि। तेलगू—पाटा। लेटिन—Cissa mpelcs Pareira (सिसेम्पेलास परीरा)

वर्णन—

यह वनस्पति सिंध, पंजाब, सिमला, कोंकण, मलाबार और कारोमंडल के किनारे पैदा होती है। यह एक प्रकार की झाड़ीनुमा बेल होती है। कहीं २ यह दूसरे झाड़ों पर चढ़ती है और कहीं २ जमीन पर ही फैलती है। यह वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसके पत्ते हृदय की आकृति के, दोनों तरफ रूएँदार, गिलोय के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल पीले और छोटे होते हैं। ये वर्षा ऋतु में आते हैं। इसकी नर मंजरियां लंबे डंठल वालीं, रूएँदार और बहुत फूलों वाली होती हैं। इसका फल कुछ गोलाई लिये हुए चपटा, रूएँदार और लाल होता है। इसकी जड़ आधा इञ्च मोटी होती है और जमीन में बहुत गहरी जाती है। इसकी छाल फीके खाकी रंग की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—यह आयुर्वैदिक मत से गरम, स्वाद में तीक्ष्ण और कड़वी रहती है। वात, कफ, ज्वर, पेचिश, चर्मरोग, जलन, हृदय रोग और खुजली में लाभदायक है, वमन और श्वास को कम करती है; आंतों के कीटाणुओं को नष्ट करती है। बढ़ी हुई तिल्ली और व्रणों को मिटाती है; बवासीर और गर्भाशय की तकलीफों में लाभदायक है; आधाशीशी और प्रसव पीड़ा में मुफीद है।

पहाड़मूल कड़वी, लघु, कटु पौष्टिक, ग्राही, मूत्रल और सूजन को नष्ट करने वाली है। इसका कटु पौष्टिक धर्म बहुत मृदु है। थोड़ी मात्रा में देने से भूख लगती है, और अन्न का पाचन होता है। अधिक मात्रा में देने से साफ दस्त होते हैं। इसकी मात्रा २॥ माशे से ३॥। माशे तक है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई का मत है कि इस औषधि की मूत्रेंद्रिय के रोगों पर अच्छी क्रिया होती है। मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मल त्वचा पर इसका संग्राहक, उपशामक, और बलदायक असर होता है। यह उस त्वचा की शुद्धि करती है। मूत्र पिंडों पर इसका असर उत्तेजक और मूत्रल होता है। मूत्रेन्द्रिय के रोगों पर पहाड़मूल का शोथहर पीडाशामक और मूत्र जनन धर्म उत्कृष्ट होता है। नवीन और प्राचीन वस्तिशोथ, सुजाक, रक्त मूत्र और सान्द्र प्रमेह इन रोगों में पहाड़मूल को गिलोय और मुलेठी के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

शिथिलता प्रधान बद हजमी, सिर दर्द, आमातिसार और ज्वरातिसार में इसको थोड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है। आंतों के रोगों में इसकी जड़ किसी सुगन्धित पदार्थ के साथ दी जाती है। आमाशय के दर्द, अतिसार और पथरी रोग में भी इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट और योग रत्नाकर के मतानुसार इसकी जड़ सांप और बिच्छू के जहर में लगाने और खाने के काम में ली जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह दोनों ही प्रकार के विषों पर निरुपयोगी है।

इसके पत्ते शीतल होते हैं। ये गुर्दे की सूजन में फायदा पहुँचाते हैं। ये दुष्ट व्रण और नासूर पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

उपयोग—

मूत्राशय की सूजन— मूत्राशय की पीड़ा युक्त पुरानी सूजन को मिटाने के लिये इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिये।

गठान— इसके पत्तों को पीसकर गठान पर बांधने से गठान बिखर जाती है।

पेट का शूल—इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से पेट का शूल मिटता है।

पथरी—इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से पथरी के रोगी को लाभ होता है।

विष—इसकी जड़ को घी के साथ घिसकर पिलाने से जहर उतरता है।

बिगड़े हुवे घाव—इसकी जड़ को पानी मे घिसकर लेप करने से बिगडे हुए घाव और हड्डियों के व्रण मिटते हैं।

खांसी— इसकी जड़ के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से खासी मिटती है।

मन्दाग्नि—इसकी जड़ के क्वाथ पर पीपल का चूर्ण बुरकाकर पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

जलोदर—अपराजिता की जड़ के साथ इसकी जड़ को औटाकर पिलाने से जलोदर में लाभ होता है।

मूत्राशय की सूजन—इसकी जड़ का क्वाथ बना कर देने से मूत्र वृद्धि होकर मूत्राशय की पुरानी सूजन मिट जाती है।

योनिरोग—जिस स्त्री की योनि बाहर निकल जाय उसको इसका क्वाथ पिलाना चाहिये। और इसी के क्वाथ से योनि को धोना चाहिये।

अन्तर विद्रधि—इसकी जड़ को चावलों के पानी के साथ पीसकर पीने से अन्तर विद्रधि रोग मिटता है।

प्रसव कष्ट— इसकी जड़ को पीसकर गर्भवती स्त्री की नाभि, वस्ति और भग पर लेप करने से बच्चा सुख से हो जाता है।

कालमेघ

नाम—

हिन्दी, बंगाली—कालमेघ। गुजराती-लीलूकरियातू। मराठी-ओल किराइत। कनाड़ी-नेलवेऊ। तामील—निलवेबूं। तेलगू—नेलबेम्। मलयालम—किरियातूं। कोकण—किरातूं। लेटिन— Andrographis Paniculata ऐन्ड्रोग्रेफिस पेनिक्यूलेटा।

वर्णन—

यह एक प्रकार की क्षुप जाति की क्षुद्र वनस्पति होती है। इसका पौधा १ से ३ फीट तक ऊँचा होता है। यह विशेषकर बंगाल के अन्दर बहुत पैदा होती है और आधुनिक युग में इसने बड़ा ज्वर नाशक औषधि के बतौर बहुत ख्याति प्राप्त करली है।

कई लोग कालमेघ और चिरायता नामक (Swertia chirata) वनस्पति को एक ही समझते हैं। मगर ये दोनों वनस्पतियाँ अलग २ हैं। यह औषधि चिरायता की अपेक्षा बहुत हलके दर्जे की होती है। चिरायते के बदले में इसको देने से उतना लाभ नहीं होता।

गुण दोष और प्रभाव—

कालमेघ कड़वा, दीपन और कटु पौष्टिक होता है। इसमें ज्वर नाशक गुण भी रहता है। मगर वह कुनेन (Quinine) के बराबर प्रभावशाली नहीं होती। बच्चो के लिये यह औषधि विशेष लाभकारी होती है। सिर दर्द, अजीर्ण, अतिसार और साधारण ज्वर में इसको त्रिफामारी, हींग, सोंठ, मिर्च और पीपर के साथ देते हैं।

बंगाल में यह औषधि घरू उपयोग की प्रधान औषधियों मे एक गिनी जाती है। इसे वहा अलुई के नाम से पहिचानते हैं। वहा के लोग इसके पत्तो को निचोड़ कर इसका रस निकाल लेते हैं और उस रस में इलायची और लौंग मिलाकर उसे धूप में सुखा लेते हैं और उसकी गोलिया बना लेते हैं। ये गोलिया बच्चों को आतो के दर्द में, अनियमित दस्तों में और भूख न लगने की बीमारी में देते हैं।

मद्रास प्रांत के यनाड़ी नामक जंगली जाति के लोग इस पौधे के ताजे पत्तों और पकी हुई इमली को पीसकर उसकी गोलिया बनाकर रखते हैं और जब किसी को साप काटता है तो उसको १ गोली पानी में घिसकर दंश स्थान पर लगाते हैं। इन गोलियों के पानी को आखों में डालते हैं और प्रति घण्टे दो २ गोली खाने को देते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से साप का जहर नष्ट हो जाता है। नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसके सारे पौधे का क्वाथ बनाकर, उस काढ़े को बुखार के रोगी को देते हैं, जिससे अच्छा लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प दंश पर बिलकुल निरुपयोगी है।

रासायनिक विश्लेषण —

डॉयमॉक और उनके साथ काम करने वाले लोगों ने इस वनस्पति के रस में कड़वे और खट्टे तत्व पाये। वे इसमें के उपक्षारों को अलग नहीं निकाल सके। लेकिन उन्होंने इसकी राख में पोटेशियम साल्ट बड़ी मात्रा में पाया। गार्टर ने सन् १९११ में बतलाया कि इसमें पाया जाने वाला कटु तत्व एण्ड्रोग्रेफाइल्ड (Andrographalid) नामक एक पदार्थ है। सन् १९१४ में भादुरी ने यह स्पष्ट किया कि इसके पत्तों में दो प्रकार के कटु तत्व और कुछ उड़नशील तेल रहते हैं। पहिला कटु तत्व पीले रंग का चमकीला पदार्थ रहता है। इसमे अलके लाइड (उपक्षार) और ग्लुकोसाइड की कोई मात्रा नहीं मालूम होती। दूसरा कड़वा तत्व कालमेघिन (Kalmeghin) नामक है।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि कुछ समय पहले इस वनस्पति के कुछ योग (Preparations) बड़ी तादाद में इंग्लैंड भेजे गये थे। और वहा बड़े पैमाने पर इसका किनाइन की प्रतिनिधी औषधि और एक प्रभावशाली टॉनिक की तरह विज्ञापन किया गया था, लेकिन इसको वहा पर विशेष

सफलता नहीं मिली और परीक्षा करने पर इसमें मलेरिया को नष्ट करनेवाला कोई तत्व नहीं पाया गया। फिर भी फरमाकोपिया मे जो दूसरी कड़वी चीजें दर्ज हैं उनमे यह चीज किसी भी क़दर हलके दर्जे की नहीं है।

कालाबिखमो

नाम—

सिक्किम—कालो बिखमो। लेटिन—Aconitum Laciniatum (एकोनिटम लेसिनिएटम)।

वर्णन—

यह वनस्पति नेपाल से भूटान जाने के रास्ते में विशेष रूप से पाई जाती है। इसके झाड़ चार २ पाच २ फीट ऊँचे होते हैं। वहा के लोग बिखमा के नामसे इसको पहिचानते हैं। इसकी जड़े गठानदार होती हैं। ये बाहर से हल्के बादामी रंग की रहती हैं। इसका प्रकाड सीधा, सख्त और ततुमय होता है। इसके पत्ते फैले हुए होते हैं। फूल लगने के समय ये खिर जाते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी और रूएँदार होती हैं। इसके बीज बादामी रंग के होतेहैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक विषैली जाति की वनस्पति है। जगल नी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि इसके झाड़ों में ऐसा गुण है कि अगर उनके पास से होकर कोई मनुष्य निकले तो वह बेहोश हो जाता है। इस कारण इसकी जड़ों को लाकर सुंघाने से वह क्लोरोफार्म की तरह रोगियों को बेहोश करने का काम अच्छी तरह कर सकती है। क्लोरोफॉर्म की बेहोशी तो कभी कभी खतरनाक भी हो जाती है। मगर इसकी बेहोशी को दूर करने के लिये निर्विषी नामक वनस्पति जो इन झाड़ों के पास ही पैदा होती है, बड़ी कारगर है। उसकी जड़ को सुघाने से बिखमा से पैदा हुई बेहोशी तुरन्त दूर हो जाती है।

कांस

नाम—

संस्कृत—काशः, सुकाण्डः, काकक्षुः, शिरी। मारवाड़ी—कास। हिन्दी—कास। गुजराती—कांसड़ो। मराठी—कसई, कसाड़। बंगाली—केशोकास, कशाड़। पंजाबी—कास, किलक। तेलगू—रेलु। लेटिन—Saccharum Apontaneum (सेकेहरम एपोन्टेनम), S. Semidecumbus (सेकेहरम सेमीडेकम्बस)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का घास होता है। जिस जमीन में यह घास पैदा होता है, उसमें कोई दूसरी फसल पैदा नहीं होती। इसका कारण यह है कि इसकी जड़ें बहुत गहरी बैठती हैं। और वे ज़मीन के सब कीमती तत्वों को चूस लेती है। इसलिये दूसरी फसलें पनप नहीं सकतीं। आजकल के कृषि-विद्या-विशारदों ने कास की जड़ों को नष्ट करने के लिये नये नये औजार बनाये हैं। मगर अभी तक उन्हें पूरी सफलता

नहीं मिलो है। शरद ऋतु में इस घास पर सफेद सफेद सुन्दर मंजरिया लगती हैं, जिससे इस घास की परीक्षा आसानी से हो जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह शीतल, मधुर, तृप्ति कारक, रोचक, बल, और वीर्य को बढ़ाने वाला, पचने में मधुर, पेट को मुलायम करने वाला और स्निग्ध होता है।

पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, पथरी, रुधिर विकार रक्तपित्त, क्षतक्षय और पित्त के रोगों में यह लाभदायक है। इसकी और गोखरू की जड़ को मिश्री के साथ औटाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

कासनी

नाम—

हिन्दी—कासनी। गुजराती—कासनी। अरबी—हिन्दुबर, इन्दिबा। फारसी—कासनी। पंजाब—कासनी, सूचल, गुल, हन्द। तामोल—काशिनी। तेलगू—कासिनी। उर्दू—कासनी। लेटिन-Cichorium Intybus (सिकोरियम इन्टीबस)

वर्णन—

यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी हिन्दुस्तान में ६००० फीट ऊँचाई तक और बलूचिस्तान, पश्चिमी एशिया और यूरोप मे पैदा होती है। इसके पत्ते काहू के पत्तों की तरह होते हैं। इनकी किनारें कटी हुई रहती हैं और इनकी नोक नीचे की ओर झुकी हुई रहती हैं। इसके फूल चमकीले नीले रंग के होते हैं और इसकी मंजरिया मुलायम होती हैं। इस वनस्पति का रस दूधिया होता है। इसकी दो जातिया होती हैं। एक जिसकी खेती होती है और दूसरी जो अपने आप जंगलों में पैदा होती है। जो खेतों में पैदा होती है वह मीठी होती है और जो जंगल मे पैदा होती है वह कड़वी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कासनी की वह जाति जो खेतों में पैदा होती है मीठी, पौष्टिक और शीतल होती है। प्यास, सिर दर्द, नेत्र रोग, गले की जलन, यकृत की वृद्धि, ज्वर, वमन और अतिसार मे यह बड़ी लाभदायक है। इसकी जड़ इस वनस्पति का सर्वोत्तम भाग है। यह उत्तम अग्निवर्धक, मूत्रल, रक्त वर्धक और शोधक होती है। इसके पत्तों का जोड़ों के दर्द को कम करने के लिये लेप किया जाता है। इसके बीज मस्तिष्क को शक्ति देने वाले होते हैं। ये कृमिनाशक, क्षुधा वर्धक और सिर दर्द, नेत्र रोग, कटिवात, यकृत रोग, और श्वास कष्ट में लाभदायक हैं।

जंगली जाति—

इसकी जंगली जाति कड़वी, पौष्टिक, ऋतुस्राव नियामक और कृमि नाशक होती है। यह आर्तो

को सिकोड़ने वाली तथा श्वास, पित्त और प्रदाह में लाभदायक है। इसकी जड़ पौष्टिक, शीतल और शान्तिदायक होती है। इसके बीज पेट के आफरे को दूर करने वाले और हृदय को बल देने वाले होते हैं। इनका काढ़ा मासिक धर्म के रजोरोध को दूर करने के लिये काम मे लिया जाता है। ये पित्त जन्य वमन को भी बन्द करते हैं।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार इसके पत्तों को बिना धोये हुए काम में लेना चाहिये। पानी में धो डालने से उनके बहुत से गुण नष्ट होजाते हैं। इसके बिना धोये हुए पत्ते कब्जियत को दूर करते हैं। मुंह से खून गिरने की बीमारी में मुफीद हैं। इस बीमारी में इसके नौ माशे पत्ते ठंडे पानी के साथ देना चाहिये। मेदे की गर्मी को दूर करने के लिये इस से बढ़कर कोई दवा नहीं है। गर्मी की वजह से जिसको पागलपन हो उसको जौ के आटे के साथ इस औषधि को पीस दिलपर लेप करने से लाभ होता है। यह गरम प्रकृतिवालों के जिगर को कूवत देती है। गरमी के कारण पैदा हुए जलोदर रोग में भी यह लाभदायक होती है। यह गुर्दे के सुद्दे खोलती है।

कासनी के बीज—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार कासनी के बीज दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होते हैं। ये सिरदर्द, दिलकी धड़कन, जिगर की गर्मी और प्यास, पीलिया, गुर्दे तथा तिल्ली की बीमारी में लाभदायक है। दमा और खासी में ये नुकसान पहुँचाते हैं। इनकी मात्रा ७ माशे से १७ माशे तक है।

कासनी की जड़—

कासनी की जड़ वात, पित्त और कफ आदि शारिरिक तत्वों को मुलायम करती है। यह गर्मी से पैदा हुए गठिया में भी लाभदायक है। इसकी जड़ को पीसकर बिच्छू के दश स्थानपर लगाने से लाभ होता है।

हक्सबूलर के मतानुसार लोटे लई में यह वनस्पति अतिसार और पित्त को दूर करने के काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ को सुखाकर, पीसकर, काफी के साथ मिश्रण किया जाता है। यह यकृत में रक्त जम जाने की बीमारी पर लाभदायक है। इसके पिसे हुए बीज मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करते हैं। इसके अन्दर सिकोरिम, लेक्टुसिन, कटुतत्व और ग्लुकोसाइड व इटीबिन भी पाये जाते हैं।

कासिनि

नाम—

हिन्दी—कासिनि। बंगाल—कासिन। बाम्बे—कासिनि। तामील—काशिनि। लेटिन—Cichorium Endivia (सिकोरियम इंडिव्हिया)

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति भूमध्य प्रदेश की है। इस की खेती भारत में भी की जाती है।

वानस्पतिक विवरण—

इसमें और कासनी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसके पत्ते उससे कुछ छोटे और कम सकड़े होते हैं।

गुण—

हकीम लोग इस दवा को शोथ के लिये शान्तिदायक मानते हैं। यह शीतल है। यह पित्त जन्य तकलीफो में उपयोगी होती है।

इसकी जड़ अग्निमाद्य और ज्वर में पौष्टिक और शान्तिदायक मानी जाती है। इसका फल ज्वर, सिर दर्द, और पीलिया के लिये मुफीद है।

इरवाइन के मतानुसार इसकी जड गरम, उत्तेजक और ज्वर निवारक मानी जाती है। इसे विरेचन लेने के पहिले काम में लेते हैं। इसके बीज शरबत मे उपयोग में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह रोगोपशामक और शीतल है, यह पित्त की शिकायतों में काम में लीजाती है। इस में कटु तत्व रहते हैं।

कासिम

नाम—

यूनानी—कासिम।

वर्णन—

एक यूनानी ग्रंथकार के मतानुसार यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसकी डालियां बहुत पतली, पत्ते इक्लिलुल्मुल्क के पत्तों की तरह, बीज काले, ठोस, और खुशबूदार होते हैं। गिलानी के मतानुसार इसकी जड़ को इस्तरगाज कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह मेदे और मसाने के जमे हुए खून को बिखेर देती है और मूत्रल है। यह सर्दी के दर्द, फालिज, और जलोदर में लाभदायक है। इसके बीजों को ६ रत्ती की मात्रा में १० दिन तक शराब के साथ देने से गुर्दे का दर्द जाता रहता है। यह गरम मिजाज वालों को नुकसान पहुँचाती है और उन में सिरदर्द पैदा करती है।

कांसी

नाम—

संस्कृत—कास्य, विद्युत प्रिय, कंस, ताम्रार्ध, प्रकाश, घण्टाशब्द, इत्यादि। हिन्दी—कांसा,

कांसी। बंगाल—कांसा। मराठी—कासे। गुजराती—कांसू। कर्नाटकी—कंचु। तेलंगी—कंचु। अंग्रेजी—Pell metal, Bronze। फारसी—रोइन। अरबी–तालिकून।

वर्णन—

यह एक उपधातु होती है जो तांबे और रांगे के संयोग से बनती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कांसा कसेला, कडवा, गरम, लेखन, विशद, कुछ दस्तावर, भारी, नेत्रों को हितकारी, रुखा और कफ पित्त को दूर करने वाला होता है।

यूनानी मत—यह यूनानी मत से तीसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क होती है। यह वमन को बन्द करती है; बुद्धि को ताक़त देती है; सूजन को बिखेरती है।

खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि कांसी का एक तख्ता आयने के बराबर बनाकर अँधेरे मकान में लटकाया जाय और लकवे का रोगी उस मकान में रहकर हमेशा उसको देखता रहे, तो उसका रोग मिट जाता है।

कांसी को भी दूसरी धातु, उपधातुओं की तरह शुद्ध करके उसकी भस्म बनाना चाहिये और उसके बाद उसका उपयोग करना चाहिये। अशुद्ध हालत मे इसका उपयोग करने से अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े होते हैं।

काहू

नाम—

हिन्दी—काहू, खस, सालाद। फारसी—काहू। पंजाबी—काहू। सिंध—काहू। तेलगू—काहू। उर्दू—काहू। लेटिन—Lactuca Scariola (लेक्टुका स्केरिओला)

वर्णन—

काहू के नाम से बाजार में इसके बीज मिलते हैं जो सफेद रंग के होते हैं और ठंडाई में डालने के काम में लिये जाते हैं। इसका पौधा फुट भर के करीब ऊँचा होता है। पूने की तरफ इसकी बहुत खेती होती है। वहा इसको "सालिट ची भाजी" कहते हैं। इसके पत्ते कटी हुई किनारों के, लम्ब गोल और रुएँदार होते हैं। इसकी डाली को तोड़ने से उसमें से बहुत सा पानी सरीखा चिकना रस निकलता है। वहा के लोग इसकी डालियों को तोड़ २ कर, इस रसको इकट्ठा करके जमाते हैं। इस जमे हुए रसका रंग काला और स्वाद कड़वा होता है। सिन्ध और पंजाब में यह जमा हुआ रस "खीसाओ" के नाम से बिकता है।

गुण दोष और प्रभाव—

काहू के इस जमे हुए रस का धर्म अफीम, खुरासानी अजवायन, और भंग की तरह नशीला

और निद्रादायक होता है। यह खांसी को दूर करता है, वेदना नाश करे। इसकी ताजी तरकारी शीतल, रोचक, और रक्त-पित्त को दूर करने वाली होती है।

कब्जियत के कारण आंतों में विषैली सामग्री के इकट्ठे हो जाने से निद्रानाश, चर्म रोग इत्यादि जो अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं उनमें इसकी तरकारी कच्ची हालत में खिलाने से बड़ा लाभ होता है। इससे दस्त साफ होती है। रक्त शुद्धि होती है। नींद आने के लिये इसका जमा हुआ रस दिया जाता है। इससे गाढी और सुखदायक नींद आती है। अफीम से भी गाढ़ निद्रा आती है, मगर उससे कब्जियत होती है और यकृत की क्रिया बिगड़ती है। यह दुर्गुण इस औषधि से पैदा नही होते। इसका वेदनानाशक गुण अफीम की अपेक्षा बहुत कम है। इस कारण भयंकर कष्ट की वजह से जब निद्रा भंग हो जाती है तब काहू के सत्व से लाभ नहीं होता। उस समय अफीम ही कारगर होती है। सूखी खासी और कफ क्षय में काहू का सत्व देने से लाभ होता है। अफीम से भी खांसी में लाभ होता है। मगर उससे कफ का पड़ना बन्द हो जाता है। काहू के सत्व से कफ का पड़ना बन्द नहीं होता।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते स्वाद में मधुर होते हैं। ये निद्रा लाने वाले, अग्नि वर्धक, दूध बढ़ानेवाले और रक्तश्राव को मिटाने वाले होते हैं। ये रक्त को अपनी वास्तविक स्थिति पर लाते हैं और रक्त की लाली को बढ़ाते हैं। ये पित्तनाशक, जलन को मिटानेवाले, सिर दर्द और नाक की तकलीफों में लाभदायक, तथा श्वास नलियों के प्रदाह और हृदय रोग के कारण पैदा हुई खांसी में फायदा पहुँचाते हैं। खुजली, चक्षुरोग, यकृतरोग, और धवल रोग में भी यह लाभदायक है।

काहू के बीज—

काहू के बीज पित्त और खून की तेजी को कम करते हैं, प्यास को बुझाते हैं, दिमाग़ को साफ करते हैं; मेदे की सूजन को नष्ट करते हैं, नजले और जुकाम में लाभदायक हैं। इसको पीसकर पेशानी पर लेप करने से सर दर्द दूर होता है और नींद आ जाती है। इन बीजों के लगातार अधिक सेवन से मनुष्य की कामेंद्रिय की ताकत कम होती है और नपुंसकता के लक्षण नजर आने लग जाते हैं।

काहू का तेल—

इसके बीजों से निकाला हुआ तेल तीक्ष्ण होता है। यह सिर, कान और नाक पर लगाने से, मस्तक को फायदा पहुँचाता है। मालीखोलिया, वहम और मिरगी में लाभदायक है। यह निद्रा लाने वाला, ज्वर निवारक, प्रदाह मिटाने वाला और सिर दर्द में लाभ पहुँचाने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु शीतल, शान्तिदायक, मूत्रल, निद्रा लाने वाली और कफ निसारक होती है। इसमें लेक्ट्यूसिन नामक कटुतत्व पाया जाता है।

किन्दल

नाम—

मराठी—किन्दल, किंजल । बांबे—किंदल, किजल । तामील—मरुदु, इलइक्दुकइ, पुल्ती, पुलुवई, पुलुवई मुरूदु । तैलगू—निमिरी, पुलमदी, पुलगीपुनकरकई । तुलु—मरुवे । लेटिन—Terminalia Paniculata (टरमीनलीया पनिक्युलटा)

वानस्पतिक विवरण—

यह एक बड़ा झाड है । इसके छोटे हिस्से मुलायम होते हैं । इसके पत्ते लंबे, चौड़े और तीखी नोक वाले होते हैं । ये फीके बादामी रहते हैं । इनके पीछे की बाजू नसें रहती हैं । इसके फूल गुच्छे में लगते हैं । इनके फल लंबे रहते हैं । इसका छिलटा गहरा बादामी रहता है, यह वनस्पति बम्बई, ट्रावनकोर, कुर्ग और नीलगिरी में पैदा होती है ।

गुण—

इसके ताजे फूलों का रस पातालगरुडी की वेल की जड़ के साथ विशूचिका रोग में दिया जाता है। यह वस्तु अफीम के जहर को दूर करने में भी दी जाती है । इस काम मे इसका रस चार तोला और जामफल के छिलके का रस चार तोला दिया जाता है । इसी का रस घी और सेंधे नमक के साथ में कर्ण मूलप्रदाह में काम में लिया जाता है ।

केस और महस्कर इस्फाक के मतानुसार इसके छिलके में मूत्रल और हृदय को पुष्ट करने वाले गुण हैं ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विशूचिका और अफीम के विष को दूर करने के काम में ली जाती है ।

किरायता छोटा

नाम—

संस्कृत—कृमिहरिता । हिन्दी—छोटा किरायता । बंगाली—नागजिन्हा । बम्बई—मामेजवा । गुजराती—मामेजवो । मराठी-मामेजवा । कठियावाड़—मामेजू । मद्रास—वेलारुबु । सिंध—मनुचा । तामील—बल्लरी । तेलगू—नेलागुलि । लेटिन—Enicos Temma Litorale, (एनी कोस्टेमा लिटो रेली) ।

वर्णन—

यह छोटी जाति का क्षुप समुद्र के किनारे व तर जमीन में सब दूर होता है । बंगाल में यह नहीं होता । गुजरात और उत्तर कोकण में यह बहुत होता है । यह पौधा फुट भर ऊँचा होता है । इसकी शाखाएं जमीन के बराबर से ही फूट जाती हैं । इसके पत्ते ३·२ से ६·३ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं । ये सनाय के पत्तों की तरह होते हैं । इसके फूल गुच्छों में लगते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद—यह वनस्पति तिक्त और कटु होती है। यह कृमिनाशक रहती है। यह ज्वर और वात व्याधियों पर लाभदायक होती है।

यह वनस्पति बहुत कटु होती है। मद्रास में इसका उपयोग अग्निप्रवर्द्धक औषधि के तौर पर किया जाता है। इसके पौष्टिक गुण के अतिरिक्त इसमें कुछ विरेचक गुण भी होता है।

ब्लेटर के मत के अनुसार इस वनस्पति को कुचल कर सर्प दंश के स्थान पर लगाने के काम में लेते हैं।

डॉक्टर चोपरा के मत के मुताबिक यह वनस्पति भारत के कुछ भागों में छोटा किरायता के नाम से जानी हुई है। इसके फूल वाले पौधे अग्नि प्रवर्द्धक, पेट का आफरा उतारने वाले और कटु पौष्टिक के तौर पर काम में लिये जाते हैं। ये पंजाब और बॉम्बे के बाजार में आम तौर से प्राप्त होते हैं। ये अग्नि प्रवर्द्धक, पौष्टिक और विरेचक होते हैं। इसमें कुछ कटु तत्व मौजूद रहते हैं।

किरमानी अजवायन

नाम—

संस्कृत—छर, छोहर, जन्तु नाशन, खुर पुष्पिका। हिन्दी—किरमानी अजवायन, छुहरी अजवायन, छुहरी अजमोद। अरबी—अफसन्तीनज़ बरह, सरीफन, सरीकन। गुजराती—छुहरि अज-मोदा। मराठी—किरमानी ओवा, चोर ओवा।। फारसी—अफसन्तीन लवई, दरमनेह, सरीकुन, शिह। उर्दू—दरमनाह। लेटिन—Artemisia Maritima (आर्टिमिसिया मेरिटिमा)।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमाऊ तक ७००० फीट से ११००० फीट की ऊँचाई तक तथा अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, ईरान और रशिया में पैदा होती है। यह पौधा अजवायन के पौधे की तरह होता है। इसके हरे पौधे में तेज खुशबू आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत -आयुर्वैदिक मत से इसके बीज कड़वे, गरम, तीक्ष्ण और तेज स्वाद वाले होते हैं। ये अग्निवर्धक, कामोद्दीपक, कृमिनाशक, भूख बढ़ाने वाले, त्रिदोष निवारक और अजीर्ण, पेट के दर्द और आंव को नाश करने वाले होते हैं। कृमियों को नष्ट करने के सम्बन्ध में इसकी उपयोगिता को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। यह पेट के गोल जन्तुओं को निकाल देती है। मगर इसमें विरेचक गुण न होने से इसके साथ अंरडी का तेल या कोई दूसरा जुलाब देना पड़ता है। कृमि, ज्वर, विषम ज्वर, सतत ज्वर, इत्यादि में इसकी फांट बनाकर देने से बहुत लाभ होता है।

उपदंश का रोग होने पर गुदा और मूत्राशय में जब असह्य वेदना होती है तब इसको देने से वेदना शमन होती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके फूलों के अंदर "सेंटोनिन" नामक एक क्षार स्वभावी द्रव्य १.७५ प्रति सैकड़ा की मात्रा में प्राप्त होता है। यह इसमें पाई जाने वाली सबसे महत्व की वस्तु है। इसकी क़ीमत वर्तमान में ४०० रुपये प्रति पौंड है।

यूनानी मत—यूनानीमत से यह वनस्पति विरेचक, कृमिनाशक, विष निवारक और घाव को मिटाने वाली होती है। यह कफ़ को रोकने वाली और रक्तादि विकारों को दूर करने वाली है बिच्छू के विष, दंत रोग, शूल और चक्षु रोग में भी यह लाभ दायक है। बी० डी० बसु के मतानुसार इसका शीत निर्यास पार्यायिक ज्वरो में अधिक उपयोगी है। यह एक उपयोगी ज्वर निवारक पदार्थ है।

कोमान के मतानुसार यह वस्तु गोल कृमियों को नाश करने के लिये बहुत मुफीद मानी गई है। किरमानी का चूर्ण, इसके पत्ते और डाली के साथ में कृमिनाशक वस्तु की तौर पर दिया जाता है। और साथ ही अरंडी के तेल का जुलाब दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति बहुत प्राचीन समय से औषधि की बतौर व्यवहार में ली जा रही है। ग्रीक और रोमन लोग इसे अग्नि वर्द्धक वस्तु की तौर पर और कृमिनाश करने के काम में लिया करते थे। अरब और फ़ारस के चिकित्सक भी प्रायः इसे इसी काम में लेते थे और ऐसा मालूम होता है कि उन्हीं लोगों के द्वारा भारतवर्ष में भी इसका प्रवेश हुआ है। क्योंकि प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में इसका उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता है। हिन्दुस्तान में यह वनस्पति कृमिनाशक वस्तु के तौर पर काम में ली जाती है। इसके फूल दो से लेकर ४ ड्राम तक की मात्रा में दिये जाते हैं। यह वनस्पति जलोदर रोग में भी काम में आती है। इस से तयार किया हुआ काढ़ा जिसमें इसके उड़नशील तेल का भी अंश रहता है, हृदय की श्वास क्रिया प्रणाली को उत्तेजना देने के काम में लिया जाता है। इसके अन्दर सेंटेनीन नामक पदार्थ पाया जाता है जो बहुत मूल्यवान वस्तु है।

इस पदार्थ को भारतवर्ष में प्राप्त करने के प्रयोग किये गये हैं। यह वनस्पति काश्मीर के कुछ भागों में काफी तादाद में पैदा होती है। इस वनस्पति से सेंटेनीन प्राप्त करने के प्रयत्न भी जारी हैं। यद्यपि अभी तक के प्रयोगों से सेंटेनीन पर्याप्त मात्रा में नहीं पाया गया। पर इसका प्रधान कारण जिस विधि से यह यहां एकत्रित किया जाता है उसकी कमजोरी ही है। रशिया के कारखानों में सेंटेनीन नवीन और परिष्कृत विधि से निकाला जाता है। अगर उस विधि से यहां भी निकाला जाय तो काफी सफलता प्राप्त हो सकती है।

भारतीय सेंटेनीन और रशियन सेंटेनीन के गुणों पर भी तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जा चुका है और उससे यह बात साबित हो चुकी है कि रशियन सेंटेनीन से भारतीय सेंटेनीन किसी कदर भी गुण में कम नहीं है।

इस वनस्पति की जॉंच 'कार माइकेल हास्पिटल आफ ट्रापिकल डिसीज' और अलीपुर सेंट्रल जेल में की गई। भारतीय सेंटेनीन को "केलोमल" और सोडियम बाय कारबोनेट के साथ रोगियों को

दिया गया और ४८ से ७२ घंटो के दरमियान में दस्त की जांच की गई। १० दिन के बाद काफाइड (Kofoid) और बारबर (Barber) विधि से उनके मल की फिर जाच की गई। परिणाम यह मालूम हुआ कि यूरोप से प्राप्त किये हुए सेटेनीन के बजाय भारत से प्राप्त किया हुआ सेटेनीन ज्यादा कामयाब होता है।

मि० मेपलस्टोन ने हाल ही में इसका अध्ययन किया है उनके मतानुसार अकेले सेंटेनीन की अपेक्षा से टेनीन और चेना पोडियम दोनों का मिश्रण ज्यादा कारगर होता है।

से टेनीन चिकित्सा शास्त्रों में बहुत ही खर्चीली वस्तु है। वर्तमान में इसकी कीमत ४०० रुपये प्रति पौंड है। सन १९१४ के महायुद्ध के समय और उसके बाद में यह ७०० रुपये प्रति पौंड बिक रहा था। भारतवर्ष ऐसे गरीब मुल्कों में सेंटेनीन को सस्ती कीमत में पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि इस देश में एसकेरिस (ascaris) और आक्सूरिस (Oxyuris) नामक सक्रामक रोग ज्यादा हैं और इन रोगों पर यह औषधि बहुत काम करती है।

किरालू

नाम—

पंजाब—किरालू, किरिकि, कुकरी। अरबी—साप की खूंब। लेटिन—Arisaema Speciosum (एरिसेमा स्पेसिओसम)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से सिक्किम तक और भूटान में पाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सर्पदंश में फायदा पहुँचाती है।

कीड़ामारी

नाम—

संस्कृत—भृंगी, धूमपत्र, ग्रध्रानी, ग्रध्रपत्र, कीटमारि, कीटारि इत्यादि। हिन्दी—कीड़ामार, किदमारी, किरमार, गंदन, गंदालि। गुजराती—कीड़ामारी। मराठी—कीड़ामार, गिंधान, गंधाटी। तेलगू—गद परकू, गदिदे। तामील—अदुथिन पलई, आड़तिन्नापाले। लेटिन—Aristolochia Bactiata (एरिस्टोलोकिया बेक्टिएटा)

वर्णन—

यह वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति विशेष करके गुजरात और काठियावाड़ की काली जमीनों में बहुत पैदा होती है। छोटी हालत में यह जमीन पर खड़ी रहती है। मगर बड़ी होने पर लता की तरह जमीन पर फैल जाती है। इसके पत्ते नरम रुई के रंग के और हृदय की शक्ल के होते हैं। इस के फूल

लंबे जामुनी रंग के होते हैं। इसके फल लंब गोल, बीज काले और चपटे होते हैं। औषधि के रूप में इसका पंचांग ही काम में आता है।

गुण-दोष और प्रभाव —

आयुर्वेदिक मत —आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, विरेचक और कृमिनाशक होती यह वात और कफ में उपयोगी है। ज्वर और जोड़ों के दर्द में लाभ पहुँचाती है। कृमियों को नष्ट करने और घाव भरने में यह बड़ी प्रभावशाली है।

शोढ़ल के मतानुसार कीड़ामारी का रस अत्यन्त कड़वा और उष्ण वीर्य होता है। इसलिये यह वायु और कफ को नष्ट करता है। इससे ज्वर में लाभ होता है और जोड़ों के दर्द में इसको लगाने से तत्काल असर मालूम होता है।

राजनिघंटु के मतानुसार कृमियों को नष्ट करने और सूजन को बिखेर देने में यह औषधि बड़ा असर बतलाती है। इससे अग्नि का दीपन होता है और भोजन पर रुचि पैदा होती है। खांसी में भी यह दवा लाभ पहुंचाती है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कीड़ामारी कड़वी, कृमिघ्न, गर्भाशय को उत्तेजना देने वाली स्वेद जनक, पार्य्यायिक ज्वरों को रोकने वाली और विषनाशक है। इसकी सूखी हुई वनस्पति की अपेक्षा ताजा वनस्पति में विशेष गुण रहते हैं।

इसके सूखे हुए पंचांग की मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक किसी सुगंधित पदार्थ के साथ दी जाती है और इसकी हरी वनस्पति की मात्रा १ से २ पत्ते तक है।

गर्भाशय के ऊपर कीड़ामारी की क्रिया ईश्वरमूल की तरह ही स्पष्ट और निश्चित होती है प्रसूति कष्ट में इसकी जड़ के चूर्ण को १॥ ड्राम की मात्रा में देने से सुख प्रसव हो जाते हैं। कष्ट प्रद मासिक धर्म में और स्त्रियों के पाडु रोग और कब्जियत में भी यह औषधि लाभदायक है।

कीड़ामारी में ज्वर को नष्ट करने का और पसीना लाने का गुण भी तारीफ करने लायक है। विषम ज्वर में कीड़ामारी को कालीमिरची के साथ खिलाने से और शराब में पीस कर शरीर पर मालिश करने से बड़ा लाभ होता है। विषम ज्वर में जब हाथ पैरों की फूटन होती है तब कीड़ामारी, कालीमिर्च मालकांगनी और समुद्रफल को समान भाग लेकर शराब में पीस कर लेप करने से लाभ होता है। संधियों की सूजन और आमवात में कीड़ामारी को सूंठ के साथ देना चाहिये। और संधियों पर इसका लेप करना चाहिये। कीड़ामारी में रेचक गुण भी है। इसलिये जिस ज्वर में दस्तें लगती हो उस में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

कीड़ामारी का कृमिघ्न धर्म संशय रहित और अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके सेवन से पेट के कृमि निश्चित रूप से निकल जाते हैं। कटु पौष्टिक होने से इसका प्रयोग बड़ा लाभदायक है। उदर शूल में इसके दो पत्ते अरण्डी के तेल के साथ दिये जाते हैं। बच्चों के उदर शूल में इसके पत्तों को पीसकर नाभि पर लेप किया जाता है। अजीर्ण और कब्जियत में भी यह बहुत गुणकारी है।

चर्म रोगों पर भी इसका जन्तु नाशक गुण स्पष्ट नजर आता है। दाद पर इसके पत्तों को अरंडी के तेल में पीसकर लेप किया जाता है। घावों के कृमियो को नष्ट करने और घाव भरने के लिये इसका रस लगाया जाता है। उपदंश में इसके रस को दूध के साथ दिया जाता है। सुजाक में इसका रस अफीम के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। विषैले जानवरों के विष को नष्ट करने लिये इसका भीतरी और बाहरी प्रयोग किया जाता है।

कोमान के मतानुसार इसके पिसे हुए पत्ते अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर बच्चों की टांगों पर होने वाली खुजली पर लगाने के काम मे लेते हैं। इसकी जड़ का काढा इससे १० गुने पानी में तैयार करके १ से २ औंस तक की तादाद मे गोलकीडो को नष्ट करने के लिये दिया जाता है। इसके बाद अरण्डी के तेल का जुलाब दे दिया जाता है। इससे सब कृमि निकल पड़ते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस वस्तु का प्रत्येक भाग औषधि के काम में आता है। यह बहुत कड़वी होती है। आधी औंस सूखी औषधि का काढा १० औंस जल में तैयार करें। यह काढ़ा १ से २ औंस तक की मात्रा में कृमिनाश करने और ऋतुश्राव को नियमित करने के लिये दिया जाता है। इसकी सूखी जड़ को १ से २ ड्राम तक की मात्रा में देने से गर्भाशय की सिकुड़न बढती है। इसे सिंध में विरेचक वस्तु के तौर पर काम मे लेते हैं। यह सर्प विष की प्रतिरोधक भी है। इसमें उड़नशील तत्व और उपक्षार रहते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है।

कुकुरविचा

नाम—

हिन्दी—कुकुर बिचा। अरबी—कफेट्ठसा। उर्दू—ककरूदे रूमी। फारसी—करफासूमी। बम्बई—गोवली। तेलगू—जीवीलिके। मराठी—गोवाली। लेटिन—Grewia Polygama (ग्रेविया पोलिगेमा)।

वर्णन—

यह क्षुप जाति का छोटा पौधा होता है। इसकी शाखाएं नाजुक होती हैं। यह वनस्पति सूखी जमीनों में सर्वत्र होती है। कोकण, नीलगिरी घाट और सिंध से पूर्व की तरफ ४५०० फीट की ऊंचाई पर हिमालय प्रान्त में विशेष रूप से होती है। इसके पत्ते शल्याकृति, कटी हुई किनारों के, फूल सफेद और फल बदामी, चमकीला और रुएंदार होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी दो जातिया होती हैं। एक कड़वी दूसरी निस्वाद। कड़वी जाति के पत्ते कृमि नाशक, प्रदाह को कम करने वाले तथा नाक और आंख की बीमारी में उपयोगी होते

हैं। इस वृक्ष की जड़ आंतों को सिकोड़ने वाली, तथा विशूचिका, हड़काव (पागल कुत्ते का विष) मूत्राशय की तकलीफ और ववासीर में लाभ पहुँचाने वाली होती है।

दूसरी जाति के पत्ते वेस्वाद होते हैं। ये रेचक, कफ़ निस्सारक, पेट के अफरे को दूर करने वाले, ऋतुश्राव नियामक, दुग्ध वर्धक और घाव को भरने वाले होते हैं। ववासीर, गठिया, जोड़ों के दर्द, नेत्र रोग और तिल्ली के बढ़ने पर ये लाभदायक हैं।

केंपवेल के मतानुसार इसका फल सन्थाल लोगों के द्वारा अतिसार और आमातिसार में काम में लिया जाता है। घावों की सफाई के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेचिश में लाभदायक है।

कुकुरलता

नाम—

संस्कृत—देवदाली, जीमूत, कटफल, लोमश पत्रिका इत्यादि। **हिन्दी**—बन्दाल, कुकुरलता, विदालि, घग्गरवेल, घुसरन। **बंगाल**—ओंपालता। **गुजराती**—कुकड़वेल, वाउपॅण। **मराठी**—देवडांगरी, कुकुड़वेल। **सिन्ध**—जॅगथोरी। **कनाड़ी**—देवलाली। **तेलगू**—पनिविटा। **लेटिन**—Luffa Echinata (लूफा एचिनेटा)।

वर्णन—

इसकी वेल गुजरात, सिन्ध, बंगाल, देहरादून, उत्तरी अवध और बुन्देलखण्ड में विशेष रूप से पैदा होती है। यह लता वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका तना बहुत नाजुक होता है। इसके पत्ते ५ जिव्हा वाले और रुएँदार होते हैं। इसके नर और मादा दो प्रकार के फूल लगते हैं। नारी पुष्प लम्बे होते हैं। इसके फल गोल जायफल की तरह होते हैं। फलों को तोड़ने से भीतर जाली मिलती है। इसके वीज काले, चपटे और अंडा कृतिके होते हैं। इस वनस्पति की तीन जातिया होती हैं, मगर तीनों के गुण दोप एक समान रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, दीपन, गरम, विष नाशक, वमन कारक, कृमिनाशक, मूत्रल, शिरो विरेचक, व्रणशोधक और व्रण रोपक होती है। यह प्रदाह, खांसी, पीलिया, गुदाद्वार सम्बन्धी रोग, ज्वर, श्वास, रक्त की कमी, क्षय, ववासीर, हिचकी, और चूहे के विष में लाभदायक है। यह मुँह की वदबू को दूर करती है। इसकी जड़ विरेचक, कृमिनाशक और वेदना को दूर करने वाली होती है। यह वात में लाभदायक है। इसकी केशर प्रसूति के समय की वेदना को दूर करने के लिये और शीघ्रता के लिये दी जाती है।

यूनानीमत—इसकी जड़ गले की मज्जाओं को मजबूत करती और बालों को बढ़ाती है। इसके फल का स्वाद खराब है। यह पुरानी खांसी को और फेफड़े की तकलीफ को दूर करती है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कुकुरलता यह एक उत्तम मगर अत्यन्त तीव्र औषधि है। इसके एक रत्ती चूर्ण को नाक द्वारा सूंघने से छींके आती हैं और नाक से पीले रंग का बहुत सा पानी निकल कर शिरो विरेचन हो जाता है। यकृत वृद्धि और प्लीहा वृद्धि की वजह से पैदा हुए जलोदर रोग में यह औषधि कड़वी तरोई की तरह ही गुणकारी होती है। बवासीर रोग में इसके पंचांग के काढ़े से गुदा को धोने से दर्द और सूजन की कमी हो जाती है। बुखार में इसके पंचाग के काढ़े से शरीर को धोने से शरीर की दुर्गंधि कम होकर ज्वर हलका पड़ जाता है।

कामला रोग में भी इस वनस्पति का ताजा रस अथवा चूर्ण सुंघाने से बड़ा लाभ होता है।

कोकण में इसका शीत निर्यास उदर शूल और अतिसार में पीने को दिया जाता है।

उत्तरी भारत में यह औषधि जलोदर की बीमारी की एक तेज दवा मानी जाती है। इसके गुण विरेचक हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति वमन कारक, कृमि नाशक, पीलिया, क्षय और हिचकी में फायदा पहुँचाती है। इसमें कटुतत्व रहते हैं।

कुकुरजिव्हा

नाम—

संस्कृत—कर्कटजिवा,कुकुरजिवा। हिन्दी—कुकुरजिव्हा। बंगाल—कुरकुरजिवा। मराठी—कर्कणी, दिनों। तामील—नियाकू। तेलगू—अ कदोस। उड़िया—वन तुलसी। कनाड़ी—अन्दिलु। मलयालम—नेल्लुप, मनिपिरता। लेटिन—Leea Sambucina (लीआ सेम्बुसिना)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा पौधा होता है। यह सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। मगर विशेष कर दक्षिणी कोकण में बहुत पैदा होता है। इसकी शाखाएँ बहुत सीधी और हरी रहती हैं। इसके पत्ते छोटे बड़े कई प्रकार के होते हैं। बड़े पत्ते ३८ से ५० सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद और पुष्पाभ्यंतर आवरण कुछ कटे हुए रहते हैं। इसका फल ६ से ८ मिली मीटर तक लम्बा होता है। यह चमकीला, मुलायम और बैंगनी रंग का होता है। औषधि के प्रयोग में इसकी जड़ की छाल काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कुकुरजिवा शीतल, तृषा निवारक, स्वेदजनक और पाचक होती है।

रीढ़ के मतानुसार इसकी जड़ का काढा उदरशूल में लाभदायक होता है।

गोवा के पुर्तगीज लोग इसे रक्तातिसार और जीर्ण आमातिसार में देने के काम में लेते हैं। इसके भूंजे हुए पत्ते सर पर लगाने से सर में आने वाले चक्कर मिट जाते हैं। इसकी छोटी पत्तियों का रस पाचक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह उदर शूल, रक्तातिसार, आमातिसार और सिर के चक्कर में काम में ली जाती है। यह पसीना लाने वाली मानी जाती है।

कुचला

नाम—

संस्कृत—काकपीलू, मर्कटतिन्दुका, विषतिन्दू, विषद्रुम, गरद्रुम, रम्यफल, कालकूटक, इत्यादि। हिन्दी- कुचला, वेलवा, काजरा, निर्मल, कुलक। बंगाल—कुचला। गुजराती—कुचला, जहरी कोचला। मराठी—काजरा, कारस्कारुर, कुचला। अरबी—कातिलुल्कल्क, इजारगी, फलूजमाही। उर्दू—अजारकी, कुचला। तामील—कंजरम। तेलगू—मुसिडी। लेटिन—Strychnos Nuxvomica (स्ट्रिकनॉस नक्सवोमिका)।

वर्णन—

कुचले के वृक्ष की ऊंचाई ४० फीट तक होती है। इसके पत्तों की गन्ध बहुत खराब होती है। इनको हाथ से मलने से पीले रग का चिकना रस निकलता है। इसकी शाखाएं पतली होती हैं। मगर इतनी सख्त होती हैं कि मुश्किल से टूटती हैं। इसके फल टीमरू की तरह होते हैं। ये पकने पर पीले रग के हो जाते हैं। हर एक फल में चार २ पाच २ बीज निकलते हैं जो गोल, चपटे, व करीब एक इच लम्बे और पाव इच चौड़े होते हैं। इन बीजों के दोनो तरफ कुछ रुआ होता है। ये बीज ही कुचले के नाम से मशहूर हैं।

गुण दोष प्रभाव—

आधुनिक-चिकित्सा शास्त्र में इस औषधि ने बहुत महत्व प्राप्त किया है। ऐसा मालुम होता है कि इस औषधि का ज्ञान मुसलमानी हकीमों के द्वारा ही सब दूर फैला है। क्योंकि प्राचीन हिन्दू चिकित्सा ग्रथों में इस औषधि का नाम कहीं नहीं मिलता है।

शारगधर संहिता में अवश्य वशमष्टि के नाम से एक औषधि का वर्णन पाया जाता है जिसे कुछ लोग कुचला समझते हैं। मगर भाव प्रकाश ने वशमष्टि के जो लक्षण लिखे हैं उससे कुचले के लक्षणों में बहुत अन्तर है। प्राचीन यूरोपियन फरमाकोपिया में भी इस औषधि का नामोल्लेख नहीं था।

फारसी की पुरानी किताबों से मालूम होता है कि ईसा की १६ वीं शताब्दी में इस दवा के गुण यूरोप के लोगों को खास करके जर्मनी वालों को मालूम हुए और करीब सन् १५४० में डॉक्टर वेलरी ने इस औषधि का दवाओं की तरह वर्णन किया। सन् १६४० से इग्लेंड के दवा बेचने वालों की दुकानों पर यह दवा बिकने लगी मगर उस जमाने में इसका उपयोग केवल कुत्ते, बिल्ली, चूहे, स्यार और दूसरे

जानवरों को मारने के लिये किया जाता था। दवा के बतौर इसका उपयोग नहीं होता था। इसके बाद धीरे २ अंगरेजी डाक्टरा के द्वारा इस दवा के प्रयोग और रासायनिक विश्लेषण होने लगे और आज तो यह हालत है कि इस दवा से निकाले हुए सत्व और जौहर देशी और विलायती चिकित्सा पद्धति का एक प्रधान अङ्ग हो रहे हैं और करोड़ों रुपये की तादाद में इस औषधि की बिक्री होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से कुचला कडवा, कसैला, और तीखा होता है। यह गरम, क्षुधावर्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, आंतो को सिकोड़ने वाला और पार्यायिक ज्वरो को नष्ट करने वाला होता है। यह वात नाशक, कफ नाशक तथा रक्त रोग, कुष्ट, खुजली, बवासीर, रक्ताल्पता, पीलिया और मूत्र विकारों को दूर करने वाला होता है।

कुचले की क्रिया शरीर की तमाम इन्द्रियों पर होती है। पर इसकी विशेष क्रिया ज्ञान तन्तुओं के समूह पर होती है। मेदे पर इसकी क्रिया उतनी प्रभाव शाली नहीं होती, लेकिन मेदे के नीचे जो जीवनीय केन्द्र रहता है उस पर इसकी क्रिया होती है। अगर यह कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मनुष्य की जीवनी शक्ति के केन्द्र स्थान पर इसकी प्रभावपूर्ण क्रिया होती है। जिसके परिणाम स्वरूप यह मनुष्य के शरीर के हृदय की रक्त वाहिनी नाड़ियों को उत्तेजना देता है, जिससे हृदय के संकोच और विकास की क्रिया ठीक होती है, रक्त वाहिनियो की स्थिति सुधारती है और रक्त का दबाव बढता है। इसीके परिणाम स्वरूप श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान को भी उत्तेजना मिलती है और रोगी की श्वास लेने की शक्ति बढती है। जननेंद्रिय के केन्द्र स्थान पर भी इसका उत्तेजनात्मक प्रभाव होता है और इससे यह पुरुषार्थ बढ़ाने वाली औषधियों में भी अग्रगण्य माना जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई का कथन है कि कुचला अत्यन्त महत्व की उत्तम औषधि है। यह सब देशों की गवर्नमेंट्स के द्वारा स्वीकृत करली गई है। स्नायु जाल समूह को इतना प्रत्यक्ष उत्तेजन देने वाली दूसरी कोई औषधि इसके समान नहीं है। इसका प्रभाव शरीर पर स्थाई रूप से पड़ता है।

यह एक भयङ्कर विष भी है। इसको अधिक मात्रा में लेने से यह बुरी तरह से मनुष्य के प्राण हरण कर लेता है। मगर कम मात्रा में यह अमृत तुल्य जीवन की रक्षा करता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कुचले का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें प्रधान रूप से दो तत्व पाये जाते हैं। पहिला स्ट्रिचनाइन (Strychinine) और दूसरा ब्रूसिन (Brucine)। दोनों का ही स्वाद कड़वा रहता है। स्ट्रिचनिन एक प्रकार का रवेदार सत्व होता है। भारतीय कुचले के बीजों में १·२५ से लगा कर १·५ प्रति शत तक स्ट्रिचनाइन रहता है ब्रूसिन की मात्रा इससे अधिक पाई जाती है। यह इसके पत्तों, छाल और लकड़ी में भी प्राप्त होता है।

पाचन नलिका पर कुचले का प्रभाव—मनुष्य की पाचन नली पर कुचले की बहुत अच्छी क्रिया होती है। यह आमाशय की शक्ति को बढ़ाता है और पाचन क्रिया को सुधारता है। कुचला सर्वोत्तम कटु पौष्टिक है। अजीर्ण और आमाशय के प्राचीन रोगों पर इसका प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है। आमाशय की अपेक्षा भी पेट की आतों और नलो (बड़ी आंतों) पर इसकी क्रिया बहुत प्रभाव पूर्ण होती है। यह अंतड़ियों की शिथिलता को मिटाता है। छोटी मात्रा में यह कब्जियत को दूर करता है। पित्त प्रकोप की वजह से होने वाले सिर दर्द में इसका अर्क देने से बड़ा लाभ होता है। पाचन नली के रोगो में इसके बीजों का चूर्ण ही दिया जाता है। अर्क देने से इतना लाभ नहीं होता। आंतों के ऊपर इसकी क्रिया मज्जा तन्तुओं के मार्फत और स्वतन्त्र रूप से भी होती है। शाकाहारी लोगों के आमाशय के रोगों में और मांसाहारी लोगों के आतों के रोगो में कुचले का विशेष उपयोग होता है।

मज्जा तन्तुओं पर कुचले का प्रभाव—

कुचले का प्रधान क्रिया स्थल मनुष्य के ज्ञान ततुओं का समूह है। कुचले को पेट में खाने से अथवा उस का लेप करने से अथवा उस का इंजेक्शन देने से उसका सीधा प्रभाव मज्जा ततुओं पर ही हो जाता है। अतएव मज्जा तंतु के रोग, जैसे लकवा, गठिया, मृगी, धनुर्वात, गतिभ्रंश, ज्ञानभ्रंश इत्यादि रोगों पर कुचला अच्छा असर करता है। जिन रोगों में स्वयं मज्जा ततुओं का ही ह्रास हो जाता है उनमें यह औषधि अपना प्रभाव नहीं दिखला सकती। मगर मज्जातंतुओं पर आघात पहुंचने से शरीर में जो विकृतियां होती हैं उन्हे यह दूर करता है। कम्प रोग और मज्जातन्तु की वेदना पर कुचला संखिया के साथ मे दिया जाता है। मज्जा तन्तुओं की अशक्ति की वजह से होनेवाले बहरेपन में भी कुचले से अच्छा लाभ होता है।

हस्त मैथुन की वजह से होने वाले वीर्य पतन और अति मैथुन की वजह से पैदा हुई नपुंसकता को दूर करने में कुचला अच्छा काम करता है। मनुष्य की अवस्था के उतार के समय कुचले को काली मिरच के साथ देने से मनुष्य की काम शक्ति बहुत जाग्रत रहती है। कुचला एक अत्यन्त जोर दार और प्रत्यक्ष बाजी करण (कामोद्दीपक) द्रव्य है। मूत्राशय की कमजोरी पर इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है।

रक्ताभिसरण क्रिया पर कुचले का प्रभाव—किसी भी रोग में अगर हृदय की शिथिलता हो अथवा नाड़ी की शिथिलता होकर उसकी गति बढ़ जाय, उस स्थिति में कुचले को देने से बड़ा लाभ होता है। हृदय की शिथिलता होने से हृदय की धड़कन के ठोके स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ते। नाड़ी नरम होकर बहुत शीघ्र अथवा टूटती हुई चलती है। हाथों की हथेलियां, पैरों की पगतलियां और कानों की पपड़ियां ठण्डी हो जाती हैं, थोड़ा सा श्रम करते ही पसीना छूटने लगता है और दम भरने लगता है। ऐसी स्थिति में कुचले का प्रयोग देने से मन्त्र-शक्ति की तरह काम होता है। फेफड़े के रोगो में हृदय की शिथिलता होने पर भी ऐसे ही चिन्ह दिखलाई देते हैं। ऐसी स्थिति में रोगी की जीवन रक्षा के लिये कुचला समर्थ वस्तु है।

हृदय पटल के जीर्ण रोगों में जब पेट में जल जमा होकर जलोदर हो जाता है, यकृत बढ़ जाता है, पेशाब कम और लाल रंग का होने लगता है, दस्त साफ नहीं होता, पाचन क्रिया बिगड़ जाती है, पेट फूलता है, जी भीतर ही भीतर से घबराता है, संक्षिप्त में जिस स्थिति को आयुर्वेद में हृदयोदर कहा जाता है, उसमें कुचले का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। हृदय के रोगों में अगर वे कफ के प्राधान्य से हों, तो उनमें कुचले को हींग, कपूर इत्यादि कफ नाशक द्रव्यों के साथ देना चाहिये। अगर उनमें जल शोथ का प्राधान्य हो तो कुचले को मूत्रल, रेचक और पसीना लाने वाली औषधियों के साथ देना चाहिये। पाण्डु रोग में अथवा और किसी कारण से धमनियों की शिथिलता की वजह से अनिद्रा रोग पैदा हो जाय तो उसमें कुचले को लोह और प्रवाल के साथ देना चाहिये।

श्वासेन्द्रिय पर कुचले का प्रभाव—फेफड़े के तीव्र रोगों में जब श्वास क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है, रोगी का जी घबराता है, कफ पड़ने में कठिनता होती है तब इस औषधि का प्रयोग करना चाहिये। श्वास नली की सूजन, फेफड़े की सूजन, दमा, इत्यादि रोगों में उत्तेजक कफ नाशक औषधियों के साथ कुचले को देना चाहिये। राजयक्ष्मा के रात्रि स्वेद में भी कुचला लाभदायक है।

फरमा कोपिया इण्डिया के मतानुसार कुचले के बीज उत्तेजक व स्नायु मण्डल को पुष्ट करने वाले होते हैं। अधिक मात्रा में यह एक प्रबल विष है। इसका उपयोग पक्षाघात और स्नायुशूल की पीड़ा में लाभ जनक है। यह वस्तु अतिसार, पुरानी पेचिश और हमेशा रहने वाली कब्जियत के लिये भी उत्तम है। गुदाभ्रंश रोग पर भी यह लाभ दायक है। इसका उपयोग पार्यायिक ज्वरों में, मधुमेह में, अपस्मार में और पाण्डुरोग में होता है। यह अनैच्छिक वीर्यस्राव में भी बहुत उपयोगी है। इसका कड़वा स्वाद और इसके विषैले गुण इसमें रहने वाले स्ट्रिच नाइन और ब्रूसाइन नामक तत्वों की वजह से हैं। स्ट्रिच नाइन का अनुपात इसमें १।४ से लगा कर १।२ प्रतिशत तक रहता है।

आधुनिक उपचारों में कुचला अग्निमांद्य, कब्जियत और अँतड़ियों की क्रिया की शिथिलता में विशेष रूप से काम में लिया जाता है। इन बीमारियों में यह स्ट्रिचनाइन उपक्षार की वजह से विशेष लाभ जनक मालूम होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह बहुत गरम और खुश्क है। यहां तक कि तीसरे दर्जे के आखिर तक गरम और खुश्क बतलाया जाता है। कम मात्रा में देने से यह सर्द मिजाज में जो खराबी पैदा हो जाती है उसको गरम मिजाज की तरफ बदल देता है और बदन को कूवत देता है। लकवा, गठिया, कमर का दर्द, लंगड़ी का दर्द, तथा स्नायु जाल से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी बीमारियों में यह बहुत लाभदायक है। यह मासिक धर्म और पेशाब को साफ करता है और पथरी को तोड़ कर बहा देता है। इस औषधि का सेवन इसकी दर्प नाशक औषधियों के साथ मिलाकर करने से किसी खतरे का डर नहीं रहता है।

इस का लेप करने से चेहरे का कालापन, झाई, तर खुजली और दाद में लाभ होता है।

जौहर कुचला—(Strychnine) यह कुचले में पाया जाने वाला सबसे प्रधान और प्रभाव शाली तत्व है। कुचले के शरीर पर जितने प्रभावशाली असर होते हैं वे प्रायः इसी की वजह से होते हैं। यह मेदे को ताकत देता है। खून में ऑक्सिजन की मिकदार को बढाता है। रक्तवाहिनी नाड़ियों के समूह को गतिशील करके खून के दबाव को बढाता है। श्वास की नलियों के केन्द्रों मे विशेष गति विधि पैदा करता है जिससे सास की क्रिया गहरी और तेज हो जाती है। डीजीटेलिस और कहवे के सत्व के साथ देने से यह हृदय रोग में लाभ पहुंचाता है। फालिज, लकवा, अर्द्धांग वगैरह रोगो में जौहर कुचले को १/२० ग्रेन की मात्रा में पिचकारी देने से बडा लाभ होता है।

बुढापे की हालत में जब मूत्र-पिंड की शक्ति कमजोर हो जाती है। पेशाब की हाजत बार २ होती है और पेशाब बूंद २ टपकता हो ऐसी हालत में कुचले का जोहर देने से बहुत लाभ होता है अधिक स्त्री सम्भोग से पैदा हुई नपु सकता में कभी २ इससे नुकसान भी हो जाता है।

मसाने के फालिज में १/३० ग्रेन जौहर कुचले का हर चार २ घण्टे पर इन्जेक्शन देने से उसी दिन पेशाब उतर जाता है।

कुचले का जहर और उसका प्रभाव—हम ऊपर लिख आये हैं कि कुचला या कुचले का जौहर अधिक मात्रा में बहुत प्रबल विष है। लगातार कई दिनों तक देने से लकवे के रोगी के शरीर में एक तरह की ऐठन पैदा हो जाती है और चींटियां रेगती हुई मालूम होती हैं। जब यह असर पैदा हो तो दो या तीन दिन तक दवा देना बन्द कर देना चाहिये।

इसको अधिक मात्रा में लेने से एक घण्टे के बाद इसके उपद्रव शुरु हो जाते हैं। तबियत बेचैन होने लगती है, पीठ, कन्धे और टागों में दर्द होने लगता है, गर्दन एंठने लगती है और सारे शरीर में इसका विषैला प्रभाव नजर आने लगता है, रोगी हाथ पाव पीटने लगता है, उसके हाथों की मुट्ठियां बन्द हो जाती हैं, सर पहिले आगे की तरफ और फिर पीछे की तरफ झुक जाता है और सारा शरीर बुरी तरह अकड़ जाता हैं, नाड़ी तेज चलती है शरीर की हरारत बढ जाती है, बदन के जोड़ ढीले पड़ जाते हैं, सास में रुकावट पैदा हो जाती है, आखे बाहर को उभर आती है और अन्त में रोगी मौत का मेहमान हो जाता है। जौहर कुचला की कम से कम १ ग्रेन की मात्रा भी प्राण घातक होती देखी गई है।

कुचले के विष की चिकित्सा में सबसे जरूरी बात यह होती है कि सबसे पहिले स्टमक ट्यूब के द्वारा अथवा वमन के द्वारा मेदे में से इसको निकाल देना चाहिये। उसके बाद २० से ४० ग्रेन की मात्रा में माजूफल का सत पानी में मिलाकर देना चाहिये। उसके बाद कोई वमन कारक दवा देकर माजूफल के सत को भी निकाल देना चाहिये। पोटेशियम ब्रोमाइड २ड्राम और क्लोरो हाय ड्राइड ३ ग्रेन को ४ औंस पानी में मिलाकर देना चाहिये।

कुचले के विष को नष्ट करने के लिये तमाखू के सत के बराबर दूसरी वस्तु नहीं है। अगर तमाखू का सत मौजूद न हो तो आधा औंस तमाखू को आधा औंस पानी में जोश देकर उसके

चार हिस्से करके उसमें से १ हिस्सा रोगी को पिलादें। अगर जरूरत हो तो थोड़े समय के बाद दूसरी खुराक भी पिलादें।

कपूर का जौहर भी कुचले के विष को नष्ट करने में कामियाब होते देखा गया है।

कुचले का व्यापारिक महत्व—

कर्नल चोपरा का कथन है कि कुचला चिकित्सा शास्त्र में उपयोग में लिये जाने वाले पदार्थों मे एक महत्व पूर्ण पदार्थ है। इसके पिसे हुए बीज और कभी कभी उनका काढा भी देशी चिकित्सकों के द्वारा अग्निमांद्य एवम् स्नायु मंडल की बीमारियों के काम में लिये जाते हैं। इसके अर्क, निस्सरण और उपक्षार पश्चिमी औषधि विज्ञान में भी बहुत काम में लिये जाते हैं। भारतवर्ष में यद्यपि इसका उपयोग इतनी अधिक मात्रा में होता है फिर भी इस वस्तु को उपयोग में लेने के लिये अधिक उत्साह नहीं लिया जारहा है। विदेशी लोग यहा की ऐसी चीजों की उपयोगिता को जाने हुए हैं और वे अपने स्थानीय एजटों की मार्फत इस वस्तु का उपयोग करते जारहे हैं। दक्षिण भारत में कोचीन इस वस्तु को बाहर भेजने का मुख्य बंदर गाह है। मद्रास, बाम्बे और कलकत्ता से भी इस की कुछ तादाद बाहर भेजी जाती है। ४५ हजार हंडर वेट से लगाकर ५० हजार हंडरवेट तक, जिसकी कीमत करीब ३ लाख रुपया है, बाहर जाती है। यह सब माल प्रायः ग्रेट ब्रिटेन को भेजा जाता है। वहां से इसके उपक्षार,अर्क और तत्व निकाल कर वापिस ये वस्तुएँ भारत में भेजी जाती हैं जब यह माल वापिस आता है तब इसकी कीमत सौ गुनी होती है। स्ट्रिचनाइन भारतवर्ष में भी काफी तादाद में पैदा किया जा सकता है और यह विश्वास किया जा सकता है कि यहा पर इस वस्तु से स्ट्रिचनाइन व अन्य अर्क तैयार करने वाले लोगों को काफी फायदा मिल सकता है। कुचले के बीज उड़ीसा में सवा रुपया प्रतिमन (१०५ पौंड) के भाव से बेचे जाते हैं। ये गोदाम पर साफ किये हुए और सुखाये हुवे दिये जाते हैं। स्ट्रिच-नाइन उपक्षार फुटकर तादाद में लिया जाये तो १ रुपया फी औंस मिलता है और अगर यह अधिक तादाद में लिया जायतो २॥ रुपये प्रति पौंड प्राप्त होता है। भारत के कुचले के बीजों में २.६ से लगाकर ६ प्रति शत तक कुल उपक्षार रहते हैं। इन मेंसे १.२५ से लगाकर १.५ प्रतिशत तक स्ट्रिचनाइन रहता है और बाकी का खास करके ब्रुसाइन रहता है।

इससे यह मतलब निकलता है कि एक हण्डरवेट बीजों में से करीब २० औंस के स्ट्रिचनाइन निकलेगा, जिसको इकट्ठा बेचने से ६० रुपये और फुटकर बेचने से ५० रुपये प्राप्त होंगे। इसको कार्य में परिणित करने के लिये कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। स्ट्रिचनाइन और ब्रुसाइन प्राप्त करने में जो अनुभव टेकनालाजिकल इन्स्टीट्यूट कानपुर में वाटसन और सेनने प्राप्त किये हैं, उनसे यह मालूम पड़ता है कि मामूली तादाद में यह कार्य करने से लाभ की मात्रा बहुत ही कम रहती है। कुचले के बीजों को चूने और पानी के साथ मिलाकर उनका चूर्ण करके गरम मिट्टी के तेल के साथ इनका अर्क खींचा जाता है। इससे परिणाम तो सन्तोष जनक हुआ किन्तु यह बात पाई गई कि अधिक तादाद

में इनको सुखाना ज्यादे खर्चे का विषय है। इसमें वाष्प और वनस्पति के अन्य प्रारंभिक खर्चे अधिक तादाद में हो जाते हैं। कलकत्ता के कुछ Pharmaceutical Chemist फर्मो ने स्ट्रिचनाइन प्राप्त करके मार्केट में सफलता पूर्वक पेश किया। किन्तु यह तादाद में अधिक न था। वर्तमान समय में कुचले के बीजों की कीमत अधिक होने से कलकत्ते में यह कार्य बन्द करना पड़ा। ८० पौंड के मन की कीमत कलकत्ते में ६) छे रुपया है और वास्तव में ये ४ रुपये मन से ४।।) रुपये मन तक के हैं। इस कीमत पर भारतीय व्यापारी कम्पनियां यूरोप की कम्पनियो के साथ मुकाबला नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त युरोपियन कम्पनियां इस काम को विशाल रूप में करती हैं। कलकत्ता के व्यापारियों के सामने सबसे बड़ी कठिनाई इसके भाव के सम्बन्ध में है। यह वस्तु उड़ीसा में १०५ पौंड के मन से १।) सवा रुपये के भाव से बेची जाती है। रेल्वे से भेजने की दर अधिक होने से कलकत्ते के बाजार में यह वस्तु छः रुपये की ८२ पौंड के भाव से बेची जाती है। यही वस्तु योरप में बहुत कम भाव में पहुँच जाती है, कारण कि जहाजों में इसका बहुत कम दर वसूल किया जाता है, अगर यह प्रश्न ध्यान से हल किया जाय और इस वस्तु को प्राप्त करने की फेक्टरिया वहीं स्थापित की जाय, जहां कि खेती कॉफी तादाद में होती है तो विश्वास है कि यह कार्य लाभ प्रद सिद्ध हो। अगर ऐसा किया जाय तो भारत अपने पूरता ही माल तैयार नही कर सकेगा बल्कि बाहर भी भेजने में समर्थ होगा। अभी जो कीमत है उस पर भी यह वस्तु आस्ट्रेलिया में यहां से बुलवाई जाती है। कुचले के बीज का व्यापार करना भारत और सिलोन को ही श्रेयस्कर हो सकता है, यद्यपि उपक्षार सभी प्रकार की कुचले की जातियों में मौजूद रहते हैं, फिर भी वे इतने अधिक तादाद में नहीं है जितने कि भारत में पैदा होने वाली जाति में प्राप्त हो सकते हैं, यदि यहां की जाति से कोईबाहरी जाति मुकाबिला कर सकती है तो वह Strychnos Ignatii (पिपिता या कयापपान कोटई) है। यह फीलिपाइन द्वीप समूह में पैदा होती है। इसके फल भी होते हैं इसकी फलियों में स्ट्रिचनाइन और ब्रुसाइन दोनों रहते हैं। इस वस्तु से इतने उपक्षार प्राप्त किये जा सकते हैं कि व्यापारिक क्षेत्र में लाभ सहित मुकाबला हो सकता है। स्ट्रिचनाइन की मांग इसके कृमिनाशक गुण और विषैले गुण के कारण बढ़ती जा रही है। यदि इसकी खेती में उन्नति की जाय तो देश को काफी फायदा हो सकता है।

डाक्टर चोपरा के मत के अनुसार इसमें स्ट्रिचनाइन व ब्रुसाइन दोनों रहते हैं। अनुसन्धान से पता लगता है कि आर्द्र स्थानों में इसका अधिक काल तक संग्रह करने में इस वस्तु में किसी भी प्रकार की खराबी पैदा नही होती है। स्ट्रिकनास ब्लेंडा (Strychnos Blanda) के बीजों के साथ में इसके बीज मिला दिये जाते हैं जिससे कि इसकी असलियत कुछ नष्ट हो जाती है। S Blanda के बीजों में स्ट्रिचनाइन नहीं रहता है। यह मिश्रण ही परिवर्तन का मुख्य कारण प्रतीत होता है।

उपयोग—

वात व्याधियां और मन्दाग्नि—खजाइनुल अदविया के लेखक लिखते हैं कि कुचले को भूनकर पीसलें। फिर १ कुचले का आठवा हिस्सा प्रतिदिन खाना शुरू करें, यह ४५ रोज तक खावें।

उसके बाद १ कुचले का पांचवा हिस्सा प्रतिदिन के हिमाब से ४५ दिन तक खावें। उसके बाद चौथा हिस्सा ४५ दिन तक फिर तीसरा हिस्सा ४५ दिन तक फिर आधा हिस्सा ४५ दिन तक और फिर पूरा कुचला ४५ दिन तक खावें। इस प्रकार इसका सेवन करने से सब तरह की बात व्याधियां और मन्दाग्नि मिटती है।

संग्रहणी—कुचले को तीन दिन तक पानी में तर रखकर छीलकर, उसका चोया खींचकर १ रत्ती की मात्रा में पान के साथ खिलाने से दस्त और संग्रहणी मिटती है।

अतिसार (दस्त)—मुरब्बे की हर्र पर कुचले के अर्क की बूंदे डालकर खाने से बहुत सख्त दस्त बन्द होते हैं।

सर्प विष—कुचले की जड़ को खिलाने से सर्प विष में लाभ होता है। कुचले को काली मिरच के साथ पीसकर खिलाने से भी साप का जहर उतरता है।

हैजा—कुचले के दरख्त की १ गीली और सीधी लकड़ी लेकर उसके दोनों किनारो पर बरतन बाधकर उसके बीच में आंच देना चाहिये। इस आच के देने से उन दोनों किनारों से बरतनों में एक प्रकार का रस टपकेगा, उस रस की कुछ बूंद खाने से हैजा मिटता है।

गठिया—पुरानी गठिया को मिटाने के लिये कुचले को उसके अर्क के साथ देना चाहिये। और कुचला, सोंठ और साम्हर सींग को मिलाकर उसका लेप करना चाहिये।

जखम के कीड़े—जिन जख्मों में कीड़े पड़ गये हों उन पर इसके पत्तो का लेप करने से सब कीडे मर जाते हैं।

लकवा—१५ कुचलों को १५ औस पानी में भिगोकर हर तीसरे दिन पानी बदल दें। ऐसे १५ दिन तक पानी में भिगोकर उनका छिलका दूर करके सुखालें और उनको जला डाले। उनकी जितनी राख हो उतने ही वजन की काली मिरच उस राख में मिलाकर काली मिरच के बराबर गोलियां बनालें। इन गोलियों को उचित मात्रा में खिलाने से लकवा, फालिज, गठिया, इत्यादि रोग दूर होते हैं।

खूनी बवासीर—कुचले की धूनी देने से खूनी बवासीर का खून और दर्द बन्द हो जाता है।

पागल कुत्ते का जहर—कुचले को आदमी के पेशाब में औटाकर काटने की जगह पर लेप करने से और कुचले को शराब में औटाकर छीलकर १ रत्ती की मात्रा में रोज खाने से कुत्ते का जहर उतर जाता है।

बद गांठ—कुचले को काली मिरच के साथ घिसकर लेप करने से बदगाठ बैठ जाती है।

नारू—कुचले को पानी में गाढा २ घिसकर उसकी एक बतासे के बराबर बड़ी बूंद नारू के मुँह पर डालें। उसके ऊपर १ चुटकी सुहागा और १ चुटकी सिंदूर डालकर अरण्डी का पत्ता रखकर पट्टी चढा दें। ऐसी एक या दो पट्टी से नारू साफ हो जाता है।

नपुंसकता—कुचले का सत (नक्स व्होमिका) डेमियाना (एक अंग्रेजी दवा) और फास

फौरस इन तीनों का मिश्रण देने से भयंकर नपुंसकता भी दूर होती है। आजकल इस मिश्रण का पचार बहुत हो गया है और अंगरेजी दवा बेचने वाले के यहां यह तैयार मिलता है।

बनावटें—

माजूम कुचला—(१) कुचले को गाय के ताजा दूध में एक रात दिन भिगोदें और दूसरे दिन पहला दूध फेंक कर फिर ताजा दूध डालदे। इसी तरह सात दिन रात में ७ बार दूध तबदील करते हैं। फिर ताजा दूध डेकची मे भर कर कुचले को एक पोटली में बाध कर उसमें एक लकड़ी के सहारे (*दोलायत्र*) लटका देते हैं, ताकि वह डेकची के पेंदे में न लग जाय। फिर यहा तक जोश देते रहे कि दूध जल जाय। फिर पोटली को निकाल कर कुचलो को पानी में धोकर छिलके चाकू से छील दें। बाद इसके रेती से बुरादा करके इसमें से ५ तोले लें। फिर सफेद और काली मिर्च, दालचीनी, जायफल, जावित्री, मस्तगी, अयबिलसान, सोंठ, अगर, लौंग, सैदकूफी, (नागर मोथा) आवला, बालछड़, दाना इलायची सफेद, कलौंजी, सन्दल सफेद, केशर, पीपर, सौंफ, हर एक ३ माशे की मिकदार में लेकर बारीक पीस कर कुल वजन की तिगुनी शहद मिलाकर माजूम बनाते हैं।

खुराख की मात्रा—२ माशे से ४॥ माशे तक लेना चाहिये।

(२) दूसरा तरीका माजून का यह है कि कुचले को इसी तरह साफ करके २। तोले लें और बारीक पीस डालें। गावजुवान के फूल १॥ तोले, दाना इलायची सफेद, नर कचूर, शिकाकुल, सन्दल सफेद, आवला, हलीता स्याह हरएक ६ माशे अगर ४॥ माशे, उस्तखद्दूस, कतीरा, खोपरा, चिलगोजे की मींगी हरएक १ तोला १॥ माशे लेकर सबको बारीक कर लें और फिर तिगुने शहद में माजून बनालें। खुराक—४ माशे से ६ माशे तक।

इस माजून के सेवन से लकवा, गठिया, सुन्नवात, सन्धिवात आदि तमाम वात व्याधियां, अजीर्ण, मन्दाग्नि, बवासीर इत्यादि तमाम पेट की व्याधिया और नपुंसकता में बहुत लाभ होता है। यह माजूम पाचक और कामोत्तेजक है।

अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक इसको सेवन करने से आक्षेप इत्यादि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। यह एक भयकर विष है, इसलिये इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये।

कुचले का मलंगा

नाम—

हिन्दी—कुचले का मलंगा। बंगाल—बन्दा, परगटचा। दक्षिण—कुचलेची सोनकन, काजरया चे बाडगुल। तामील—पुल्लुरुई, उचिचेडि। तेलगू—वदानिका, वजिनिका। नीलगिरी—प्रोलोरिवि। लेटिन—Viscum Monoicum (विस्कम मोनोइकम)

वर्णन—

यह एक प्रकार की झाड़ीनुमा बेल होती है। जो कुचले के झाड़ पर होती है। इसके पत्ते औषधि के रूप में काम में लिये जाते हैं। यह अवध, सिक्किम, खासिया पहाड़ी, छोटा नागपुर, बिहार और दक्षिणी भारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के गुण और धर्म भी साधारणतया कुचले के समान ही होते हैं। इसके सूखे पत्तों का चूर्ण कलकत्ता मेडिकल कालेज में स्ट्रिचनाइन और ब्रूसाइन के बदले सफलता पूर्वक काम में लिया गया। इसकी मात्रा १ से लेकर ३ ग्रेन तक है और यह दिन में तीन बार दिया जाता है।

विषम ज्वर और आमवात मे इस औषधि को हींग के साथ देने से लाभ होता है। इसके पत्तों को पीस कर आमवात में लेप करने के काम मे लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कुचले की प्रतिनिधि वस्तु की तरह काम मे ली जाती है। इसमे विषैले तत्व भी रहते है।

कुचिला लता

नाम—

संस्कृत—विदारलता, कुचलवल्लि, कटुकवल्लि। हिन्दी—कुचिला लता। बंगाली—कुचिला लता। गुजराती—गोवागारी लाकड़ू। मराठी—गोगारी लकड़ी। कोकण—काजरवेल। तेलगू—नाग मुसड़ी। लेटिन—Strychnos Colubriana (स्ट्रिकनोस कोलूब्रिएना)

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की बेल होती है जो विशेष कर हिन्दुस्थान के दक्षिणी हिस्से में होती है। इसका तना मोटा, लकड़ी सख्त, छाल राख के रंग की, पत्ते दालचीनी के पत्तों की तरह तीन २ सिरे वाले, फूल छोटे और फल अहमदाबादी बेर की तरह होते हैं। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। औषधि प्रयोग में इसकी लकड़ी और पत्ते आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कुचिला लता पौष्टिक, कृमि नाशक, चर्म रोग नाशक और ज्वरघ्न होती है। यह कुचले की तरह ही जहरीली होती है। कुचले में पाये जाने वाले दोनों प्रकार के विषैले द्रव्य इसमें भी पाये जाये हैं। इसको अधिक मात्रा में देने से शरीर में वमन इत्यादिक विषैले लक्षण पैदा हो जाते हैं। चातुर्थिक ज्वर और तिजारी ज्वर में यह एक उत्तम औषधि है। हड्डियों में बसे हुए ज्वर को दूर करने के लिए इसका काढा दिया जाता है। माता की बीमारी में दर्द और सूजन को कम करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

सन्धिवात में इसकी जड़ को काली मिरच के साथ तेल में औटा कर उस तेल का मालिश किया जाता है। विद्रधि नामक दुष्ट व्रण पर इसके पत्तों का काजू के साथ पीस कर लेप किया जाता है।

तैलगी वैद्य इसकी जड़ की लकड़ी को नाग और दूसरे विषैले सर्पों के विष में एक महौषधि समझते हैं। विष को दूर करने के लिये इसका बाह्य और अन्तः प्रयोग किया जाता है। मसूरिका के सूजन और कष्ट निवारण में भी यह मुफीद है।

इसका कुचला हुआ फल उग्र उन्माद के रोगी के सिर पर लगाने से फायदा होता हैं। इसकी जड़ को काली मिरच के साथ पीस कर देने से अतिसार मे लाभ पहुंचाता है। यह जड़ तेल में उबाल कर सन्धियों के कष्ट दूर करने के लिये मरहम के रूप में उपयोग में ली जाती है। जावा मे इसकी जड कुछ चर्म रोगों मे बाह्य प्रयोग में ली जाती है। इसकी जड ज्वर नाशक है।

केस महस्कर के मतानुसार इसकी जड सर्पदंश मे निरुपयोगी है।

कुंगकु

नाम—

हिन्दी—कुंगकु, सीखी, केसरी, पापर। नेपाल—नेवार, कसूरी। शिमला—मेरमहाल। लेटिन—Euonymus Tingens।

वर्णन—

यह हमेशा हरा रहने वाला छोटे कद का एक झाड़ है। इसका आकार ढोल सरीखा होता है। इसकी छाल भूरी रहती है। किसी २ वृक्ष की छाल हलके खाकी रंग की होती है। इसके पत्तों की लम्बाई १'८ से ३'३ सेण्टिमीटर तक होती है। इसके पत्ते ऊपर की बाजू गहरे हरे रंग के और चिकने रहते हैं। इसके फूल हलके, पीले रंग के होते हैं। इसकी फली करीब १'२ सेण्टिमीटर तक रहती है। इसके बीज गहरे बादामी रंग के और चमकीले रहते हैं। यह वनस्पति हिमालय में सतलज से नेपाल तक ६५०० से ११००० फीट की ऊंचाई तक होती है।

इस वनस्पति की करीब ४० जातियां होती हैं। ये सब जातियां एशिया के समशीतोष्ण भागों में तथा मलाया द्वीप समूह, यूरोप और अमेरिका में पाई जाती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति बहुत पुराने समय से औषधि के काम में ली जाती है। इसका विवेचन प्लाइनी (Plyni) ने अपने ग्रंथ में किया है। इस वनस्पति का विरेचक गुण यद्यपि बहुत जोरदार नहीं है, फिर भी यह कल्पना की जाती है कि यह यकृत को उत्तेजित करके पित्त को अधिक मात्रा में शरीर में पहुँचाती है। लीव्हर की खराबी में जिसमें कि कब्जियत और अपचन दोनों ही खास तौर से पाये जाते है, इस औषधि का उपयोग अन्य औषधियों के साथ में किया जाता है। इसके छिलके में Euonymol

(यूनोमल) Atropurol एट्रोपरोल Euonysterol, यूनसटेरोल और मोनो यूनिस टेरोल Mono Euonysterol नामक तत्व पाये जाते है। इन्हीं के कारण यह अपना असर दिखाती है।

कुटकी

नाम—

संस्कृत—तिक्ता, काडेरुहा, अरिष्टा, चक्रांगी, कृष्णभेदी, चित्रांगी, मत्स्य शकला, कटुकी, इत्यादि। हिन्दी—कुटकी, काली कुटकी, कडवी कुटक। बंगाल—कटूकी। गुजराती—काली कुटकी, कडु.। मराठी—बाल कडू, केदार कडू, काली कुटकी। तामील—कटुरोगणी। तेलगू—कटुरोहिणी, कटु करोणी। फारसी—खर्व के हिन्द। अरबी—खर्वगे हिन्द,खबिर कुलसुदा। पंजाब—काली कुटकी कऊ, कौर। उर्दू—कुरको स्याह। लेटिन—Picrorrhiza Kurrooa (पिक्रोरिझा कुरूआ)

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय के निकट काश्मीर से सिक्किम तक ९००० से १५००० फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है। इसके पत्ते अण्डे के समान आकार वाले जिनके नीचे का भाग बड़ा और बगल खण्डित होती है, होते हैं। इसके फूल नीले और गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ एक ऊंगली के बराबर लम्बी और मछली के आकार की होती है। बाजार में कहीं २ कुटकी के बदले कडू नामक एक तीव्र औषधि दे दी जाती है इसलिये इसको लेते वक्त सावधानी रखना चाहिये क्योंकि कुटकी की मात्रा अधिक होती है और कडू अधिक मात्रा में नुकसान पहुँचाती है। कुटकी की जड़ गहरे उदई रंग की और १ इंच से २ इंच तक लम्बी, एक तरफ से मोटी और एक तरफ से पतली मछली के आकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कुटकी कड़वी, रूखी, शीतल, हलकी, दीपन, हृदय को पुष्ट करने वाली, ज्वर नाशक, मृदु विरेचक, क्षुधा वर्धक और कृमि नाशक होती है। यह कफ, पित्त, मूत्र रोग, दमा, हिचकी, रक्तरोग, जलन, कुष्ट और पीलिया रोग में लाभदायक है।

यह एक मूल्यवान कटु पौष्टिक वस्तु है। आमाशय की पीड़ा, बद हजमी, हिचकी और आंतों की शिथिलता में तथा कब्जियत में यह लाभदायक है। यह रस क्रिया को शुद्ध करती है। इसके कटु पौष्टिक गुण की वजह से दीपन और पाचन बहुत अच्छा होता है। इसके आनुलोमिक धर्म की वजह से दस्त साफ़ होता है। हृदय रोगों के ऊपर इसकी जड़ों के काढ़े की क्रिया डिजीटेलिस के समान होती है।

पार्यायिक ज्वरों में इसकी क्रिया बहुत उत्तम और स्पष्ट होती है। दोष केवल इतना ही रहता है कि इसको बड़ी मात्रा में देना पड़ता है। जिससे कभी २ बहुत दस्त होते हैं। जिस ज्वर में कब्जियत की शिकायत हो उसमें यह अच्छा काम करती है।

पीलिया रोग के लिये भी यह एक उत्कृष्ट औषधि है। इसको ६ मासे की मात्रा में मिश्री के

साथ कुछ दिनों तक सेवन करने से पीलिया रोग नष्ट हो जाता है। अजीर्ण रोग से पैदा हुए दमे में भी इसको मिश्री के साथ देने से लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी काली जाति की जड़ कड़वी, विरेचक, कफ निवारक, ज्वर निवारक, और ऋतुश्राव नियामक होती है। यह रक्तादिक विकारो में बवासीर में और प्रदाह में उपयोगी रहती है। आधा शीशी, नाक की तकलीफ, छाती के दर्द, धवल रोग, और मसूड़ों तथा दांतों के लिये यह लाभदायक हैं।

इसकी सफेद जाति बहुत कड़वी, तीखे स्वाद वाली, छाती के रोगों को नष्ट करने वाली, मृदु विरेचक। दिमाग़ को ताकत देने वाली और वमन कारक होती है। यह पक्षाघात, ज्वर, यकृत की शिकायत मासिक धर्म की अनियमितता, मृगी, जोड़ों के दर्द और पित्त में उत्तम है। दाद, खुजली, और चूहे तथा कुत्ते के विष में भी यह लाभदायक है।

डाक्टर मुहीन शरीफ के मतानुसार यह एक उत्तम अग्नि प्रवर्द्धक वस्तु है। यह अग्नि माद्य के सभी विकारों में और पेट तथा आंतो की स्नायु पीडा में लाभ दायक है। ज्वर निवारक वस्तु के तौर पर इसकी खुराक २० से लगा कर ४० ग्रेन तक की है और अग्नि प्रवर्द्धक और पौष्टिक वस्तु के तौर पर १० से लेकर १५ ग्रेन तक की है। यह दिन में ३ या ४ बार दी जाती है।

सर्जन मेजर. डी० आर० थॉमसन एन० डी० सी, आय. ई० मद्रास और वाट्स की डिक्शनेरी का मत है कि यदि इस औषधि का तेज काढा दिन में ३/४ बार १ सप्ताह तक दिया जाय तो जलोदर की बीमारी में बहुत लाभ होता है। इससे बहुत कुछ पानी निकलना शुरू हो जाता है और विकार भी अधिक नहीं फैलने पाता।

डायमाक के मतानुसार यह उन्ही बीमारियों में काम में आती है जिनमे अग्निरस कम पैदा होता है और बद्ध कोष्टता रहती है। यह कृमि से पीड़ित बचो की तकलीफ में बहुत फायदा देती है। इसकी १० से २० ग्रेन की मात्रा पौष्टिक रहती है और ४० से ५० ग्रेन तक की मात्रा पार्यायिक ज्वरों को दूर करती है। यह अन्य सुगंधित पदार्थों के साथ में उत्तम रूप से काम में ली जा सकती है।

डॉ० लाल मोहन घोषाल ने इस औषधि के सम्बन्ध में सन् १६१२ में निम्न लिखित मत प्रगट किये।

(१) इस वस्तु में प्रिकोर्हिजन नामक कटु तत्व और ग्लूको साइड्स पाये जाते हैं।

(२) इस वस्तु के गुण इसके कटु तत्व के कारण ही है।

(६) इसमें कोई जहरीला पदार्थ नहीं है।

(४) यह पाक स्थली के अग्नि रस को बढाती है। इसलिये अग्नि प्रवर्द्धक और कटु पौष्टिक औषधि का काम करती है।

(५) यह हृदय के ठोकों की गति को कुछ कम करती है। इसलिये ज्वर की हालत में भी काम में ली जा सकती है।

(६) इसमें केथार्टिक एसिड रहता है। इससे यह मृदु विरेचक का काम करती है।

कर्नल चोपरा का कथन है कि कुटकी बहुत पुराने समय से जानी हुई वस्तु है। यह पुराने ग्रीक और अरबी वैद्यों के समय से ही कई औषधियों में शरीक की जाती है। यह फरमाकोपिया के प्रधान कटु पदार्थों मे से एक है और बहुत अधिक उपयोग मे ली जाती है। इसमे कड़वा गुण बहुत ही अधिक मात्रा रहता है। इसके सुगंधित गुण के कारण यह ग्राह्य है और टेनिन की उपस्थिति न होने से यह संकोचक भी नहीं है। इसलिये आधुनिक काल के अग्निप्रवर्द्धक और पौष्टिक प्रयोगों में यह सम्मिलित की जाती है। यूरोप में पैदा होने वाली वनस्पति जेशियानालुटिया भी इसी की समानता रखने वाली एक वनस्पति है।

कुटकी देशी औषधियों मे एक उत्तम कटु पौष्टिक पदार्थ माना जाता है। इसमे ज्वर निवारक और पित्त नाशक शक्ति है। इसका भी रासायनिक विश्लेषण किया गया है और उसके परिणाम इस प्रकार रहे हैं :—

पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट	...	१.४६ परसेंट
सल्फरिक ईथर एक्स्ट्रेक्ट	...	३.४५ परसेंट
एबसोल्यूट अलको हलिक एक्स्ट्रेक्ट	...	३२.४२ परसेंट
एक्विअस एक्स्ट्रेक्ट ...	...	८.४६ परसेंट

इन भिन्न २ एक्स्ट्रेक्टस के परीक्षण से यह पाया गया कि पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट में एक उपक्षार और मोमीय पदार्थ है। दूसरे सल्फेरिक ईथर एक्स्ट्रेक्ट में ग्लुकोसाइड, टेनिन और आर्गेनिक एसिड्स हैं। एलकोलिक एक्स्ट्रेक्ट में ग्लुको साइड और रेजिन्स हैं। चौथे एक्विअस एक्स्ट्रेक्ट में शकर और कटु तत्व हैं।

इस वनस्पति में २६.६ कटुतत्व पाये गये। इसमें ग्लुको साइड भी पाया गया।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि इसमें कॉफी कटु तत्व हैं। जेन्शन के गुण उसके कटु तत्वों पर ही निर्भर रहते हैं। पाइक्रोहिजा कुरुआ के भी सिलसिले में यदि और कुछ निश्चय कर दिये जाय तो इसका भी विस्तृत प्रयोग हो सकता है।

उपयोग—

विरेचन— साढ़े सात माशे कुटकी के चूर्ण में ७॥ माशे शक्कर मिलाकर गर्म जल के साथ देने से साधारण विरेचन होता है।

पित्त ज्वर— कुटकी और नीम की अन्तर छाल के क्वाथ को देने से पित्त ज्वर और तृषा मिटती है।

तिल्ली—चार से आठ माशे तक कुटकी के चूर्ण की फक्की लेने से बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है।

उदर शूल— काली मिरच के साथ इसके चूर्ण की फक्की देने से उदर शूल मिटता है।

मन्दाग्नि—सोंठ के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से सब प्रकार की मन्दाग्नि मिटती है।

स्नायु पीडा—कुटकी का तेल बनाकर आमाशय और अन्तड़ियों पर मालिश करने से स्नायु सम्बन्धी पीड़ा मिटती है।

जलोदर—तोले तोले भर कुटकी का क्वाथ दिन में तीन बार, तीन चार दिन तक देने से गहरी दस्तें लगकर जलोदर मिट जाता है। कभी २ यह प्रयोग सात दिन करना पड़ता है।

कामला—कुटकी का चूर्ण ६ माशे और शक्कर छः माशे मिलाकर गरम जल के साथ फक्की देने से कामला रोग में लाभ होता है।

हिचकी—इसके चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से हिचकी बन्द होती है।

हृदय रोग—कुटकी के काढ़े को पिलाने से अथवा इसका और मुलहटी का चूर्ण गरम जल के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त और हृदय रोग मिटते हैं।

श्वास—इसके क्वाथ में पीपल की छाल का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास और खांसी में फायदा होता हैं।

पित्त ज्वर—कुटकी की जड़, मुलहटी, दाख और नीम की छाल आधा २ तोला लेकर ३२ तोले पानी में औटाकर आठ तोला रहने पर छान कर पीने से पित्त ज्वर मिटता है।

खुरासानी कुटकी

नाम—

लेटिन—Helleborus Niger (हेलेबोरस नायगर)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, ऋतुश्राव नियामक और कृमि नाशक है। यह वेदना शून्यता लाने वाली है। यह डिजिटेलस की तरह हृदय को ताकत देने वाली है। यह कृमि नाशक है। यह मृगी और चर्म रोगों में काम में ली जाती है। इसमें हेलेबोरिन नामका पदार्थ पाया जाता है।

कुंभि

नाम—

हिन्दी—कुंभि, गुलखैर। सिन्ध—खबाजी। बांबे—खुबासी। दक्षिण—विलायतीकङ्गोई। सीमाप्रान्त—कजि; तिलचुनी। फारसी—खितमी कुचक,खूबाजी। उर्दू—खुबाजी। लेटिन—Malva Sylnestris (मालव सिल्वे स्ट्रीस)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी रुएदार वनस्पति होती है, इसका पौधा हाथ भर ऊंचा होता है। इसके पत्ते गोल और छिलका रुएंदार होता है। फूल पीले और सुन्दर तथा फल पीले और छोटे होते हैं। इसके फल खूबाजी के नाम से बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के तमाम हिस्से शीतल और चिकने होते हैं। यह औषधि ज्वर नाशक, और पलकों की सूजन के लिए मुफीद है। भीतरी प्रयोग में देने से यह कण्ठ रोग (thrott;) पुरानी ब्रोङ्का इटीज, पीलिया, और तिल्ली की वृद्धि पर लाभ करती है। यह पेशाब की अधिकता, सुजाक और पथरी पर भी लाभ दायक है।

अंतड़ियों के आक्षेप जनक मरोड़ पर इसकी वस्ति (एनिमा) देने से लाभ होता है। बाहरी सूजन पर इसका पुल्टिस चढाया जाता है।

कोमान के मतानुसार यह फेफड़े की म्यूकस झिल्ली की विकृति और मूत्राशय के रोगों में उपयोग में ली जाती है। यह जुकाम और ब्रोङ्काइटीज में भी दी गई मगर इसका परिणाम निराशा जनक रहा है।

कुत्रा

नाम —

हिन्दी—कुत्रा। लेटिन—लिम्नो-फिलाग्रेटिसिमा Limrophila gratissima।

उत्पत्ति स्थान—

पश्चिमी प्रायःद्वीप, सीलोन, मलाया द्वीप, फिलीपाइन्स, चीन, जापान और उत्तरी आस्ट्रेलिया।

आयुर्वेद—इस वनस्पति का रस ज्वर में शीतलता लाने वाली औषधि के तौर पर काम में लिया जाता है। यह माताओं के दूध की खराबी दूर करने के लिये उन्हे दिया जाता है। यह एक उत्तम कृमिघ्न वस्तु है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह दूध बढाने वाली है।

कुत्री घास

नाम—

संस्कृत—पण्यगन्धा, कगुनी पत्रा। हिन्दी—वन कागनी, वांदरा, गीदड़पुच्छा। गुजराती-कूंची, कुटेली, कुचीरी। मराठी--भाडली, कोल्र। कच्छी— झीपटी, वड़ी झीपटी। लेटिन-Setaria glansa (सेटेरिया ग्लेंसा)

वर्णन —

यह एक प्रकार का घास होता है। जो बरसात के दिनों सब दूर पैदा होता है। इसको सब पहिचानते हैं, क्योंकि इसके ऊपर एक बारीक रुएं वाली मञ्जरी लगती है जो आदमियों के कपड़ों में और ढोरों की पूँछों पर चिपक जाती है। इस घास को कच्ची हालत में पशु खाते हैं और सूखी हालत में यह कांच के सामान को पेक करने के काम में ली जाती है। इसकी तीन जातिया होती हैं। एक बड़ी

मञ्जरी वाली, दूसरी मझली मञ्जरी वाली और तीसरी छोटी मंजरीवाली। इनमें से मझली मंजरीवाली जाति औषधि उपयोग में उत्तम होती है। इसके पौधे २ से ३ फुट तक ऊंचे होते हैं।

गुण दोप और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस औषधि के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। पर गुजरात के आधुनिक आयुर्वेद जगत मे यह औषधि सर्प-विष के लिये एक उत्तम वस्तु सिद्ध हुई है। जिसका गुजरात के सामयिक पत्रों में समय २ पर काफी उल्लेख हुआ है।

"जंगलनी जड़ी बूटी" नामक ग्रंथ के लेखक लिखते हैं कि सन् १६१० के श्रावण मास की जन्माष्टमी के दिन एक स्त्री को जहरीले साप ने काटा। वह स्त्री एक मन्त्रशास्त्री के पास लाई गई पर कुछ फायदा न हुआ। तब वह हमारे पास लाई गई। हमने उसे कुत्री का रस पिलाया, दंश स्थान पर मसला और आखों में आजा, मगर उससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तब फिर से दूसरा रस निकाल कर उसमें शुद्ध किये हुए जमाल-गोटे का एक बीज थोड़ा सा घिस कर उसकी आख में आंजा, जिससे आश्चर्य जनक रूप से ५ मिनिट के अन्दर उसका जहर उतर गया। जमाल गोटे को आजने से उसके नेत्रों में भयंकर जलन हुई, मगर वह २, ४ बार घी आंजने से शान्त हो गई।

इसी प्रकार और भी दूसरे कई सांप के काटे हुए लोगों पर इस घास के रस का प्रयोग किया गया और उससे उन लोगों को लाभ हुआ, जहा पर अकेले इसके रस से लाभ न हुआ वहा जमाल गोटे को इसके रस में घिस कर आंख में आजने से निश्चित रूप से सफलता हुई।

इस रस को देने की क्रिया इस प्रकार है।

ताजी हरी कुत्री घास को लाकर उसको कूट कर उसका रस निकाल लेना चाहिये। जिसको सांप ने काटा हो उसकी आयु का विचार करके २ तोले से १० तोले तक रस पिला देना चाहिये और उसके काटने की जगह यह रस मसलना चाहिये तथा इस रस में एक जमाल गोटे का बीज घिस कर आख में आजना चाहिये। जब तक जहर पूरी तरह से दूर न हो जाय, तब तक ये क्रियाएँ बारम्बार चालू रखना चाहिये।

चूंकि यह घास बारहों महिने हरा नहीं मिलता है। इसलिये जिसको बारहों महिने रखने की आवश्यकता हो उसे चाहिये कि इस घास को पकने पर हरी हालत मे काट कर छाया में सुखा कर रखले। जब जरूरत हो तब उस घास को कूट कर उसका क्वाथ बना कर उपयोग में लेना चाहिये। अथवा मौसम के ऊपर इसका सेर भर रस निकाल कर उसमें पाव भर रेक्टीफाइड स्पिरिट मिला कर रख लेना चाहिये। जब जरूरत हो तब इसका उपयोग करना चाहिये।

इसके सिवाय यह औषधि मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) रोग में भी बड़ी लाभ दायक हैं। इसके बीजों का चूर्ण करके तीन माशे की मात्रा मे ४ तोले बकरी के मूत्र के साथ दिन में दो बार ७ दिन तक लेने से कुछ दिनों में यह रोग दूर हो जाता है।

प्रमेह में भी इस औषधि के बीजों के चूर्ण को ६ माशा की मात्रा में शक्कर के साथ दिन में २ बार लेने से लाभ होता है।

दाद के ऊपर भी इसका रस चुपड़ने से बड़ा लाभ होता है।

कुदल चुरिकि

नाम—

बंगाली—मुढियालता। नैपाल—गुर्फ। मराठी—दपोली, गइमरिल। मलाबार—कुदल चुरिकी। कनारीजी—नेलनेकरे। कोकण—भूयाननकरि। सिंगापुर—गेटकला। मलयलम्—मरिगुटी, क्रेनिका और केरी को बडु।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमी घाट की तर जमीन पर पैदा होती है। यह भारतीय प्रायद्वीप के किनारों पर कोकन से केरकामोरिन तक व सीलोन तक होती है। यह भारत के अन्य भागों में जहा पर कि वृष्टि अधिक होती है—खास कर नैपाल, सीकिम, खासिया पहाड़िया, चिरगाव, और पश्चिमी बंगाल में—पैदा होती है। सीकिम में इसके पत्ते चावल के साथ उबाल लिये जाते हैं और ये खाने के काम में लिये जाते हैं। इसके अन्य गुणों का कहीं उल्लेख नहीं है। ये दक्षिणी केनाड़ा में सभी प्रकार की आंतों की शिकायतों के लिये, अतिसार और रक्तातिसार के लिये वा आमातिसार के लिये काम में ली जाती है।

रासायनिक संगठन—

डे ने सन् १९३० में इस वनस्पति का विश्लेषण किया उन्होंने इसमें टेनिन, शक्कर और ग्लुकोसाइड पाये। इसमें उन्होंने कुछ स्थायी तेल और ईथर भी पाया। इसमें एक और विशेष प्रकार का तत्व पाया जाता है, जोकि सारी वनस्पति और जड़ में मौजूद रहता है। इसमे के उपक्षारों की मात्रा ०·१ तो पत्ते और डंडियों में रहती है और ०·३ जड़ों मे रहती है। हवा मे सुखाई हुई इसकी जड़ों के चूर्ण से पेट्रोलियम इथर १·१ प्र· से, इथर २·६ प्र· से, मद्य सार ८·९ प्र से और पानी ७·७ प्र से, रहता है। इसके मद्यसार तत्वों मे ही उपक्षारिक तत्व भी रहते हैं इसके मद्यक्षारों को शुद्ध करके हैड्रोक्लोराइड तैयार किया गया है। हैड्रोक्लोराइड जल मे घुल जाता है।

इसके उपक्षारों का विस्तृत विश्लेषण तो नहीं किया गया किंतु इतना मालूम हो चुका है कि यह अधिक विषैला नहीं है।

भण्डारकर ने सन् १९२९-३० में इसका परीक्षण किया है उन्होंने इस सारी वनस्पति के रस और काढ़े दोनों को अजमाया और वे सन्तोषजनक परिणाम पर पहुँचे। ये आमातिसार पर असर पहुँचाते हैं जो मरीज एमेटाइन की पिचकारी से भी दुरुस्त न हुए। उन्हे भी इससे फायदा पहुँचा। यह वनस्पति विषैली नहीं है और यह छोटे बच्चों को भी दी जा सकती है। इसका असर विशूचिका की बीमारी मे भी पाया गया। यह तीव्र और पुराने वृहदन्त्र प्रदाह में फायदा पहुँचाती है।

मद्रास प्रेसीडेंसी मे हैजे का प्रकोप होने पर इसे हैजे में अजमाया गया और इससे उत्तम लाभ हुआ। कुछ अन्य लोगों का मत है कि यह अतिसार में इतनी लाभदायक नहीं है जितनी कि बताई जाती है। दीक्षित का कहना है कि इसकी पेचिश की बीमारी मे जो भी उपयोगिता बताई जाती है वह सत्य नहीं मालूम पड़ती। उन्होंने एमेबिक आमातिसार मे करीब ८ बीमारों पर इसका प्रयोग किया किन्तु लाभ न हुआ। इसका लगातार चार रोज तक इस्तेमाल किया, किन्तु कृमि उसी तादाद मे पाये गये। यह अतिसार में भले ही कारगर हो क्योंकि इसमें टेनिन्स की मात्रा रहती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह स्निग्ध कारक है और पेचिश तथा विशूचिका में काम में ली जाती है।

कुन्द

नाम—

संस्कृत—अतिमुक्त, अट्टहास, अट्टपुष्पक, वंगवन्धु, दलकोष, कुन्द, मकरन्द, मनोदन, वसन्त, कुन्दो, कुन्दफल। बंगाली—कुंद, कुंदफूल,। कनाडी—कुंद। मराठी—मोगरा, कस्तुरी मोगरा। तामील—मगरंदम्, मेलिगई। तेलगु—कुंदम। लेटिन—gasminum Pubescens (जेसमिनम प्यूबिसेंस)

वर्णन—

यह एक झाड़ीदार पौधा होता है। इसका वृक्ष मोगरे के वृक्ष की तरह होता है। इसके फूल मोगरे के फूल की तरह होते हैं मगर खुशबू में उससे कम होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कुन्द शीतल, अत्यन्त मधुर, कसैला, सारक, हलका, पाचक, दीपन, हृदय के लिये पौष्टिक, चरपरा, और पित्त रोग, मस्तक रोग, विष, सूजन, आम, रुधिर विकार और वात को हरने वाला है।

इसके फूल मृदु विरेचक, पाचक और हृदय को बल देने वाले होते हैं। ये विष नाशक और वात नाशक हैं। पित्त में, प्रदाह में, और खून सम्बन्धी शिकायतों में ये उपयोगी हैं। इसके सूखे हुए पत्तों को पानी में भिगोकर उनका पुल्टिस बनाया जाता है। यह पुल्टिस धीरे २ दुरुस्त होने वाले घावों पर लाभ पहुंचाता है।

इसकी जड़ और इसके पत्तों का रस सर्प विष के लिये लाभ दायक माने जाते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार ये सर्प विष प्रति रोधक नहीं है।

कुप्पी

नाम—

संस्कृत—हरित मञ्जरी। हिन्दी—कुप्पी, खोकली, खोकला। बंगाली—खोकाली, खोंकली, कुप्पी, मुक्तकुरि, श्वेत बसन्त, मुरकट। बम्बई—खोकली। गुजराती—वेछिकाटो, दादरो। तामील-कुपेमेनि। तेलगू—कुप्पीचेट्ट। लेटिन—Acalypha Indiaca (एकेलिफा इण्डिका)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। यह १ से १॥ फुट तक ऊंची और रुएं रहित होती है। इसके पत्ते गोल और २.५ से ७.५ से० मी० तक लम्बे होते हैं। ये गोलाकार और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल बहुत छोटे और गुच्छों में लगते हैं। इसके बीज गोल, फिसलनेवाले और हलके बादामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी उष्ण भागों में होती है। औषधि में इसका पञ्चाग ही काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

डॉ० जॉर्ज बिडी (george Bidie) का कथन है कि यह वनस्पति जहां पैदा होती है। वहा इसके पत्ते वमन कराने के लिये एक मशहूर औषधि मानी जाती है। इसमे किसी प्रकार का खतरा नहीं है। इसका असर फौरन और निश्चित रूप से होता है। इपिकेकोना की तरह यह आंतों के ऊपर दूषित असर नहीं डालती। यह फुफ्फुस की क्रिया को मदद देती है और उनमें ग्रंथि रस को उत्तेजित करती है। इसके स्वरस की खुराक बच्चों के लिये एक चाय का चम्मच है।

सर्जन (E. W. Savings) इ० डब्ल्यू सेविंग्ज लिखते हैं कि यह औषधि यूनानी हकीमों द्वारा उन्माद रोग की प्राथमिक अवस्था मे बहुत काम में ली जाती है। इसका रस १ ड्राम और क्लोराइड ऑफ सोडियम ६ ग्रेन मिला कर सवेरे नाक के छेदों में टपकाने से और उसके बाद फव्वारे में स्नान करने से बहुत लाभ होता है। यह वस्तु एक तरह से दिमाग के लिये जुलाब का काम करती है। यह पिलाई भी जाती है और पिलाने से अपना कृमि नाशक और मृदु विरेचक गुण दिखलाती है।

इस वनस्पति का ताजा रस सुरक्षित वमन कारक और मृदु विरेचक है। इसके ताजा रस और काढ़े की खुराक १ से लगाकर ४ ड्राम तक और इसकी सूखी हुई वनस्पति की खुराक ५ से लेकर १५ रत्ती तक की है। इसके ताजा पत्तों को पीसकर मल द्वार में रखने से बच्चों की कब्जियत मिट जाती है। इसके पत्तों को मसल कर जहरीले कीड़ों के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

सर्जन मेजर जॉन लिकेस्टर के मतानुसार इसके पत्तों क ताजा रस चूने के साथ मिलाकर संधि वात की पीड़ाओं पर लगाते हैं।

डॉक्टर वामन गणेश देशाई के मतानुसार बच्चों की श्वास नलिका की सूजन में कुप्पी विशेष उपयोगी होती है। बच्चों के कफ रोगों में कुप्पी के पत्तों के रस के साथ नीम के पत्तों का रस मिलाकर देने से वमन और दस्त की राह से कफ निकल जाता है। प्रौढ़ मनुष्यों के दमे में भी इसको वामक मात्रा

में देने से लाभ होता है। श्वास नलिका की सूजन, दमा, फेफड़े की सूजन और राजयक्ष्मा के रोगों में भी यह वनस्पति लाभ दायक है। इसके सूखे पत्तों के क्वाथ में सेंधा नमक मिलाकर देने से श्वासोच्छ्वास का कष्ट मिटता है और सूजन भी हलका पड़ता है। इसके पत्तों को पीसकर व्रणों पर बांधने से व्रण अच्छे हो जाते है। खाज, खुजली, दाद, इत्यादि चर्म रोगों में इसका स्वरस लगाने से लाभ होता है। एरण्डी के तेल के साथ इसका स्वरस मिलाकर आमवात पर मसला जाता है। नीम के बीजों के तेल के साथ कुप्पी का स्वरस मिलाकर आमवात और सब प्रकार के चर्म रोगों पर लगाया जाता है।

डूरी के मतानुसार इसके सूखे पत्ते का चूर्ण पेट के कृमियों को नष्ट करने के लिये बच्चों को खिलाया जाता है। इसके पत्ते का काढ़ा लहसन के साथ में भी कृमिनाश के लिये दिया जाता है।

कान के दर्द में इसका स्वरस या इसके पत्तो का काढा बनाकर टपकाया जाता है। इसके पत्तों को पीसकर गर्मी से पैदा हुए घावों पर लेप किया जाता है। रक्त पित्त के कारण पैदा हुए सिरदर्द में भी यह वनस्पति लाभदायक है। इसके सूखे हुए पत्तों का चूर्ण कृमि युक्त घावों में और फोड़ों मे फायदा पहुँचाता है। इस वनस्पति के पत्ते साधारण नमक के साथ या चूने के साथ मिलाकर उपयोग करने से परोपजीवी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसको नींबू के रस के साथ में दाद पर भी लगाते हैं। श्वास रोग में इसके साढ़े सात तोले पचांग को २॥ पाव स्पिरिट में डालकर एक बन्द बरतन में ७ दिन तक भिगोना चाहिये और दिन में २,३ बार हिलाते रहना चाहिये। अन्त में मल छानकर उसको बोतल में भर लेना चाहिये। इसमें से २० से लेकर ६० तक बूंदे शहद के साथ दिन में २,४ बार देने से दमे के रोग में लाभ होता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार यह एक कफ निस्सारक औषधि है। इसमें मूत्रल गुण भी रहते हैं। यह श्वास नलियों के प्रदाह की एक उपयोगी औषधि है। दमा, निमोनिया और आमवात में भी यह लाभदायक है। यह विरेचक, वमन कारक और कृमिनाशक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वमन कारक है। वायु नलियो के प्रदाह और सर्प दंश पर उपयोगी है। इसमें Acalyphine एकेलिफिन नामक तत्व पाया जाता है।

कुम्भी

नाम—

संस्कृत—कुंभि, गिरिकर्णिका, माद्रेन्दाणि, कैदारि, मधुरेणु। हिन्दी—कुंभि, कुम्भ, वकंब। बंगाल—कुम्भि कुन्थ। बम्बई—कुंभ, महाकटम्ही। कुम्बिया। गुजराती—कुम्भि। मराठी—कुंभा, कुंभसाल। तामील—कुंवि, पेला। मैसूर—गोकलू। लेटिन—Gareya Arborea (केरिया आरबोरिया)

वर्णन—

यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की रहती है। इसके पत्ते

हाथ २ भर लम्बे रहते हैं। ये गोल और तीखी नोक वाले होते हैं। इसके फूल सफेद और दुर्गंध युक्त होते हैं। इसका फल गोल और हरा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष, सीलोन और मलाय प्रायः द्वीप में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल चरपरी, गरम, शुष्क, विष नाशक और कृमिनाशक होती है। यह मन्दाग्नि, उदरशूल, सूखी खांसी, मूत्ररोग, बवासीर, श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग और मृगी की बीमारी में फायदा पहुँचाती है। इसका फल कसैला, कामेच्छानाशक, और कफ नाशक होता है।

कुम्भी की छाल एक बहुत अच्छी स्तम्भक औषधि है। सूखी खासी में इसकी छाल की गोली बनाकर देने से और इसके काढ़े के कुल्ले करने से लाभ होता है। इसके फूल सिंध देश में बच्चा पैदा होने पर पौष्टिक वस्तु की बतौर दिये जाते हैं।

बम्बई में इसके फूल और इसकी ताजी छाल का रस खांसी और जुकाम में शान्तिदायक वस्तु की तौर पर दिया जाता है।

मानभूमि के सन्थाल लोग साप के काटे हुए स्थान पर इसकी ताजा छाल को पीसकर लेप करते हैं और इसकी छाल का रस पीने को देते हैं। चरक और सुश्रुत के मतानुसार भी इसकी छाल अन्य औषधियों के साथ में सर्प दंश में लाभदायक होती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है।

कबोड़िया में इसकी छाल विस्फोटक ज्वर में बहुत अधिक उपयोगी मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक, शान्ति दायक और सर्प विष में उपयोगी है।

कुनैन

नाम—

संस्कृत—किंकिण, किण, रक्तत्वक्। हिन्दी—सिंकोना, कुनैन। तैलगू—बारकी नमर, किंकण, किना। लेटिन—Cinchona Succiruba सिकोना सक्सी रुबा।

वर्णन—

कुनैन मलेरिया ज्वर को नष्ट करने वाली प्रसिद्ध वस्तु है जो सिंकोना नामक वृक्ष से प्राप्त होती है। इस वृक्ष की मूल उत्पत्ति दक्षिण अमेरिका में है जहा पर यह वनस्पति प्राकृतिक रुप से अपने आप पैदा होती है। भारतवर्ष में भी इसकी उपयोगिता को देखकर इसकी खेती कई वर्षों से प्रारंभ की गई है। महाबलेश्वर, नीलगिरी, कुर्ग के पहाड़ों, ट्रावनकोर के देव कोलम और पीरमेरी नामक पर्वतो पर, उटकमंड, मैसूर, तिनवेल्ली, कुन्नूर, पंजाब में कागड़ा, बंगाल में दार्जिलिंग, सिक्किम, भूटान इत्यादि स्थानो पर करीब २ बीस हजार एकड़ में इसकी खेती की जाती है। भारत वर्ष की हवा इस वृक्ष

को इतनी अच्छी मानी है कि अमेरिका के वृक्षों में से जितना सत्व निकलता है उससे करीब २ डेढ़ा सत्व यहा के वृक्षो में से निकलता है।

इतिहास—

आज से करीब चार सौ वर्ष पहले मानवीय दुनियां कुनैन और सिंकोना के गुणों से बिलकुल अपरिचित थी। सिकोना की छाल को पहले पहल लेडी सिकन ने सन् १६३६ में प्रचार किया और उन्हीं के नाम से यह वृक्ष सिकोना के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऐसा कहा जाता है कि जब लेडी सिकन अपने पति के साथ पेरु में रहती थी तब उनके ऊपर मलेरिया ज्वर का आक्रमण हो गया। उस समय उन्होंने लोकसा के कोरिजिडर के द्वारा भेजी गई सिंकोना की छाल का व्यवहार किया, जिससे उनका बुखार उतर गया और इस वृक्ष की ज्वर नाशक शक्ति पर उनको बहुत विश्वास हो गया। उन्होंने वहां से बहुतसी छाल स्पेन में अपने रिश्तेदारों के पास भेजी जिसके परिणाम स्वरूप स्पेन में भी इस औषधि के गुणों की धाक जम गई। स्पेन से इसके गुणों की तारीफ इटली में पहुँची और वहा से जे० सुइट्स के द्वारा इग्लैण्ड और फ्रास में इसका प्रचार हुआ। इग्लैण्ड में प्रचारित होने के बाद अग्रेज इस औषधि को हिन्दुस्थान में लाये।

सन् १८२० में रसायन शास्त्री पेलेटियर ने इसकी छाल के उपक्षार को अलग किया जो कुनैन कहलाया। कुनैन के निकल जाने से इसका खर्च इतना अधिक बढ़ा कि यह भय होने लगा कि कहीं अमेरिका का सिंकोना की छाल का भण्डार खतम न हो जाय। इसलिये दुनिया के भिन्न २ देशों में भी इसकी खेती का प्रयत्न किया गया। सन् १८६० में भारत सरकार ने भी अपने यहां पर इसकी खेती प्रारंभ की। यहा पर इस वृक्ष की खेती में बहुत अधिक सफलता मिली और यहां कुनैन को बनाने की दो बड़ी बड़ी फेक्टरिया भी कायम हुई। जिनमें से पहली दार्जिलिग जिले के मूंगपू नामक स्थान पर और दूसरी उटकमण्ड के पास नेडूवेट्टम नामक स्थान में। ये दोनों फेक्टरिया करीब ७०००० सत्तर-हजार पौंड कुनैन साल भर में तैयार करती हैं। जब कि यहा का खर्चा प्रतिवर्ष दो लाख पौंडका है।

भारत मे पैदा होने वाली सिंकोना की जातिया—

सिकोना की अनेक जातियां होती हैं। उनमें भारतवर्ष के अन्दर सिंकोना आफिसनेलिस (Cinchona officinalis) सिन्कोना केलीसया (Cinchona Calisaya) सिन्कोना सक्सीरुब्रा (Cinchona succirubre) सिन्कोना रोबुस्टा (Cinchoua Robusta) और सिन्कोना लेजहियाना (Cinchona Ledgerana) नामक जातिया लग गई हैं।

इन तमाम जातियों में से सिंकोना सक्सीरुब्रा यह एक ऐसी जाति है जो सबसे कम परिश्रम में लग जाती है और जिसमें सबसे अधिक उपक्षार पाया जाता है। यहा तक कि १० प्रतिशत तक उपक्षार इसमें निकलते हुए देखा गया है। इसमें पाये जाने वाला क्विनीडाइन और सिंकोनाइन तत्व अधिक भारी और गुणकारी होते हैं। यह वृक्ष दक्षिण हिन्दुस्थान में ४५०० से लेकर ६००० फीट

की ऊँचाई तक सतपुड़ा की पहाड़ियों पर तथा मूंगपू (शिकिम) नामक स्थानों पर बहुतायत से पैदा होता है।

सिंकोनाका रासायनिक विश्लेषण—

सिंकोना की छाल में कुनैन, सिंकोनाइन, सिंकोनिडाइन क्विनीडाइन और एमारफस नामक पाच प्रकार के उपक्षार पाये जाते हैं। उनका परिमाण नीचे लिखे हुए चार्ट से मालूम हो जायगा।

नाम—

C. Ledgeriana सिंकोना लेजरियाना

	कुनीन	सिकोनीडाइन	क्विनीडाइन	सिंकोनाइन	एमारफस	टोटल
जड़—छाल में	५·११	०·४४	०·५३	०·६८	०·७१	७·४७
डण्ठल—छाल में	४·१४	०·३६	०·४४	० २५	०·६०	५·७६
शाखाए—छाल में	१·६८	०·०६	०·१४	०·२०	० ५७	२ ६८

C. Habrid सिंकोना हेबरिड

जड़—छाल में	३ १०	०·६३	०·५०	१·२२	० ६६	६·१४
डण्ठल—छाल में	२·८७	०·३३	०·३४	०·४६	०·५४	४·५४

C. officinalis (सिकोना आफिस्नेलिस)

जड़—छाल में	१·७६	०·४६	०·५२	०·६६	०·६३	४·१६
डण्ठल—छाल में	२·५६	०·८६	०·१३	०·३७	०·४७	४·४२
शाखाएं—छाल में	१·४४	०·४६	०·०६	०·१६	१·१४	२·३५

C. Succirubra (सिंकोना सक्सिरुब्रा)

जड़ में—छाल में	१·४२	१·१२	०·३७	३·००	१·३०	७·२१
डण्ठल—छाल में	१·७४	१·४७	०·२०	१·६३	१·०५	६·०६
शाखाएं—छाल में	१·१६	०·८	०·२०	१·१०	०·७२	४·००

ऊपर के चार्ट से मालूम होता है कि सिनकोना में कुनैन के अतिरिक्त और भी चार प्रकार के उपक्षार पाये जाते हैं। इन उपक्षारों में भी ज्वर को नष्ट करने की बहुत प्रबल शक्ति रहती है। उपक्षार क्विनाइन से बहुत सस्ते पडते हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि औषधि विशारदों ने सिनकोना की छाल से निकाले गये तमाम उपक्षारों में कुनैन को ही अधिक महत्व दिया और शेष की उपेक्षा करदी। लेफ्टिनेन्ट कर्नल आर० नोल्स और सीनियर व्हाइट के मतानुसार, क्विनाइन और सिन्कोनाइन में क्वि-नाइन से भी अधिक ज्वर निवारक शक्ति रहती है। फ्लेचर ने मलाया स्टेट के क्युआला लंपर में इस बात का पता लगाया और कलकत्ता के स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन के प्रयोगों से भी यह मालूम हुआ

कि कुनैन के सिवाय सिकोना के दूसरे उपक्षारों में भी ज्वर निवारक शक्ति बहुत काफी तादाद में मौजूद है।

डाक्टरों ने भी सिनकोना के दूसरे उपक्षारों के ज्वर निवारक प्रभाव को स्वीकार कर लिया है। और ये उपक्षार कम कीमत होने से गरीब लोगों को भी सुलभ प्राप्त हो सकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव —

सिंकोना की छाल कटु पौष्टिक, स्तभक, ज्वर नाशक और मलेरिया ज्वर को रोकने वाली होती है। सिकोना का प्रधान उपक्षार कुनेन ज्वर नाशक, वेदना नाशक और गर्भाशय को उत्तेजना देने वाला होता है। सिकोना के पत्ते कटु पौष्टिक, ज्वर नाशक, और सौम्य प्रकृति के होते हैं। सिंकोना की छाल की मात्रा २० से ६० ग्रेन तक और कुनेन की मात्रा २ से १० ग्रेन तक होती है। यह दूध के साथ दी जाती है।

सिंकोना की छाल अनेक रोगों पर दी जाती है। यह छोटी मात्रा में देने से भूख बढाती है। स्नायु और ज्ञान तंतुओं की शक्ति को वृद्धि करती है। रक्त का पोषण करती है। शरीर में आई हुई कमजोरी को दूर करती है। अग्निमांद्य, सग्रहणी, आँव, अतिसार, इत्यादि रोगों में यह औषधि शखद्राव के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है। पाचन नली की शिथिलना में भी यह बड़ी लाभदायक है।

मलेरिया ज्वर के तमाम भेदों (एकातरा, तिजारी चौथिया वगैरह) पर यह एक उत्तम औषधि है। इसका ज्वर नाशक धर्म बहुत ही प्रभाव शाली है।

कुनेन भी छोटी मात्रा में आमाशय की पाचन क्रिया को सुधारती है। मगर बड़ी मात्रा में देने से या लगातार कई दिनों तक देने से यह पाचन क्रिया को बिगाड़ती है। खून में गर्मी पैदा करती है और दूसरे कई प्रकार के उपद्रव पैदा करती है।

ससार के अन्दर मलेरिया ज्वर को नष्ट करने के लिये अब तक जितनी वानस्पतिक और खनिज औषधियो का अविष्कार हुआ है। उनमें कुनेन श्रेष्ठ है। इस औषधि को देने के पूर्व रोगी को जुलाब देना आवश्यक है और इसके साथ यकृत की क्रिया बढाने वाली औषधिया मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। क्योंकि पित्त की क्रिया व्यवस्थित हुए बिना कुनेन शरीर में अच्छी तरह से जज्ब नहीं होती है और यकृत को उत्तेजना देने वाली औषधिया पित्त की क्रिया को व्यवस्थित कर देती हैं। इसका ज्वरनाशक धर्म प्रौढ मनुष्यों की अपेक्षा बच्चों पर और भी अधिक असर बताता है। सतत अविराम ज्वर, आत्रज्वर, तान्द्रिक सन्निपात और माता का ज्वर इन रोगों में कुनेन को देने की बहुत प्रथा पड़ गई है। अगर इससे ज्वर नहीं भी उतरता है तो भी शरीर की दाह कम हो जाती है। शरीर क्षीण नहीं होने पाता और ज्वर उतरने पर विशेष थकावट भी मालूम नहीं होती।

अगर किसी ज्वर में कुनेन के खाने से लाभ न होता हो तो उसमें इसका इंजेक्शन देने से फौरन लाभ होता है। बशर्ते कि वह ज्वर मलेरिया के कीटाणुओं से पैदा हुआ हो। मलेरिया के सिवाय टाइफाइड इत्यादि दूसरे बुखारों में यह असर कारक नहीं है।

नवीन आमवात रोग में कुनेन शरीर के ताप को कम करने के लिये और संधियों की पीड़ा दूर करने के लिये व्यवहार मे ली जाती है। मलेरिया ज्वर से पैदा हुए स्नायु जाल के दर्द, आधाशीशी, पेट की आतो की सूजन, इत्यादि रोगों मे भी कुनेन से लाभ होता है। आतों की सूजन में कुनेन को शिला-जीत के साथ, आधाशीशी में गाजे के साथ और मानसिक थकावट से होने वाले निद्रानाश में कुचले के साथ देना चाहिये।

प्रसूति के समय भी कुनेन अच्छा काम करती है। १० ग्रेन की मात्रा में इसको १ या २ बार देने से बच्चा जल्दी हो जाता है। सूतिक ज्वर में भी इसका उपयोग किया जाता है। इससे ज्वर के जोर की कमी होती है और गर्भाशय का संकोचन होता है।

गर्भवती स्त्रियों को कुनेन का सेवन बहुत समझ बूझ कर करना चाहिये क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

कुम्हटिया

नाम--

संस्कृत--श्वेत खदिर। मारवाड़ी—कुम्हटिया। हिन्दी--कुमटा कुंमट,। अरबी—ओरर, इशाब। कच्छी—खेरियो, अकोखेर। गुजराती—गौराड़, गोराड़ियो बबूल। सिंध—खोर। लेटिन—Acacia senegal (एकेशिया सेनेगाल)

वर्णन—

यह खेर की जाति का एक वृक्ष होता है। यह विशेष कर राजपूताना और कच्छ में बहुत पैदा होता है। मारवाड़ में इसके बीजों की शाग बनाई जाती है। कच्छ में इसको धोला खेर कहते हैं। इसके वृक्ष खेर के वृक्ष की तरह ही होते हैं पर खेर की लकड़ी का रंग लाल होता है और इसकी लकड़ी का रंग पीला होता है। इसके पत्ते खेर के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं। इसकी फलियों में तीन से लेकर छह तक बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

औषधि के रूप मे विशेषकर इसका गोंद काम में आता है। बबूल, खेर, धावड़ी, इत्यादि वृक्षों के गोंद से इसका गोंद विशेष उत्तम माना जाता है। अंग्रेजी में जिसको गम एकेशिया कहते हैं वह वास्तव में इसी वृक्ष का गोंद होता है। इसका गोंद स्निग्ध, शिथिलता लाने वाला और शान्तिदायक होता है। इसको सूजन पर और जले हुए स्थानों पर लगाया जाता है। स्तन के अग्र भाग की सूजन पर इसका लेप करने से जलन मिट जाती है। दूसरी जलन करने वाली औषधियों के साथ इसको मिला कर देने से उनकी तीक्ष्णता मिट जाती है। इसके गोंद को पीसकर सूंघने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

इसके अन्तः प्रयोग से पाक स्थली और आंतों की श्लेष्मिक झिल्लियों की जलन मिट जाती है। इस गोंद को मुँह मे रखने से खासी मे लाभ होता है। इसके शान्तिदायक गुण का प्रभाव मूत्राशय तक होता है। मधुमेह रोग में भी यह एक प्रकार के खाद्य पदार्थ की तरह दिया जाता है। क्योंकि यह पेट में जाकर शक्कर मे परिणित नही होता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गोंद शांतिदायक,स्निग्ध और आंतों के श्लेष्मिक प्रदाह को दूर करने वाला होता है।

कुमुदनी

नाम —

संस्कृत —उत्पलिनि, कुमुदिनी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, नीलोत्पलिनी। हिन्दी—कुमुदनी, कोई। बंगाल—हेलाफूल, नालिफल,श्वेतशुद्धि। मराठी-पाढरे कमल। गुजराती—पोयणा। लेटिन—Nymphaca Alba।

वर्णन—

यह कमल ही के समान पानी में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। यह भी लाल, नीले, सफेद फूलो के भेद से ३,४ प्रकार की होती है। कुमुदनी के फूल कमल के फूलों से छोटे होते हैं। कमल के फूल सूर्य के उदय होने पर खिलते हैं और सूर्यास्त पर बंद हो जाते हैं मगर कुमुदनी के फूल रात्रि को चन्द्रमा के उदय होने पर खिलते हैं और सूर्य का प्रकाश होते ही बन्द हो जाते हैं। इसके पत्ते फूल के ऊपर ही लगे होते हैं। उसमें जावित्रि के समान कोष होता है। उस कोष का फल बन जाता है। कच्ची अवस्था में उसके भीतर लाल दाने रहते हैं और पकने पर वे काले पड़ जाते हैं। इसके फल को घंघोल कहते हैं और इसकी जड़ को सालक कहते हैं। इसकी सफेद फूल वाली बेल काश्मीर, साइबेरिया और यूरोप में होती है। लाल फूल वाली बेल सारे हिन्दुस्थान के गरम प्रान्तों में होती हैं। नीले फूल वाली जाति भारतवर्ष के गरम प्रान्तों में तथा एशिया और आफ्रिका में होती है।

गुण दोष और प्रभाव —

कुमुद —इसको अरबी में नीलोफर, बम्बई में पाढरे कमल और काश्मीर में नीलोफर तथा निमपोश और लेटिन में निंफया एल्बा कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से यह स्वादिष्ट, पचने में कड़वी, कफ नाशक तथा रुधिर विकार, दाह, श्रम और पित्त नाश करने वाली है।

इसकी जड़ लुआबदार और तीक्ष्ण होती है। यह संकोचक, निद्रा दायक और पेचिश को दूर करने वाली होती है। इसके फूल काम शक्ति को ह्रास करने वाले होते हैं। इसके फलों और फूलों का शीत निर्यास अतिसार और ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है।

लाल कुमुद--इसको संस्कृत में रक्त कुमुद, बंगाल में रक्त कमल, अरबी में नुलुफर और हिन्दी में लाल कुमुद और लेटिन में N. Rubra कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से इसके फूल कुछ कड़वे,

मधुर, शीतल, रक्त विकार को नष्ट करने वाले, ज्वर निवारक, कामोद्दीपक और त्रिदोष को नाश करने वाले होते हैं। इसकी जड़ का पिसा हुआ चूर्ण मन्दाग्नि, अतिसार, खूनी अतिसार और बवासीर में फायदा पहुँचाता है। इसके फूलों का काढ़ा हृदय की धड़कन मे पिलाया जाता है।

नील कुमुद—इसको संस्कृत में नीलोत्पल, बंगाल में नील पद्म, गुजराती मे-नीलकमल, हिन्दी मे-नीलकमल, मराठी में-कृष्ण कमल और लेटिन में —N. Stellata कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से यह मीठा, सुगन्धित, शीतल, धातु परिवर्तक, पित्त नाशक, रुचि कारक, शरीर को मजबूत बनाने वाला और बालों को बढ़ाने वाला होता है।

गायना में इसकी जड़ और डण्डी का काढ़ा स्निग्ध और मूत्रल माना जाता है। इसे मूत्राशय की बीमारियां दूर करने में और मूत्रकृच्छ्र के रोग के इलाज मे काम में लेते हैं। इसके फूलों का काढ़ा निद्रादायक और कामेच्छा नाशक होता है। मेडागास्कर मे इसके पत्ते विसर्प रोग में लगाये जाते हैं।

इसकी एक जाति और होती है जिसको मद्रास में अलि और लेटिन में N. Pubescens एन-पुबेसिन्स कहते हैं। इसकी जड़ का चूर्ण बवासीर में शान्ति दायक औषधि की तौर पर दिया जाता है। इसे पेचिश और मन्दाग्नि पर भी देते हैं। इसके फूल संकोचक और हृदय को पुष्ट करने वाले होते हैं।

कुरंडवृक्ष

नाम—

संस्कृत—अग्निवती, अग्निपत्रि। हिन्दी—कुरंड वृक्ष, दादमारी, जल करवीर। बंगाली—आग्या। मारवाड़ी—आग्यो। पंजाब—ददेर बूँटी। गुजराती—जलआग्यो। मराठी—गुरेन आग्या, आगिनबूँटी। तामील—कल्लूरीवी; नीरमेलनेरुपु। तेलगू—अग्निवेदम पाकू। बम्बई—जंगली जल मेंहदी। लेटिन—Ammania Baccifera (एमेनिया बेकीफेरा)

वर्णन -

कुरंड वृक्ष या अगिया बूटी जल के पास उत्पन्न होती है। इसके पौधे १ फीट से लेकर २ फीट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते कनेर के पत्तों के समान एक से २। इंच तक लम्बे, कुछ गोल, पतले और आमने सामने लगते हैं। इसके ऊपर पत्रमूल में गुच्छेदार श्यामाभ गुलाबी रंग वाली होती है। इसमें छोटे २ काले बीज निकलते हैं। इसके पत्तों का स्वाद लाल मिरच के समान चरपरा होता है। इसके फूल नवम्बर और दिसम्बर मास में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव –

इसके पत्ते अत्यन्त दाह जनक होते हैं। इन पत्तों को पीसकर लगाने से आधे घण्टे में जलन होकर छाला पड़ जाता है। इस की जलन, चित्रक और तेलिनि मक्खी की जलन से अधिक होती है।

सन्निपात में इससे छाला डालकर पानी निकाल देने से पीड़ा मिट जाती है। ज्वर युक्त आमवात और बढ़ी हुई तिल्ली में भी इससे छाला डालकर पानी निकाल देने से लाभ होता है। बढ़ी हुई तिल्ली में इसका पचाग ४ माशा, नागर मोथा ४ माशा और सोंठ ४ माशा, इनका क्वाथ बनाकर देने से लाभ होता है।

ज्वर युक्त आमवात में अथवा सतत ज्वर में इसका समान भाग नागर मोथे के साथ क्वाथ बनाकर देने से सूजन भी उतरती है और ज्वर भी शान्त होता है। इसकी राख तेल में मिलाकर चर्म रोगों पर लगाने से सभी प्रकार के चर्म रोग मिटते हैं।

यह खयाल रखना चाहिये कि इसके पत्तों को चमड़े पर लगाने से अत्यन्त जलन होती है। कभी कभी छाला नहीं भी उठता है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। अगर पानी की जगह ईथर में इसका टिंचर बनाकर लगाया जायतो विशेष आसानी से छाला उठ जाता है।

बनावटें—

पारद भस्म—अगिया बूंटी के स्वरस में ४,५ दिन तक शुद्ध पारद को घोट कर टिकड़ी बनाकर, डमरुयन्त्र में रखकर उड़ाना चाहिये। जो पारा उड जाय उस को फिर बार बार इस वनस्पति के रसमे घोट घोट कर डमरु यन्त्र मे उडाते रहना चाहिये। इस प्रकार करते करते पारद नीचे रह जाता है। यह उड़ता नहीं है। कुछ भस्म भी होती जाती है। धीरे धीरे सब पारे की भस्म होजाती है। यह भस्म अत्यन्त उत्तम और गुरु साध्य है। इसको बहुत सावधानी से बनाना चाहिये। (भागीरथ स्वामी)

इसी प्रकार इस वनस्पति के स्वरस से हरताल, संखिया, और अभ्रक की भी बड़ी शक्तिप्रद भस्में तैयार होती हैं।

कुरंडिका छोटी

नाम—

संस्कृत—अग्निवृक्ष, चेत्रनाशिनी। गुजराती—अगियो, पत्थरसट्टी। मराठी—लघुकरंडिका।

वर्णन—

यह वनस्पति बरसात के कुछ बाद ज्वार, बाजरा आदि के खेतों में पैदा होती है। इसके पौधे ४।५ इंच से १ फुट तक लम्बे होते हैं इसके फूल सफेद पीले और बैगनी रंग के आते हैं। जिस वृक्ष की जड़ पर यह उगती है उस वृक्ष के रस को चूस लेती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

सफेद फूल वाली अगिया को उबाल कर उससे बवासीर को धोने से और उसको बवासीर पर बांधने से बवासीर नष्ट होजाता है।

कुरल

नाम—

पंजाबी—कुरल। हिन्दी—कुरल, कण्डला, कण्डालू। अलमोडा—कोंडला। गढ़वाल—कण्डलौ। तेलगू—गोंडूकुरा। लैटिन—Bauhania Retusa बौहिनिया रेटुसा।

वर्णन—

यह एक मझले आकार का झाड़ होता है। इसकी छाल गहरे बादामी रंग की रहती है। इसके पत्ते ७.५ से १५ सेण्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद और बीज गहरे बादामी रंग के और मुलायम होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह ऋतुश्राव नियामक और मूत्रल होती है, इसका गोंद छालों पर लगाने के काम में आता है।

कुरिला

नाम—

मद्रास—कुरियल। लेटिन—Connarus Monocorpus कोनारस मोनोकारपस।

वर्णन—

यह एक बहु शाखी झाड़ीनुमा पौधा होता है। जो कोकण और ट्रावणकोर में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फल का गूदा आंखों की बीमारियों में और इसकी जड़ का काढा गर्मी की बीमारियों में लाभदायक होता है।

कुल्थी

नाम—

संस्कृत—कलवृन्त, कुलित्थिका, कुलिथा, श्वेतबीज, ताम्रवृन्त। हिन्दी—कुलथी, गहाट। पंजाब—बाथुंगट, गगली, गुवार, कलट, कुलथ। गुजराती—कलथी। बम्बई—कुलथं, कुलते, हुलगा। मराठी—कुलीथ। सिन्ध—गगली। मैसूर—हुरली। तामील—केलू। तेलगू—उलवल्लि, उलवलु। अरबी—हबुल किलत, बंगाल—कुर्तीकलई,। उर्दू—कुलथी। लैटिन—Dolichos Biflorus। (डोली कोस बाइफ्लोरस)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी मशहूर वनस्पति है। इसका दाना मसूर के दाने की तरह मगर कुछ गोलाई लिये हुए होता है यह खरीफ की फसल में पैदा होती है। इसकी खेती सारे भारतवर्ष में होती है।

आयुर्वैदिक मतसे इसके बीज कड़वे, कसैले, गरम और शुष्क होते हैं। यह आंतो को सिकोडने वाली, ज्वर नाशक कृमि नाशक ओर मज्जा वर्द्धक होती है। श्वास, खांसी, मूत्र रोग, हिचकी, उदर रोग हृदय रोग, पीनस और दिमाग सम्बन्धी तकलीफों में यह मुफीद है। आन्त्र शूल, पथरी, नेत्ररोग, बवासीर कुष्ट और विष को नष्ट करने में यह उपयोगी है। यह मूत्राशय की पथरी को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह भूख बढाने वाली, मूत्र निस्सारक, आख के रोगों को दूर करने वालीत था मसाने और गुर्दे की पथरी को तोड़ने वाली होती है। इसके सेवन से हिचकी मिट जात है, दस्त साफ आता है। पेशाब और मासिक धर्म खुलकर आता है, तिल्ली की खराबी दूर होती है। बवासीर पर लेप करने से लाभ होता है इसके लगाने से गालो का रग साफ होकर कान्ति निखर जाती है। इसकी दाल कफ और पित्त को दूर करती है। भोजन के पश्चात् होने वाली कै को यह दूर करती है इस की जड़ का काढा पिलाने से श्वेत प्रदर बन्द हो जाता है। यह गुर्दे और मसाने की पथरी को तोडकर निकाल देती है। बच्चा होने के बाद गर्भाशय में बिगडे हुए खून का जो मैल और मवाद रह जाता है उसे यह दूर करती है। कल्थी को पकाकर खाने से शरीर का मोटा पन कम होता है। इसके काढ़े में सरपखे की जड़ और सेंधा निमक मिलाकर पिलाने से पेशाब में शक्कर का आना बन्द हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मूत्रल, पौष्टिक, मासिक धर्म को नियमित करनेवाली और श्वेत प्रदर में लाभदायक है।

कुलजुद

नाम—

हिन्दी—कुलजुद, गण्डल, गनेर, जेई। पंजाब—कसामु, उपवा, गोजंग। लेटिन—Avena Fetna (एव्हेना फेटना)

वर्णन—

यह एक छोटी वनस्पति होती है। इसके पत्ते मुलायम और फल लम्बा तथा रुएंदार होता है। यह पंजाब और उत्तरी हिमालय में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूरोप में इसके बीज ज्वर नाशक, तृषा उपशामक और मूत्रल गुणों की वजह से काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह एक विष है और विष की तौर पर ही काम में लिया जाता है।

कुलफा

नाम —

संस्कृत—लोनी, लुनिया, वृहल्लोनी, घोलिका। हिन्दी—कुल्फा, कुरफा, लोनिया, खुरफे का

शाक। गुजराती-- लोनी, मोटी लोनी। मराठी-- घोल, खुलफे की माजी। अरबी --खुरफा, बगल तुल खुमक। मध्यप्रान्त--घोल। कोकण--गोल, गोलची वागी। मद्रास--पसलई। सीमाप्रान्त-- देशी बुलफा। तामील-- करिकिरइ। तेलगू-- पदुकुए। लेटिन--Portulaca Oleracea (पोच्यूंलेका ओलीरेसिया)

वर्णन--

यह एक प्रकार की शाक होती है जो प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह जमीन पर फैलने वाली वर्ष जीवी वनस्पति है। यह सारे भारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेदिक मत--आयुर्वेदिक मत से कुल्फे की शाक शीतल, ग्राही, सूजन को दूर करने वाली, रक्त शोषक, स्नेहन और मूत्रल होती है। इसके पत्ते तुरे और खारे रहते हैं। ये अग्निवर्द्धक, विषनाशक और विरेचक होते हैं। सभी प्रकार के प्रदाह और व्रणों को ये नष्ट करते हैं। श्वास, प्रमेह, अतिसार, आमातिसार कोढ़ और बवासीर में ये लाभदायक हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह वनस्पति और इसके बीज मूत्रपिण्ड और बस्ति के सूजन में उपयोग में लिये जाते हैं। इसकी फांट से पेशाब की तादाद बढ़ती है। इसकी तरकारी बवासीर के अन्दर लाभदायक होती है। दांत, कफ, पेशाव इत्यादि किसी भी स्थान से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसका रस दिया जाता है। रक्तपित्त और ज्वर के अन्दर भी इसकी तरकारी पथ्य रूप से दी जाती है।

यूनानी मत--यूनानी मत से इसके पत्ते खट्टे होते हैं। ये पित्त सम्बन्धी शिकायतों और मंद ज्वर को दूर करते हैं। प्यास, सिरदर्द, वमन और मूत्राशय तथा तिल्ली की बीमारी में ये लाभदायक हैं। बवासीर, सिर की गज और बच्चों के मुख शोथ में भी ये मुफीद हैं। जो लोग शीत व्याधि से पीड़ित हों उन्हे इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

आज कल यह वनस्पति शान्तिदायक और धातु परिवर्तक के तौर पर काम में ली जाती है। यकृत की बीमारियों में और स्कर्वी रोग में यह एक उत्तम पथ्य के रूप में ली जाती है।

इसकी डाली का रस हर तरह के जलन पर मालिश करने के काम में लिया जाता है। बिच्छू के विष पर भी इसका रस लगाया जाता है।

गोल कास्ट में इसके पत्तो को पीस कर तेल के साथ मिलाकर घाव को पूरने के लिये फोडो पर बांधे जाते हैं। चर्म रोगों में इन्हें खाने के काम में भी लिया जाता है। ठंडे पानी में रख कर इन्हे बार बार खाने के काम में लिया जाय तो ये हृदय को ताकत देते हैं।

इस वनस्पति के पत्तों में लुआब और एसिड पोटेसियम आक्झेलेट पाया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह वनस्पति चर्म रोग, मूत्राशय के रोग और फेफड़े के रोगों में लाभदायक है।

कुलाहल

नाम—

संस्कृत-- कुलाहल, सुन्दिका विषमुस्टि, भूतकेशी। हिन्दी-- कोक्षिमा, कुलर, गदर तम्बाकू। बंगाली—कोक्षिमा। बम्बई—कोलहल। गुजराती— कलहर, कुलहल, कुलहर। मराठी—कोलहल, कुटकी। लेटिन— Celsia Coromandeliana (सेलेसिया कोरो मे डेलियाना)।

वर्णन —

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। यह कुटकी की ही एक उपजाति है। यह दक्षिण में नदियों के किनारे वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका पौधा अरण्य तम्बाखू की तरह होता है। इसमें बहुत तीव्र गन्ध होती है। इसके पत्ते लम्बे, रुएँदार और जमीन के बराबर ही लगते हैं। इसके फूल पीले और फली लम्बी और गोल होती है। इसके बीज कुछ लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति वात सम्बन्धी शिकायतों और रक्त की तकलीफों में मुफीद होती है। इसके पत्तों का उबाला हुआ रस तेज और पुरानी पेचिश में लाभदायक है। इसका प्रभाव संकोचक और शान्तिदायक है।

यूनानी मत से इस वनस्पति के पचांग का रस २॥ तोले की मात्रा में दिन में दो बार पीने से उपदंश या गरमी के फोडे फुन्सियों में लाभ होता है। इसके पत्तों का रस गाई के तेल में मिला कर लगाने से हाथ पैरों की जलन मिटती है। इसकी जड को चबाने से बुखार से पैदा हुई हद से ज्यादा प्यास भी बुझ जाती है। इसके पत्तों के रस मे शक्कर मिला कर देने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। बहु मूत्र और मधु मेह मे भी यह लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ के काढ़े में शहद मिला कर पिलाने से खांसी में लाभ होता है।

कुलिंजन

नाम —

संस्कृत—अरुण, धूमल, एलपर्णी, गन्धमूल, गन्धवारुणि, कुलंजन, रक्तपुष्प, इत्यादि। हिन्दी—कुलिजन, वड़ा कुल जन। बंगाल—कुलंजन, वड़ा कुलंजन। बम्बई—बड़ी पखीजार। मराठी—कोष्ट कुलिजन। तामील—अनन्द, अदुम्ब,कन्दन गुलियम। तेलगू—दुम परअक्रम्,कचोरम्। अरबी—खोलजन, खुलजने कविर। फारसी—खुदूंवटा, खिर्दारू। लेटिन—Alpinia Galanga (एलपीनिया गेलंगा)।

वर्णन—

कुलिंजन के छोटे पौधे विशेषकर चीन मे पैदा होते हैं। भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है।

इसके पत्ते लम्बे, तीखी नोक वाले और मुलायम होते हैं। ये ऊपर हरे और पीछे फीके रंग के होते हैं। इनकी किनारें सफेद होती हैं। इसके फूल हरे और सफेद होते हैं। इसका फल नारंगी रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कुलिंजन चरपरा, कड़वा, गरम, अग्निदीपक, रुचिकारक, कण्ठ को सुरीला करने वाला, हृदय को हितकारी और मुख दोष, कफ, खांसी, वात और कफ को नष्ट करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी गांठ तीव्र गन्ध वाली, जायकेदार रहती है। यह अग्नि-वर्धक, कामोद्दीपक, मूत्रल, कफ निस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली होती है। सिर दर्द, कटिवात, गठिया, गले के दर्द, सीने के रोग, मूत्ररोग और क्षय रोग की ग्रंथियों में यह लाभ पहुँचाती है।

हकीम लोग इसे मन्दाग्नि, वायु नलियों के प्रदाह और नपुंसकता को दूर करने के काम में लेते हैं। यह संक्रमण को दूर करने वाली होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि दक्षिणी भारत में कसरत से उपयोग में ली जाती है। मैसूर में यह एक घरेलू दवा है जो कि वृद्ध लोगों के द्वारा, जुकाम से पैदा हुई खांसी में काम में ली जाती है। इसकी गठानें और बीज पेट के आफरे को दूर करने का गुण रखती हैं। यूनानी औषधियों में यह नपुंसकता और स्नायु मण्डल की कमजोरी को दूर करने के काम में ली जाती हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

कीर्तिकर और वसु ने इसमें पाये जाने वाले तत्वों का विश्लेषण किया। उन्होंने इसमें केम्फे-राइड (Campheride), गेलेंगिन (Galangin) और एलपिनिन (Alpinin) नामक तीन विभिन्न तत्वों को पाया। इसके बाद में इस औषधि पर और बारीक विश्लेषण हुआ। इस वनस्पति की हरी गठानों से एक प्रकार का पीला तेल जिसकी सुगन्ध बहुत तीव्र होती है निकाला जाता है। इस तेल में ४८ सैंकड़ा मैथिल साइनामेट (Methyl cinnamate) २० से ३० परसेंट तक सीनेअल (Cineole) तथा केम्फर और डी० पिनेनी (D.Pinene) रहते हैं। इस तरह का चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन विजगापट्टम मेडिकल कॉलेज के फरमेकोलाजी डिपार्टमेंट के मिस्टर एन० टी० एस० यगोलू ने की है।

सके सत्व का इन्जेक्शन देने से रक्त का दबाव कम होकर मामूली स्थिति में आ जाता है। रक्त के दबाव के गिरने का कारण प्लीहे की रक्त शिराओं के फैलाव पर निर्भर है। हृदय की गति पर इसका असर अवसादक होता है। यह हृदय की क्रिया को दबाता है।

अगर इसका इन्जेक्शन थोड़ी मात्रा में दिया जाय तो श्वास क्रिया प्रणाली को उत्तेजित कर देता है और ज्यादे मात्रा में दिया जाय तो दूषित असर दिखाता है। इसका श्वास क्रिया प्रणाली पर भी महत्वकारी असर होता है। इसकी कम खुराक भी श्वास नालियों को फैलाती

है। पीलोका पाईन के प्रयोग से जो दमे सरीखी हालत नजर आती है, वह इसकी मामूली खुराक से हट जाती है।

इस वनस्पति का शरीर के अन्य अंगों पर कोई भी प्रभाव नहीं होता है। इसका प्रभाव मूत्र की ग्रंथियों पर होता है। ज्यो हीं रक्त दबाव में फर्क हुआ कि उन मूत्र ग्रंथियों के ऊपर का प्रभाव दूर हो जाता है।

शी ल तेल ही इस वनस्पति का मुख्य अंग है। इसे भी अन्य उड़नशील तेल की तरह पेट का आफरा दूर करने के काम में लेते हैं। उसी तरह से इसे भी काम में लेना चाहिये। श्लेष्मिक झिल्लियों पर भी इसका प्रभाव गिरता है। ज्योंहीं यह तेल फेफड़ो में प्रवेश करता है, अपना कफ निस्सारक गुण दिखाता है। इसे श्वास सम्बन्धी तकलीफो में काम में लेना न्याय सगत है। कुकुर खासी में बच्चों को इसे शहद में मिलाकर देते हैं। यह खांसी में फर्क करता है और टेम्परेचर भी कम कर देता है। यह बच्चो के श्वास कष्ट में फायदा पहुँचाता है। मुमकिन है कि यह दमे में फायदा पहुँचावे। इसमें सुगन्ध होती है। यह खांसी और पाचक नुस्खों में भी मिलाया जाता है। कहा जाता है कि यह अंतड़ियों के और पित्त जन्य उदर शूल में भी उपयोगी हो सकता है।

उपयोग—

ज्वर—ज्वर मिटाने वाली औषधियों के साथ में कुलिंजन का क्वाथ करके पिलाने से ज्वर छूटता है।

खांसी—इसको अदरख के रस और शहद के साथ चटाने मे कफ और खांसी मिटती है।

उदर शूल—अजवायन और काले नमक के साथ इसकी फक्की देने से उदरशूल मिटता है।

मंदाग्नि—सोंठ और सेंधा नमक के साथ इसको देने से मदाग्नि मिटती है।

मूत्र की रुकावट—इसको पानी के साथ पीस छान कर पिलाने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

छींक—इसको पोटली में बाध कर सूंघने से छींको का अधिक आना बन्द हो जाता है।

छोटी कुलिजन—

बहु मूत्र—छोटी कुलिजन को औटाकर पिलाने से बहुमूत्र या मूत्रातिसार मिटता है।

उदर शूल—सेकी हुई हींग के साथ इसकी फक्की देने से पेट की पीड़ा मिटती है।

स्नायु रोग—इसका तेल बना कर मर्दन करने से स्नायु जाल की शक्ति बढ़ती है।

तुतलापन—बच्चे को इसका चूर्ण चटाने से वह शीघ्र बोलने लगता है।

पीले चट्टे—तेल या पानी में इसको पीस कर लगाने से शरीर के पीले चट्टे मिट जाते हैं।

कुसरुंट

नाम—

हिन्दी—कुसरुंट, कुसरंट। बंबई—नुंदार, कनफुटी। दार्जिलिंग—बोलु। संथाल—सिम्बू

स्तक। अवध—कुसरौंत। तेलगू—नलवादु। लेटिन —Flemingia Strolcilifera (फ्लेमिंगिया स्ट्रालिखलि फेरा)

वर्णन—

यह एक सीधा बहुशाखी झाडीनुमा वृक्ष होता है जो सिंध, राजपूताना, बगाल और दक्षिणी हिन्दुस्तान में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

केपवेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ों को अपस्मार रोग में काम में लेते हैं। आसाम निवासी नींद लाने के लिये इसकी जड़ को थोड़ी तादाद मे देते हैं। ऐसा कहा जाता है कि चाहे जितना ही कष्ट क्यों न हो इस की जड़ के प्रयोग से नींद लग जाती है और किसी किस्म का खराब प्रभाव नहीं होता है।

कर्नल चोपरा के मत से इस की जड अपस्मार और उन्माद रोगों मे काम मे आती है।

कुश

नाम—

संस्कृत—दर्भ, कुशाः, कुशः, सूच्यग्र,यज्ञ भूषण। हिन्दी—कुश, डाव,दबोलि। बगाल-कुश। बंबई—दर्भ। मध्यप्रान्त—चिर, कुशा। गुजराती—दाभ। पंजाब—कुशा, दाम। तेलगू—अस्वलयन दर्भ, कुशदर्भा। लेटिन—(1) Desmostachya Bipinnata (डिसमोसटेच्या विपिनेटा) (2) Eragrostis cynoscuroides (इराग्रोस टिस सिनो सुरॉइड्स।

वर्णन—

कुश या डाभ हिन्दू धर्म शास्त्र की एक पवित्र वस्तु है। ग्रहण के समय में हर एक वस्तु की पवित्रता की रक्षा करने के लिये इसको रख दिया जाता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इस की जड़ मधुर और शीतल होती है। यह प्यास, श्वास, पीलिया और रक्त रोगों में फायदा देने वाली होती है। यह वनस्पति मधुर, कसैली, शीतल, कामोद्दीपक और मूत्रल होती है, यह स्निग्ध भी है। यह रक्तविकार, पित्त, दमा, तृषा, और मूत्रकृच्छ्र रोग में लाभदायक है। पीलिया, मूत्राशय के रोग, विस्फोटक और वमन में भी यह लाभदायक है। यह गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को शान्ति पहुँचाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कुश पेचिश और अत्यधिक रजः स्राव में उपयोगी है,यह मूत्रल है।

उपयोग—

आमातिसार—इसकी जड़ का क्वाथ करके पिलाने से आमातिसार मिटता है।

रक्तप्रदर—(१) उपरोक्त क्वाथ में रसोत गलाकर छान के पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

(२) इसकी और वेल की जड़ को चांवलों के पानी के साथ पीसकर पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

हिचकी—इसमें कुछ घी मिलाकर उसका धुआँ पिलाने से हिचकी मिटती है।

प्रदर—इसकी जड़ को चावलो के पानी के साथ पीसकर तीन दिन तक पिलाने से प्रदर मिटता है।

कूट

नाम—

संस्कृत—कुष्ठ, अगद, भासुर, हरिभद्रक, काश्मीरजा, इत्यादि। हिन्दी—कूट, कोट, कुर, पाचक। बंगाल—कुर, पाचक। बम्बई—उपलेट, वैराति, कूट, अपलेता। काश्मीर—पोस्तरवई। फारसी—कोशना, कूट, सीरिन, कुश्क। पंजाब—कोठ, कुथ। तामील—गोश्तम, कोष्टम्। तेलगू—चंगेला, कुष्टम। उर्दू—कूट। लेटिन—Saussurea Lappa (सुसारिया लेपा)

वर्णन—

यह एक बहु वर्ष जीवी मोटी और ऊँची वनस्पति होती है। इसका तना सीधा रहता है। इसके पत्ते भिल्लीदार और कटे हुए और त्रिकोणाकार रहते हैं। नीचे ही नीचे के पत्ते बड़े रहते हैं। इसके फूलों का बाहरी आकार गोल रहता है। इसका फल टेढ़ा और दबा हुआ रहता है। इसकी जड़ें खुशबूदार रहती हैं। जड़े कड़वी और तीखी रहती हैं।

बाजार के अन्दर मिलने वाली कूट की जड़ों में और भी कई दूसरी चीजों का मिश्रण कर दिया जाता है। खास करके रासना की जड़ें, मीठे कूट की जड़े, मिलादी जाती हैं। इसलिये इनको लेते वक्त सावधानी रखना चाहिये। यह वनस्पति काश्मीर में ८००० फीट से १२००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ गरम, कड़वी, तीक्ष्ण, चरबी बढ़ाने वाली, सुगन्धित, दीपन, पाचन, कामोद्दीपक, धातु परिवर्तक, वातनाशक, कफ नाशक, उत्तेजक, मासिक-धर्म नियामक और व्रण शोधक होती है। यह मुँह की कान्ति को सुधारती है। धवलरोग को मिटाती है। विसर्प रोग, दाद, खुजली, रक्त विकार, वायु नलियों के प्रदाह, वमन और वात रोग में लाभदायक है। इसे सिर दर्द, उन्माद और अपस्मार रोग में काम में लेते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसकी जड़ दो प्रकार की होती है। एक मीठी और दूसरी कड़वी। कूट कृमि नाशक, पेट के अफरे को दूर करने वाली, विष नाशक, ऋतुश्राव को नियमित करने वाली, कामोद्दीपक और पौष्टिक होती है। यह मस्तिष्क को उत्तेजना देती है। रक्त विकार, यकृत और मूत्राशय के रोगों में मुफीद है। सिरदर्द, बहिरापन, सन्धिवात, लकवा, दमा, खांसी, चक्षुरोग, और जीर्ण ज्वरों में भी यह लाभदायक है।

खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि इसको सिरके में पीसकर शहद में मिलाकर झाईं, दाद, खुजली, श्वेत कुष्ट और बाल तोड़ पर लगाने से आराम हो जाता है। अगर हाथों में छाजन (एक्झिमा) पड़ जाय तो आधा पाव कूट लेकर उसको जौ कुट करके सेर भर पानी में औटावें। जब उसका सब सत्व पानी में आ जाय, तब आग को कम करदें। जब पानी हाथ डालने के काबिल हो जाय तब उसमें रोगी के हाथ डालकर दवा को मलते रहे। इस प्रकार एक प्रहर तक करें। उसके बाद हाथ निकाल कर हाथों पर घी की मालिश करे। फिर हाथ पर कपड़ा लपेटकर सो जाएं। यह दवा बिलकुल अनुभूत है और एक बार से ज्यादा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती।। अगर तमाम बदन में छाजन हो तो बडे बर्तन में ज्यादा कूट लेकर जो शदें और उस बरतन में बैठकर उसी प्रकार से मालिश करे।

इसको शराब में पीसकर साँप और बिच्छू की काटी हुई जगह पर लेप करने से लाभ होता है।

कर्नल चोपरा का मत—

कर्नल चोपरा के मत से कूटकी जड़ ही केवल चिकित्सा के काम में ली जा सकती है। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है और इसमें एक किस्म की सुगन्ध रहती है। भारतीय चिकित्सा प्रणाली मे यह बहुत समय से उपयोग में ली जाती है। निघंटु शास्त्रों में इसे उत्तेजक और कामोद्दीपक माना है। यह खासी, ज्वर, अग्निमांद्य, चर्मरोग, दमा और दमे के कारण जो रोग पैदा हुए हों उनमें उपयोगी बताई गई है। यह वात विकारों का भी नाश करती है। यूनानी चिकित्सकों के मतानुसार यह मूत्रल और कृमिनाशक है। इसे चौथिया ज्वर, कोढ, कुक्कुर खासी, और सन्धिवात में उपयोग मे लेते हैं। इसको सुखाकर और पीसकर कुछ अन्य औषधियों के साथ में एक प्रकार का मलहम बनाते हैं, जोकि फोड़ों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। हैजे की बीमारी में भी इसे अन्य औषधियों के साथ काम में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पति का रासायनिक विश्लेषण स्कीमेल एण्ड कम्पनी ने सन् १८९२ में किया था। उन्होंने इसमें १ प्रति सैंकड़ा इसेंशियल ऑइल पाया। इस तेल में मस्त सुगन्ध रहती है। इसकी जड़ से एक प्रकार की सुगन्ध तैयार की जाती है जो व्हायोलेट फ्लावर की सुगन्ध से मिलती जुलती है। इसकी कीमत बहुत अधिक रहती है। इसके पश्चात् सन् १९२९ में घोष और उनके साथियों ने इसकी जड़ का फिरसे विश्लेषण किया और एक प्रकार का उपक्षार पाना गया। इसके अतिरिक्त इसमें लिखित तत्व और पाये गये।

(१) इसेंशियल ऑइल (उड़नशील तेल) १·५ प्रति सैकड़ा

(२) सोसेराइन (Saussarine) नामक उपक्षार ·०५ प्रतिशत

(३) रेजिन्स (एक प्रकार का राल) ६·० प्रतिशत।

(४) कटुतत्व।

(५) (Tannins) टेनिन्स, थोड़ी तादाद में पाये गये। टेनिन, माजूफल, बबूल की छाल व अन्य वनस्पतियों से पाये जाना वाला अम्ल विशेष है जो चमड़े के काम में, औषधियो में व स्याही बनाने के काम में लिया जाता है।

(६) (Innulin) इन्यूलिन १८° प्रति सैकड़ा पाया गया।

इस औषधि के इन्जेक्शन मधुमेह के रोगियों को दिये जाते है। सन् १६२१ में डॉक्टर वेटिंग ने इसका आविष्कार किया था।

(७) फिक्स्ड ऑइल।

(८) पोटेशियम नाइट्रेट और शकर इत्यादि।

एस० लेपा के पत्तों का भी विश्लेषण किया गया। इनमें इसेंशियल ऑइल तो नहीं रहता है, किन्तु ०.०२५ प्रति सैकड़ा उपक्षार रहते हैं जैसे कि इसकी जड़ में पाये जाते हैं।

इसमें पाया जाने वाला इमेशिअल ऑइल एक बहुत तेज कृमिनाशक वस्तु है। यह खास करके स्ट्रेप्टोकोकस (Streptoccocus) और स्टेफ्लोकोकस (Staphylococcus) नामक कृमियों को नाश करने में बहुत तीव्र है। यह तेल स्वाद में बहुत तीक्ष्ण और कड़वा रहता है। साधारण मात्रा में लिये जाने पर यह पेट में गर्मी लाता है। इसमें पेट का अफरा उतारने की विचित्र शक्ति है। खरगोश की आतों पर इसका परीक्षण किया गया। इसमें आतों के कीटाणु मारने की अद्भुत शक्ति है। यह पेट की नलियों को शान्ति देता है। इस इसेशियल ऑइल के इन्ट्राव्हेनस इन्जेक्शन भी दिये जाते हैं, जिससे यह शरीर के आन्त्रिक यन्त्रों मे पहुँचकर रक्तवाहिनी का विस्तृतिकरण करता है। इसी तेल को अन्य औषधियों के साथ मिला कर उसके इंजेक्शन दिये गये। इन से रक्त के दबाव (Blood Pressure) में कुछ अधिकता पाई गई। खरगोश के हृदय को अलग निकाल कर उस पर भी इसका परीक्षण किया गया उससे मालूम हुआ कि यह हृदय की गति को तेज करता है। इसके इंट्राव्हेनस इंजेक्शन्स देने से फेफडे पर कफ निस्सारक प्रभाव होता है और वायु नलियों का प्रसरण हो जाता है। स्नायुमण्डल के ऊपर इसका प्रभाव दूसरे व्होलेटाइलस ऑइल के समान ही होता है। केन्द्रीय स्नायुमण्डल पर इसका प्रभाव अधिक जोरदार होता है। यदि इसका सत्व अधिक तादाद में दिया जाय तो शरीर में भारीपन मालूम होता है और सिरदर्द तथा तन्द्रा शुरू हो जाती है। इसका कारण इसेंशिअल ऑइल को अधिक तादाद में दिये जाने के अतिरिक्त और कुछ नजर नही आता। यदि इसकी जड़ को पीस कर उसका धूम्रपान किया जाय तो केंद्रीय स्नायुमण्डल मे ढीला पन आ जाता है। इसके इसी प्रभाव के कारण यह अफीम के बदले काम में ली जाती है।

इसमें पाया जाने वाला दूसरा तत्व सोसेराइन नामक उपक्षार है। सन् १६२६ में चोपरा और डे० ने सोसेराइन टारट्रेट के जो कुछ असर फेफड़ों और श्वास प्रणाणियो पर होते हैं, उनका अध्ययन किया। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि इसका प्रभाव सूक्ष्म वायु नलियों पर एड्रेनेलाइन के समान ही होता

है। अन्तर केवल इतना ही है कि एड्रेनेलाइन का प्रभाव ज्यादा जोरदार और शीघ्र होता है। इसका प्रभाव इतना जोरदार नही है और इसमें कुछ समय भी लगता है किन्तु इसका जितना भी प्रभाव होता है, वह स्थाई होता है। इसके उपक्षार मज्जा के ऊपर भी अपना असर दिखाते हैं। यह आतों की क्रिया को ढीली कर देता है। रक्त के दबाव को बढाता है। मज्जा तन्तुओं पर इसका प्रभाव विशेष रूप में देखा जाता है। ऑरिकल्स (हृदय का ग्राहक कोष्ट) की अपेक्षा व्हेन्ट्रिकल्स (हृदय के नीचे का हिस्सा) पर इसका प्रभाव विशेष होता है। सेसुराइन के उपयोग से हृदय की गति नियमित और हृदय के ठोके ज्यादा जोरदार हो जाते हैं। यह हृदय को मजबूत करता है और फेल होने वाले हार्ट को भी शक्ति देता है।

कूट और दमे का रोग—

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके आक्षेप निवारक, श्वास प्रणालि को फैलाने वाले और कफ निस्सारक गुणों के कारण इसकी परीक्षा वायुनलियों से सम्बध रखने वाले दमे के रोग(Bronchial Asthma) पर की गई। इसकी जड़ से निकाला हुआ सत्व, जिसमें कि इसेंशिअल आइल और उपक्षार मौजूद थे और जो अलकोहल के साथ तैय्यार किया गया था, आधे से लेकर २ ड्राम तक की मात्रा में रोगियों को दिया गया। इसके परीक्षण से यह पता लगा कि इस के प्रभाव से वायुनलियों मे ढीलापन आ जाता है। यह कफ निस्सारक शक्ति को उत्तेजित करता है। कफ के निकल जाने से श्वास क्रिया प्रणाली में मदद देने वाली झिल्लियां साफ हो जाती हैं और श्वास का मार्ग बिलकुल साफ हो जाता है। दमे के दौरे की पीडा हलकी मालूम पड़ती है। यह वायुनलियों को फैला देता है। इसलिये श्वास लेने में किसी तरह की तकलीफ मालूम नहीं पड़ती। एड्रेनेलाइन, इफेड्राइन के भी इसी किस्म के प्रभाव होते हैं। लेकिन उनके उपयोग से ब्लड प्रेशर अधिक बढ़ जाता है और हृदय की क्रिया में अनियमितता आ जाती है। इसके उपयोग से इस किस्म के विकार नहीं दीखते।

इस औषधि के अवसन्नता लाने वाले गुण मस्तिष्क पर अपना प्रभाव दिखाते हैं। इस प्रभाव की वजह से दमे के दौरे के वक्त के आक्षेपों में या तनाव में असर हो जाता है। इसकी मस्त सुगन्ध की वजह से और इस वनस्पति के स्वाद से जैसा लाभ है वैसी हानि भी है। कुछ बीमार लोग इसको ले नहीं सकते। अगर उन्हें जबरदस्ती दी जाय तो कै कर डालते हैं।

इस औषधि को लेने की मात्रा आधे से दो ड्राम तक है। यह स्वतंत्र रीति से अकेली भी ली जाती है और नीचे की औषधियों के साथ मिला कर भी दी जाती है:— पोटास आयोडाइड अथवा पोटास ब्रोमाइड १० ग्रेन, टिंचर बेलेडोना ५ बूंद, बोरेक्स २ ,ग्रेन कूट का लिक्विड एक्स्ट्रेक्ट आधे से दो ड्राम तक, स्पिरिट क्लोरोफार्म १० बूंद, इन सब चीजों को १ औन्स पानी में मिलाकर एक बार में पी जाना चाहिये।

जब बीमार को दमे का दौरा हो रहा हो तब तात्कालिक आराम के लिये उसे मिश्रण न देकर केवल कूट का एक्स्ट्रेक्ट ही देना चाहिये। परन्तु दमे का दौरा बैठ जाने के पश्चात् स्थायी इलाज के लिये इस मिश्रण को देना चाहिये और इस बात की जांच करते रहना चाहिये कि किन कारणों से रोगी पर दमे का आक्रमण होता हैं। बहुत से रोगी ऐसे भी होते हैं। जिनको कोई खास चीज के खाने से किसी खास स्थान पर जाने से अथवा चलने फिरने से एक दम दमे का हमला हो जाता है। इसलिये उसका बारीकी से अध्ययन करते रहना चाहिये। १५,२० दिन तक दवा देकर थोड़े समय तक दवा बन्द करके यह देखना चाहिये कि अब दमे का दौरा होता है या नहीं। क्योंकि कई रोगी तो ऐसे होते हैं कि जिनको क्षणिक और साधारण कारणों से दमा हो जाता है ऐसे रोगियों का दमा जल्दी ही मिट जाता है और भविष्य में रोग को उत्पन्न करने वाले मूल्य कारणों की ओर से सावधानी रक्खी जाय तो फिर यह रोग नहीं होने पाता। जब दवा चलती हो तब दिन में ३ या ४ बार इस दवा को लेना चाहिये और सोते वक्त भी इसकी एक खुराक पास लेकर सोना चाहिये। रात में जब दमे के दौरे का भय लगने लगे तब उस खुराक को पी लेना चाहिये जिससे दमें का दौरा बैठ जायगा और फौरन नींद आ जायगी। एड्रिनेलिन के इंजेक्शन से अथवा धतूरे के धूम्रपान से निद्रा भंग का जो कष्ट होता है। वह इस दवा से नहीं होता।

कर्नल चौपरा ने दमे के रोग से पीड़ित ६० रोगियों पर इस औषधि का प्रयोग किया। जिन रोगियों के हृदय अथवा फेफड़ों की खराबी से दमे का रोग था उनको इस औषधि से विशेष फायदा हुआ। एक रोगी जिसको आंतों में जमी हुई विषैली सामग्री की वजह से दमे का रोग था उसको इस औषधि से स्थायी लाभ नहीं हुआ।

एक यूरोपीयन ऑफिसर को ऐसी भयंकर दमें की तकलीफ थी कि वह लम्बे पैर करके सो नहीं सकता था। इस कारण वह तीन महिने से आराम कुर्सी पर ही पड़ा हुआ था। इस रोगी को कूट का एक्स्ट्रेक्ट नियमित रूप से देने पर तथा जिन चीजों के खाने से उसका दमा उभड़ता था, वे बन्द कर देने पर उसका रोग मिट गया और फिर तीन वर्ष समय व्यतीत होने पर भी उस पर हमला नहीं हुआ।

जिन रोगियों के दमे के कारण बहुत प्रबल हों, खास करके, जिन के शरीर में तीव्र विषैली सामग्री जमा हो गई हो, जिनके नाक में घाव हों, छाती में गाठें बंध गई हों, पाचन यंत्र विकृत हो गया हो; अथवा इसी प्रकार के और कारणों से जिनको दमा हो और जिनको एट्रोपिन, एफिड्रिन, ड्रीनीट्रीन, इत्यादि के इन्जेक्शनों से, धतूरे के धूम्रपान से तथा दूसरे चालू मिश्रणों से इच्छित लाभ न होता हो ऐसे रोगियों को भी कूट के एक्स्ट्रेक्ट से क्षणिक लाभ अवश्य मिल सकता है।

मतलब यह कि कूट मे ब्रोंकियल एस्थेमा अर्थात् कफ युक्त दमे के हमले को तुरन्त दबा देने का चमत्कारिक गुण है। यह श्वास नलिकाओं को फैला देती है और श्वास नली की श्लेष्म कला के सूजन को भी कम करती है। इसके उपयोग से जमा हुआ कफ, खुला होकर बाहर निकल जाता है और

श्वास मार्ग बिलकुल साफ हो जाता है। जिससे दमे के नवीन हमले की आशंका कम हो जाती है। और स्थायी लाभ दृष्टि गोचर होने लगता है। फिर भी दमे को उत्पन्न करने वाले मूल कारणों की जाच हमेशा करते रहना चाहिये। जब तक उन कारणों को खोजकर दूर नहीं कर दिया जायगा तब तक केवल औषधि के सहारे स्थायी लाभ की आशा करना व्यर्थ है।

भारतवर्ष की देशी औषधियों में इसकी जड़ कामोद्दीपक और पौष्टिक मानी गई है। यह संभव है कि यह कामोद्दीपक हों कारण कि इसके मूत्राशय पर पड़ने वाले प्रभाव किसी रूप से अपने कामोद्दीपक प्रभाव भी दिखा देते हों। पुराने संस्कृत ग्रन्थों में मलेरिया के इलाज में इस औषधि का उल्लेख किया है। इसकी परीक्षा मलेरिया के कई भेदों पर की गई लेकिन कुछ भी लाभ नहीं हुआ। यूनानी चिकित्सक इसे सन्धिवात में, कुक्कुर खांसी में, और कृमि नाश में उपयोग में लेने की राय देते हैं। कुक्कुर खासी में यह फायदा पहुँचा सकती है किन्तु इसमें कृमि नाश करने की शक्ति नहीं है। इस विषय में इसकी परीक्षा भी की गई किन्तु किसी भी प्रकार का लाभ नहीं दीखा। शाल और अन्य ऊनी कपड़ों में इनको रखने से उन्हें कीड़े नुकसान नहीं पहुँचा सकते इसका कारण इसे शिअल ऑइल है।

इस वनस्पति की तारीफ कोढ़ को नाश करने के लिये भी की गई है। किन्तु डाक्टर म्यूर (Muir) ने जो कि लेप्राछी रिसर्च के जिम्मेदार थे, इसकी जड़ का चूर्ण और इसे शिअल ऑइल दोनों ही को कई मरीजों पर अजमाये लेकिन किसी भी प्रकार का लाभ नहीं हुआ।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कूट चर्म रोगों की एक प्रधान औषधि है। इसके लेप से रुधिराभिसरण और विनिमय क्रिया सुधरती है। इसको खाने और लगाने से कुष्ट, विसर्प, दाद, खाज, इत्यादि में यह लाभ पहुँचाती है। इसके चूर्ण को दातों की पेढियों पर लगानें से दातों का दुखना बन्द होता है। व्रणों के ऊपर इसका लेप करने से व्रण जल्दी भर जाते हैं। आमवात में एरण्डी के तेल के साथ इसका चूर्ण पिलाने से और उसका लेप करने से लाभ होता है।

यह उत्तेजक और कफ नाशक है। कफ रोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में इसको देने से, यह कफ को बाहर फेंक देती है जिससे खांसी और दमे में लाभ होता है। जननेंद्रिय और मूत्रेंद्रिय पर भी इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। जिससे यह मनुष्य की कामशक्ति को बढाने में सहायक होती है। प्रसूति काल के समय भी इसको देने से लाभ होता है। यह मासिक धर्म को शुद्ध और व्यवस्थित करती है। इसलिये मासिक धर्म की रुकावट और कष्ट प्रद मासिक धर्म में इसका उपयोग किया जाता है।

उपयोग—

श्वास—इसके चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से श्वास में बड़ा लाभ होता है।

हिचकी—कूट और राल का धुँआ पीने से हिचकी बन्द होती है।

मस्तक पीड़ा—कूट और एरण्ड की जड़ को कांजी के साथ पीसकर लेप करने से वादी से पैदा हुई मस्तक पीड़ा मिटती है।

गठिया—इसके बनाये हुए तेल का मर्दन करने से गठिया की पीड़ा में लाभ होता है।

बनावटें—

श्वास हर कषाय—कुल्थी, सोंठ, भोरीगंणी (कटेरी छोटी) की जड़, अडूसे के पत्ते, इन चारों चीजों को एक २ तोला लेकर कूटकर, ६४ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब ४ तोला पानी शेष रह जाय तब उसमें १५ रत्ती कूटका चूर्ण डालकर पीने से श्वास, खांसी और हिचकी को आराम होता है।

कूट की फांट—कूट का चूर्ण ३ ड्राम, इलायची दाने का चूर्ण १ ड्राम, इन दोनों को ४ औंस खौलते हुए पानी में डालकर बर्तन का मुँह बन्द करके आधे घण्टे तक पड़ा रखना चाहिये। इस फांट को प्रति आधे घण्टे में १ औंस की मात्रा में पीना चाहिये। यह फांट चर्मरोग नाशक, दीपन, पाचन और वेदना नाशक होता है। यह हृदयोत्तेजक और चेतना कारक है। जननेंद्रिय पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है।

कूट का चूर्ण—कूट के पीसे हुए चूर्ण को मक्खन के साथ मिलाकर शरीर पर मालिश करने से और ५ से लेकर १५ रत्ती तक की मात्रा में सेवन करने से शरीर की रक्तक्रिया सुधरती है और धातु-परिवर्तन होता है। जिसके परिमाण स्वरूप दाद, खुजली, कुष्ट इत्यादि सब तरह के चर्म रोगों में अच्छा लाभ होता है। (जंगलनी जड़ी बूटी)

——

कूड़ा (कूटज)

इस औषधि का वर्णन इस ग्रंथ के पहिले भाग में पृष्ठ २२७ से २३३ तक इन्द्र जौ के प्रकरण में विस्तृत रूप से दिया गया है।

केल (क्यूएल)

हिन्दी—किल, केल कुएल। पहाड़ी—क्यूएल। काश्मीर—कैरू, वेयर, कैल। ईरान—क्यूइल। अरबी—क्यूरर। तामील-किलतार। सीमाप्रान्त—चिल, चिला, चिलू; चेर, केल, कचिला। पंजाब-अयडल, बीयर, चिर, कचिर, कैर, केल, केरि पालसम, समशिंग, येरि, येरो। लेटिन-Pinus Excelsa (पिनस एक्सेलसा)

वर्णन—

यह एक चीड़ की जाति का ऊँचा वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम खाकी रंग होती है। पुराने झाड़ों की छाल खुरदरी हो जाती है। इसके पत्तों के पाच २ के गुच्छे लगते हैं। यह वृक्ष हिमालय प्रान्त मे गढवाल, कुमाऊं और सिक्किम में ६००० से १२५०० फीट की ऊंचाई तक होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि कफ, कंडू और चर्म रोगों को नाश करने वाली होती है। इसका तेल क्यूएल तेल के नाम से प्रसिद्ध है।

श्वास नलिका के पुराने सूजन की वजह से पैदा हुए कफ रोगों में क्युएल तेल बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे कफ की दुर्गंधि नष्ट होती है। कफ उत्पन्न होने की क्रिया कम होती है। कफ जल्दी गिरता है और श्वास नलिका में उत्तेजना पैदा होती है। इसका कफ नाशक धर्म उच्च कोटि का है।

यह जीर्ण और सूखे हुए चर्म रोगो में खाने को भी दिया जाता है और इसका लेप भी किया जाता है। दाद, सूखी खुजली वगैरह चर्म रोगों में इससे लाभ होता है।

केला

नाम—

संस्कृत—भानुफल, कदली, राजेष्टा, रम्भा, सुफल, वनलक्ष्मी। हिन्दी—केला। बंगाली—केलि। बम्बई—केला। दक्षिण—केल। गुजराती—केला। तामिल—वालें, अरंबई। तेलगू—अनति, कदली। लेटिन—Musa Sapientum (मूसा सेपिएंटम)

वर्णन—

केले का वृक्ष सब दूर प्रसिद्ध है। इसलिये इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं। इसकी कई जातियां होती हैं, जिनमें हरी छाल वाली जाति, लाल छाल वाली जाति, पीली छाल वाली जाति त्रिकोनी जाति, चम्पाचीनी इत्यादि जातिया विशेष प्रसिद्ध हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ तीखी, कृमिनाशक, पौष्टिक और क्षुधा वर्धक होती है। कफ, पित्त, कान का दर्द, मासिक धर्म की अनियमितता, रक्तविकार, मधुमेह, अग्निमांद्य और कुष्ठ की बीमारी में यह बड़ा लाभदायक है। मूत्रमेह रोग में भी यह बहुत मुफीद है। इसके पिंड का रस शीतल और आंतो के लिये संकोचक होता है। यह पेचिश में तथा श्वास, पथरी, बहुमूत्र, कर्णरोग, रक्त विकार और गर्भाशय के रोगों पर भी लाभदायक है। इसके फूल मीठे, कसैले और शीतल होते हैं। ये कृमि नाशक और आतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। वात, पित्त, क्षय और बच्चों की खांसी में यह लाभ दायक है। इसका कच्चा फल कसैला, शीतल, पौष्टिक और संकोचक होता है। यह वात व कफ पैदा करता है। इसका पका फल मीठा, ठण्डा, पौष्टिक, कामोद्दीपक और क्षुधावर्धक है। यह कोढ, प्यास, बच्चों की खासी, क्षय, जलन एवं मूत्राशय की तकलीफों में लाभदायक है। यह शारिरिक सौंदर्य को बढाने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और तर है। किसी किसी के मत से समशीतोष्ण है। यह चिकना, देरी से हजम होने वाला, बदन को प्रफुल्लित करने वाला और छाती में मुलामियत पैदा करने वाला है। यह गरम मिजाज वालों के लिये कामोद्दीपक है। गुर्दे की निर्बलता को दूर करता है। इसको ज्यादा खाने से मेदे में सुस्ती आती है। यह मसाने की जलन को दूर करता है। पेशाब ज्यादा लाता है। सर्पविष में लाभदायक है। जिस वक्त किसी व्यक्ति को सांप काटे उसे उसी

समय केले के दरख्त से ताजा रस निकाल कर दो प्याले भर कर पिलादे। खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि यह इलाज तजुर्बे से ६५ फी सदी कामयाब साबित हुआ है। यद्यपि यह रस बदज़ायका होता है मगर बहुत अजमाइश किया हुआ एक उम्दा इलाज है।

केले की कच्ची फली खिलाने से खून की उल्टी और पेशाब की अधिकता मिटती है। केले की फलियों को सुखाकर पीस कर उसमें शक्कर मिला कर खाने से और ऊपर दूध की लस्सी पीने से सुजाक दूर होता है। संखिया का जहर उतारने के लिये इसकी जड़ का रस पिलाना मुफीद है। इसके पेड़ का रस सुंघाने से नाक से बहने वाला खून बन्द हो जाता है। इसकी जड़ को आदमी के पेशाब में पीस कर कुछ गरम करके कपड़े पर लगा कर बद गाठ पर बांधने से बदगांठ बैठ जाती है।

इसकी जड़ और डण्डी रक्त की खराबी और शीतादि रोगों को दूर करती है। हैजे के रोग में प्यास बुझाने के लिये इसका रस काम में लिया जाता है। इसकी तारीफ जहरीले जन्तुओं के काटने और डंक मारने पर अधिक है। इसके छिलटे और पत्तों का रस अफीम के विष को दूर करता है। इसकी नाजुक जड़ों का रस फेफड़े और योनिमार्ग से होने वाले रक्तश्राव को बन्द करता है। इसे घी और शक्कर के साथ मिलाकर सुजाक की बीमारी में देते हैं।

क्षय रोग और केले का रस—

दक्षिण अमेरिका के ब्राझील देश के डाक्टर जे० मेंटेलबो ने क्षय रोग में केले के रस का अनुभव करके उन अनुभवों को प्रकाशित किया है। उक्त डॉ० साहेब लिखते हैं कि मैं एक क्षय के रोगी को देखने के लिये गया। इस रोगी को क्षय बहुतढ़ब गया था, बारम्बार खांसी आती थी, रक्त मिश्रित कफ बहुत मात्रा में निकलता था, रात में पसीना होता था। तीव्र ज्वर रहता था, शरीर सूख गया था, पतले दस्त होते थे, भजोन पर अरुचि हो गई थी और सबसे बड़ी विशेष बात यह थी कि यह रोग उसे अपने माता पिताओं से वारसे के रूप में मिला था। मैंने उसको केले के रस का उपयोग बताया। प्रति दिन केले का पिंड मँगाकर ताजा रस निकलवा कर हर दो दो घटे पर एक औंस रस एक औंस दूध में मिलाकर पीने को दिया जाता था। इस प्रकार रस पिलाना चालू रखने से तीन दिन में रोगी चलने फिरने लगा। खाँसी और कफ कम होगया, भूख खुल गई और २ मास तक यह प्रयोग बराबर चालू रखने से उस रोगी को सम्पूर्ण आराम होगया। केले का रस प्रति दिन ताजा निकाल कर पिलाना चाहिये। क्योंकि यह २४ घटे में बिगड़ जाता है।

रांपर—वागर कच्छ के मेडिकल ऑफिसर डॉक्टर विजय शंकर लज्जाशंकर स्वादिया सन् १९२७ के वैद्य कल्प तरु में लिखते हैं कि हाल में मेरे पास क्षय का एक भयंकर केस आया, उसमें देशी तथा ऐलोपैथिक दवाओं से तथा नवीन अन्वेषण के इंजेक्शनों से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्यों कि यह केस तीव्र क्षय का था और दूसरे व तीसरे दर्जे की संधि में आ पहुँचा था। रोगी को निरंतर ज्वर रहता था रात को पसीना होता था, समय समय पर खट्टी उल्टियां होती थीं बिनापची हुई दस्तें होती थी, रोगी की

प्रकृति पित्तकी थी। इस रोगी पर मैंने केले के पिण्ड के रस का प्रयोग किया। दिन में १०,१२ बार २॥ तोला रस सोने का पानी चढ़ाये हुए प्याले में भर कर पिलाया जाता था। दूसरे ही दिन रात को पसीना आना बंद होगया, उल्टियाँ और दस्त भी बंद होगये और भोजन भी वह तीन बार लेने लगा। इस प्रकार ६,७ दिन तक उसकी तबियत में सुधार होता रहा। उसके बाद उसको जुकाम होगया और वह केस हाथ से निकल गया।

केले के रस के सेवन से पेशाब साफ होता है। देह में संचित रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं जिससे जंतुओं से पैदा होने वाले रोग भी नष्ट होजाते हैं। क्षय रोग को नष्ट करने की शक्ति होने की वजह से ही प्राचीन निघटुओं में इसका "क्षय हर" नाम भी लिखा गया है।

क्षय रोग की ही तरह सूजन, जलोदर, दमा खांसी, विषविकार, इत्यादि रोगों पर भी यह औषधि काम करती है।

नाथ द्वारे के प्रसिद्ध वैद्य महाशंकर शर्मा के पुत्र को दमें का भयंकर रोग होगया था। अनेक औषधियों का प्रयोग करने पर भी उसमें लाभ नहीं हुआ। अंत में केले के रस का प्रयोग करने से १ महीने के अंदर वह असाध्य रोग नष्ट होगया जो फिर जीवन भर पैदा नहीं हुआ। यह प्रयोग चलता हो तब पथ्य में केवल दूध और भात लेना चाहिये।

सर्प विष के ऊपर भी केले का रस बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिसको सर्प ने काटा हो उसको अगर एक एक छटाक केले का रस घंटे २ दो २ घंटे से पिलाया जाय तो असाध्य अवस्था में पहुँचे हुए रोगी को भी आराम होता है। ऐसा कई अनुभवी लोगों का कथन है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इस की जड और इसका प्रकांड सर्पविष का प्रतिरोधक नहीं है।

बी० डी० बसु के मतानुसार इसका कच्चा फल अन्य वनस्पतियों के साथ में मधुमेह रोगपर काममें लिया जाता है। कच्चे केले से प्राप्त किया हुआ गोंद चांवल के पानी के साथ में रक्तातिसार पर दिया जाता है। पंजाब में इसके पिंड का ताजा रस मृगी इत्यादि स्नायु मंडल की बीमारियों में देने के काम में लिया जाता है।

मेडागास्कर में यह वनस्पति सकोचक, कृमिनाशक, मूत्रल और जल निस्सारक मनी जाती है। इसके फूल और पत्तों के काढ़े का और इसके पिंड का लेप व्रण और दाह पर किया जाता है। पेचिश, मधुमेह, उदरशोथ और जलोदर में भी यह उपयोगी माना जाता है।

डॉक्टर चोपरा के मतानुसार केले का वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पाया जाता है। यह देशी चीर फाड़ के कामों में भी विशेष रूप से उपयोग में लिया जाता है। इसका पका फल स्निग्धकारक, और शांतिदायक है। इसमें विटामिन्स भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी जड़ कृमिनाशक है। इसके फूल संकोचक हैं। इसके प्रकांड का रस कर्णशूल पर उपयोगी है। यह मुँह से बलगम के साथ खून जाने पर और विषैले जंतुओं के दंश पर भी उपयोग में लिया जाता है।

उपयोग—

(१) *सोमरोग (प्रदर का एक भेद)*—केले का पका हुआ फल, आंवलों का स्वरस, शहद और मिश्री इन सबको मिला कर खाने से स्त्रियो का सोम रोग और मूत्रातिसार मिट जाता है।

(२) केले का फल, बिदारी कन्द और शतावर इन तीनों को मिला कर लेने से सोमरोग नष्ट हो जाता है।

अग्नि से जलना— अग्नि से जले हुए पर पके हुए केले का पुल्टिश बांधने से जले हुए स्थान पर शान्ति पहुँचती है।

मूत्र दाह— छोटा पका केला खाने के आमाशय,फुफ्फुस,वृक्क और मूत्र की जलन मिटती है।

उदर शूल— केले की कोमल जड़ों के रस में हीरा दखन मिला कर पिलाने से पेट की शूल मिलती है।

नकसीर—इसके पेड़ का रस सुंघाने से नकसीर बन्द हो जाता है।

श्वेत कुष्ट— केले का खार और हलदी का लेप करने से श्वेत कुष्ट में लाभ होता है।

केवड़ा (केतकी)

नाम—

संस्कृत—धूलिपुष्पिका, गन्धपुष्पा, इन्दुकलिका, नृपप्रिया,केतकी। हिन्दी—केवड़ा, केतकी। बंगाल—केवरी, केतकी। बम्बई—केन्दा, केउर। दक्षिण—केवड़ा। गुजराती—केवड़ा। तामील—केदगई, केदगी। तेलगू -केतकी, गोजंगी। उर्दू—केवरा। लैटिन—Pandanus Odoratissimus (पेंडेनस ओडोरे टिसिमस) Pandanus Tectorius (पे डेनस टिक्टोरियस)।

वर्णन—

केवडे का फूल या भुट्टा सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसकी मन मोहिनी खुशबू भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से लोकप्रिय रही है। इसका पौधा गन्ने के पौधे की तरह होता है जिसके लम्बे २ पत्ते रहते हैं। इन पत्तों के किनारे पर काटे रहते हैं। इसका भुट्टा १५ से २५ सेंटिमीटर तक लम्बा रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते तीक्ष्ण, कटु और सुगन्ध मय होते हैं। ये विष नाशक, कामोद्दीपक और पथरी तथा अर्बुद में लाभदायक होते हैं। इसका फूल कड़वा, तीक्ष्ण और शरीर सौन्दर्य्य को बढाने वाला होता है। इसकी केशर फेंफड़े के ऊपर की झिल्ली (Pruritus) के प्रदाह में उपयोगी होती है। इसका फल वात, कफ और मूत्राशय की तकलीफों मे फायदा करता है।

गाय के दूध में केवडे की जड़ ६ माशे से तोला भर तक घिसकर शक्कर मिलाकर प्रतिदिन

सवेरे शाम पीने से भयंकर रक्तप्रदर भी शान्त होता है। जिस स्त्री को हमेशा गर्भ पात होने की शिकायत हो उसको भी यह औषधि गर्भ रहने के दूसरे महिने से चौथे महिने तक सेवन करने से गर्भपात होना बन्द हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से समशीतोष्ण है। यह दिल की गरमी, मेदे की गरमी और मूर्च्छा को दूर करता है। दिल और दिमाग़ को ताक़त देता है और खून को साफ करता है। इसके पत्ते कुष्ट, छोटी माता, उपदंश, खुजली और हृदय तथा मस्तिष्क की बीमारियों में लाभदायक है। इसकी केशर कान के दर्द, सिरदर्द, कुष्ट, विस्फोटक और रक्त विकार में फायदे मन्द है।

इसके भुट्टे से निकाला हुआ तेल और इत्र उत्तेजक और आक्षेप निवारक माना जाता है। यह सिरदर्द और सन्धिवात में उपयोग में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, कड़वा और कुष्ट रोग में लाभ पहुँचाता है। इसमे इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है।

वायुगोले की दवा—केवड़े की सूखी जड़ों के टुकड़े करके मिट्टी की एक बड़ी हंडी में भरकर, उस हंडी पर ढक्कन लगाकर, उसकी सन्धिया आटे से बन्द कर देनी चाहिये जिससे उसका धुंआ बाहर न जा सके। उसके बाद उसे चूल्हे पर चढाकर नीचे से आग जलाकर राख कर लेना चाहिये। जितनी राख हो उससे चौगुना पानी लेकर वह राख उसमें अच्छी तरह से घोल देना चाहिये। उसके बाद उस बरतन को २४ घण्टे स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये। फिर जब राख नीचे बैठ जाय तब उसका साफ पानी नितार कर आग पर चढ़ाकर उसका क्षार निकाल लेना चाहिये। यह केवडे का क्षार १ माशा, सोड़ा बायकार्ब १ माशा और कूट १ माशा। इन तीनों चीजों को मिलाकर ४ तोले तिल्ली के तेल के साथ पीने से अत्यन्त भयंकर वायुगोले का दर्द भी नष्ट हो जाता है। (जगल नी जड़ी बूटी)

केशर

नाम—

संस्कृत—कुकुम, अग्निशेखर, अग्निशिखा, इत्यादि। हिन्दी—केशर, जाफरान। मराठी—केशर। गुजराती—केशर। बंगाल—जाफरान। काश्मीर—कोंग। अरबी—जाफरान। फारसी—जाफरान, लर्किमस। लेटिन—Crocus Sativus (क्रोकस सेटिव्हस)।

वर्णन—

केशर सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के अंदर बनने वाले मिष्टान्नों में और देव पूजा में इस का प्रचुरता से उपयोग होता है। इसकी विशेष खेती हिन्दुस्तान में काश्मीर में होती है। इसके अतिरिक्त स्पेन से भी बहुत बडी मात्रा में केशर यहां आकर बिकती है। बाजार में असली केशर की तरह नकली केशर भी बहुत मिलती है। इसलिये केशर को लेते समय उसकी असलियत की जाँच जरुर कर

लेना चाहिये। असली केशर लाल रंग की, बारीक तंतु वाली, स्वाद में कड़वी और चिकनी और कमल के समान गंध वाली होती है। केशर को पानी मे भिजोकर कपड़े के ऊपर लगाने से अगर तत्काल पीले रंग का दाग़ पड़े तो उसे असली समझना चाहिये और अगर उसका दाग़ लाल रंग का पड़ कर फिर पीले रंग का होजाय तो उसे नकली समझना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से केशर कड़वी, तिक्त, सुगंधित, गरम, विषनाशक, कृमिनाशक, विरेचक, पौष्टिक, सूखी खासी में लाभदायक तथा गले के दर्द, सिरदर्द, आधाशीशी, वमन, खुजली, त्रिदोष, पित्त, चर्मरोग और मस्तक रोग में लाभदायक है। यह अत्यन्त कामोद्दीपक है और वाजीकरण प्रयोगों में इसका प्रयोग बहुत अधिक होता है।

यूनानी मत—इसके पत्ते व्रण रोपक और जोड़ों के दर्द मे लाभदायक होते हैं। इसकी पराग अर्थात जाफरान कड़वी, सुगंधित, कामोद्दीपक, मूत्रल, मृदुविरेचक, दुग्धवर्धक और नशा लाने वाली होती है। यह प्रदाह को कम करती है। मूत्राशय की तकलीफो में लाभ पहुंचाती है। यकृत, तिल्ली और मस्तक की तकलीफों को दूर करती है।

औषधि के तौर पर यह ज्वर, विषाद पूर्ण उन्माद और यकृत के बढ़ने में ली जाती है। यह उत्तेजक और अग्नि प्रवर्धक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार केशर का वृक्ष प्याज के वृक्ष की तरह १॥ फुट ऊँचा रहता है। यह काश्मीर और क्वेटा के आस-पास पैदा होती है। एक एकड़ में १० से लेकर ११ पौंड तक सूखी केशर प्राप्त की जाती है, जो कि ५० से ५५ पौंड तक ताजा केशर के बराबर होती है। इसको तैयार करने में बहुत ही सावधानी से काम लिया जाता है।

केशर देशी औषधियों में बहुत काम में ली जाती है। आयुर्वेद की अपेक्षा भी यह तिब्बी औषधियों में ज्यादा काम में ली जाती है। इसके अग्निवर्धक और आक्षेप निवारक गुण के कारण इसकी बहुत तारीफ है। उत्तेजक और कामोद्दीपक वस्तु की हैसियत से यह सर्वोत्तम है। इन गुणों में मटेरिया मेडिका में कोई भी वस्तु इसका मुकाबिला नहीं कर सकती। यूरोपीय औषधियो में केशर बहुत मामूली तादाद में काम मे ली जाती है। यह खाद्य पदार्थ को रंगीन और सुगन्धित बनाने के लिये उपयुक्त है।

रासायनिक विश्लेषण —

इसका रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें निम्न लिखित तत्व पाये गये हैं।

(१) क्रोकेटिन ए० (Crocatin A.) (एक रंगदार तत्व) ·७ प्रतिशत।

(२) क्रोकेटिन बी० (एक रंगदार पदार्थ) ·७ प्रतिशत।

(३) क्रोकेटिन वाय (एक रंगदार पदार्थ) ·३ प्रतिशत।

(४) व द्रुतत्व।

(५) स्थायी तेल ८ से १३˙४ प्रतिशत तक।

(६) उड़नशील तेल (Essential oil) १˙३७ प्रतिशत।

इसमें के उड़नशील तेल की परीक्षा की गई है। उड़नशील तेल में जो गुण होते हैं वे इसमें भी मिलते हैं। इसके कामोत्तेजक गुण का मुख्य कारण यह उड़नशील तेल ही मालूम होता है। क्योंकि सभी उड़नशील तेल केंद्रीय स्नायुमंडल को उत्तेजना देते हैं। अभी इसके पूरे परीक्षण नहीं किये हैं। इसके गुणों की जो ख्याति है उसकी सचाई इसकी पूरी परीक्षा के बाद ही साबित होगी।

डॉ० वामन गणेश देसाई के मतानुसार कष्टप्रद मासिक धर्म में केशर देने से और इसकी गोली बनाकर योनि में रखने से दर्द मिट जाता है और मासिक धर्म साफ होने लगता है। स्तनों पर इसका लेप करने से दूध बढ़ता है। छोटे बच्चों की सरदी में केशर को गरम दूध के साथ देने से और कपाल तथा छाती पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है। इसकी मात्रा ५ से लेकर १० रत्ती तक की होती है।

उपयोग—

उदर शूल—दालचीनी और केशर की गोली बना कर देने से पेट की शूल मिटती है।

कष्टप्रद मासिक धर्म—केशर और अकलकरे की गोली बना कर देने से मासिक धर्म शुद्ध होने लग जाता है।

हृदय रोग—इसे हृदय को बल देने वाली दूसरी औषधियों के साथ मिला कर देने से हृदय रोग में लाभ होता है।

यकृत वृद्धि—करेले के रस में केशर को भुरका कर पिलाने से यकृत की वृद्धि मिटती है।

रक्त पित्त—केशर को बकरी के दूध में पीस कर गरम करके पिलाने से उर्ध्वगत रक्त-पित्त मिटता है। परन्तु रोगी को कुछ दिनों तक लगातार पिलाना चाहिये।

मूत्राघात—पुराने घी में केशर को पीस कर पिलाने से मूत्राघात और शर्कराश्मरी मिटती है।

आधाशीशी—केशर को घी में खरल करके सूँघाने से आधाशीशी मिटती है।

बनावटें—

कामवर्द्धक गोली—सोने के वर्क १ तोला, कस्तूरी २ तोला, चांदी के वर्क ३ तोला, छोटी इलायची के बीज २ तोला, जायफल ६ तोला, वंशलोचन ७ तोला, जावत्री ८ तोला। इन सब चीजों को लेकर अच्छी तरह पीस कर तीन दिन तक बकरी के दूध में और तीन दिन तक नागर बेल के पान के रस में घोट कर दो २ रत्ती की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियों को को मलाई के साथ सेवन करने से धातु क्षीणता मिट कर प्रबल कामोद्दीपन होता है।

स्तम्भन वटी—केशर, लौंग, जायफल, जायपत्री, शक्कर, सेमर की जड़, माजूफल, काली जीरी समुद्र शोष के बीज, मूसली, अकलकरा, बबूल की बारीक फलियां, राल, कालीपहाड़ की जड़, रूमी

मस्तगी, शुद्ध हींगलू , अफीम, इंद्रजौ ये सब एक २ तोला। कस्तूरी और कपूर आधा २ तोला। इन सबको शहद के साथ घोट कर ४-४ रत्ती की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियों को मिश्री मिले दूध के साथ लेने से बहुत स्तभंन होता है।

असली केशर की परीक्षा—असली केशर को स्पिरिट में डालने से उसके तन्तु स्पिरिट को रंगीन करने पर भी अपने असली रग में कायम रहते हैं। अगर केशर नकली हुई तो उसका सब रंग स्पिरिट में मिल जाता है और नकली चीज का असली रूप सामने आ जाता है।

संखिया की भस्म—४ रुपये भर उत्तम केशर को २० रुपये भर पानी में रात भर भिंगो देना चाहिये। सवेरे उसको मसल कर उस पानी को छान लेना चाहिये और केशर की लुग्दी को अलग रख देना चाहिये। बाद में १ तोला शुद्ध सखिया को उस केशर के पानी में घोटना चाहिये। जब सब पानी सूख जाय तब उसे जायफल, जावित्री, लौंग, तज, बच्छनाग और शंखाहुली के काढ़े में अलग २ एक बार घोटना चाहिये फिर उसकी टिकड़ी बना कर उस केशर की लुग्दी में रख कर ऊपर कपड़ मिट्टी करके बिना हवा के स्थान में ऊपले कपडों की आच में फूँक देना चाहिये। खोलने पर उसमें भूरे रग की फूली हुई भस्म मिलेगी। इस भस्म को १ चावल भर की मात्रा में दूध के साथ देने से श्वास, खासी निर्बलता और वायु के रोग मिटते हैं। इस भस्म को भोजन के पश्चात् लेना चाहिये।

केमुक, कुबुआ

नाम—

संस्कृत—कुष्टमेद, ब्रह्मतीर्थ, पदकपत्र, केमुक, पेऊ। हिन्दी—केबुआ, केऊ। बंगाली—केबू। मराठी—पेनवा, पेव। तामील—कोटम्, कुरम, कुगइमजल। तेलगू—किमुक। लेटिन—Costus Speciosus (कोस्टस स्पेसिओसस)

वर्णन—

यह क्षुप जाति की वनस्पति तर जमीनों में वर्षाऋतु में पैदा होती है। इसका पौधा करीब १ हाथ भर ऊँचा है। इसके पत्ते लम्बगोल, दलदार और पीछे से रुंएदार होते हैं। इसके फूल सफेद तथा किरमिजी होते हैं। ये गध रहित होते हैं। इसकी जड़ें कूट के नाम से भी बिकती है और इसीसे दक्षिण में इसको कोष्ठम, पुष्कर मूल इत्यादि नामों से पहिचानते हैं। मगर ये नाम गलत हैं। असली कूट काश्मीर में होती है और उसमें मनोहर सुगन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, तीक्ष्ण तथा ज्वर, कफ, मन्दाग्नि, प्रदाह, रक्ताल्पता, आमवात, कटिवात, कुक्कुर खांसी और वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी है।

केम्पवेल के मतानुसार संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को मज्जातन्तुओं की बीमारियों में काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ कड़वी, संकोचक, उत्तेजक और कृमि नाशक है।

कोकम

नाम—

संस्कृत—अम्लबीज, अम्लशाका, अम्लपुरा, साराम्ल, वृदार। हिन्दी—कोकम। बम्बई—कोकम। कोकण—रताम्बि, भिरड, रातंबी। कनाडी—धूपडामर, टिटिडिका। गुजराती—कोकन। मराठी—आमसोली, विरंड, चिरड, कलाम्बि, कोकम। तामील—मुर्गल। लेटिन—Garcinia Indica (गार्सीनिया इंडिका)। G. Purpurea (गार्सीनिया परपूरिया)।

वर्णन—

यह वृक्ष कोकण और मलाबार में होता है। इसके फल, इसके बीजों का तेल और इसकी छाल औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसका फल खट्टा और लाल रंग का होता है। सूखे हुए फलों को आमसूल, सोलें या कोकम कहते हैं और बीजों के तेल को कोकम का तेल, भिरडेल या मुठलें कहते हैं। यह गाढ़ा होता है। इसके बीजों में १० प्रति सैकड़ा तेल होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके ताजे फल हृदय को बल देने वाले, रक्त पित्त को नष्ट करने वाले और ग्राही होते हैं। इसके सूखे फल रोचक, पाचक, दीपक, ग्राही, और रक्त पित्त को नष्ट करने वाले होते हैं। इसकी छाल स्तम्भक होती है। इसके बीजों का तेल स्तम्भक और व्रणरोपक होता है।

इसका पका हुआ फल, कृमिनाशक, पौष्टिक, कब्जियत पैदा करने वाला और मुश्किल से हजम होने वाला होता है। यह खूनी बवासीर, पेचिश और हृदय रोगों में लाभ दायक है।

उत्तर में जिस प्रकार खटाई के लिये अमलवेत का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार दक्षिण में कोकम का उपयोग होता है। अतिसार, संग्रहणी, और खूनी अतिसार में इसकी फांट बनाकर दी जाती है। शरीर में पित्ति उछलने पर इसके रस का मालिश किया जाता है। सरदी के दिनों में जब हाथ पैरों में बिवाई फट जाती है उसमें इसका तेल गरम करके लगाने से तत्काल लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कोकम के बीजों के तेल से मलहम तयार किया जाता है। जो चर्म रोगो में लाभदायक होता है। इसका फल शीतादि रोग प्रतिशोधक, शीतल, पित्तनाशक, स्निग्ध कारक और शान्तिदायक होता है।

गोआ के अत्तार लोग इसके फल के रस से बहुत अच्छा शरबत तयार करते हैं जो पित्त की तकलीफों में उपयोगी होता है। इसकी छाल संकोचक होती है। इसके कोमल पत्तों को केले के पत्तों में लपेटकर पुट पाक विधि से आग में भूंज लेते हैं और फिर उन्हें ठण्डे दूध में मसल कर आमातिसार को नष्ट करने के लिये देते हैं। फुफ्फुस के रोग और शरीर की निर्बलता में यह कॉडलीवर ऑइल के समान ही उपयोग में लिया जाता है।

कोटगन्धल

नाम—

संस्कृत—नेवालि । हिन्दी—कोटगन्धल । बंगाल—रगन । बंबई—कुरट, लोकण्डी, नर-कुरट । मराठी—माकड़ी, खुरा, कुरट, लोकण्डी, नेवाली, रायकोरा । गुजराती—नेवारि । कनाड़ी—गोरवी । तेलगू—कोरिमीपाल, कचिराड़ेल । तामोल—शुलुंडुकोर । लेटिन—Ixora Parviflora (इक्सोरा परवीफ्लोरा) ।

वर्णन—

यह एक हमेशा हरा रहने वाला भाड़ीनुमा वृक्ष होता है । इसके फूल सफेद, सुगन्धित और बड़े बड़े गुच्छों में होते हैं । औषधि में इसके फूल ही काम में आते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस औषधि के फूल व्हूपिंग कफ (कुक्कुर खांसी) के अन्दर लाभदायक हैं । इनको दूध में पीस कर दिया जाता है ।

सन्थाल लोग इस वनस्पति को स्त्रियों की मूत्र सम्बधी तकलीफों में उपयोग में लेते हैं ।

कौंच बीज

नाम—

संस्कृत—कपिकच्छु, आत्मगुप्त, कचुमति, कपि रोमफल, मर्कटी इत्यादि । हिन्दी—कौंच-बीज । बंगाल—आलकुशी, विच्छोटि, कामचा । बंबई—कुहिली । गुजराती—कौच । मराठी—खाज-कुहिली, कैंवच । पंजाब—गुंचगजि, कोंवच,कुंच । तामील—अमुदारि, अरुप्रतम्, शुगशिंबि । तेलगू-दुगगुंदि । उर्दू—कौंच । लेटिन—Macuna Pruriens (मेकूना प्रूरिऐन्स) ।

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी लता है । इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं । इसके पान तिकोने होते हैं । इसके फूल दो २ तीन २ के गुच्छे में लगते हैं । इसकी फलिया रुएंदार होती हैं; यह रुआँ शरीर के किसी भी हिस्से पर लगने से अत्यन्त खुजली चल कर बदन सूज जाता है । इन फलियों के अन्दर अरडी के बीजों के समान कौंच के बीज निकलते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके बीज वायु, कफ और रक्त पित्त को नष्ट करने वाले, वाजीकरण, बलदायक और दुष्ट व्रणों को नष्ट करने वाले होते हैं । इसकी जड़ पेचिश और गर्भाशय की तकलीफों में लाभदायक है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ ऋतुस्राव नियामक होती है । इसका धुआं प्रसूति कष्ट को दूर करता है । इसके पत्ते कामोद्दीपक, पौष्टिक, कृमिनाशक व रक्तशोधक होते हैं । ये प्रदाह

को नष्ट करते हैं। इनका रस सिर दर्द में दिया जाता है। इसके बीज विरेचक, कामोद्दीपक और बिच्छू के जहर पर उपयोगी हैं। ये सुजाक में भी उपयोगी होते हैं।

आयुर्वेद के अन्दर कामोद्दीपक और वाजीकरण औषधियों का जो वर्णन किया गया है उसके वानस्पतिक विभाग में कौंचबीज एक प्रधान वस्तु मानी गई है। इसमें उत्तेजक, स्तम्भक और धातुवर्धक तीनों ही गुण मौजूद हैं। इसीलिये वाजीकरण औषधियों सम्बन्धी प्रायः हर एक नुस्खे में इसका उपयोग किया जाता है।

इसकी फलियों के ऊपर का रुआ अत्यन्त कृमिनाशक वस्तु मानी गई है। मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया का लेखक लिखता है कि इस की फलियों के ऊपर का रुआं गोल कृमियों को नष्ट करने के लिये दिया जाता है। इसके स्पर्श से कृमि जखमी होकर निकल जाते हैं। मगर यदि इसका कुछ हिस्सा आँतों में संचित रह जाय तो वह अत्यन्त दाहजनक हो जाता है। इसलिये इसको देने के पश्चात अरंडी के तेल, कालादाना अथवा केलोमल मेंसे किसी भी औषधि का जुलाब देदेना चाहिये। फली के रुएं की मात्रा आधी से पौन रत्ती तक की है, जो गुड़ में गोली बांध कर दी जा सकती है।

इसकी जड़ का काढ़ा पीने से अर्दित तथा हाथ, पैर, वगैरह शरीर का कोई हिस्सा जो वात से शक्ति हीन हो गया हो, उसमें लाभ होता है। इस काढ़े को शहद के साथ देने से हैजे में भी लाभ होता है। इसकी जड़ में ज्ञान तन्तुओं को शक्ति देने का गुण होने से सन्निपात की बेहोशी मे भी इसका काढ़ा लाभदायक होता है।

केम्पबेल के मतानुसार नागपुर में ज्वर में मूर्च्छा या सन्निपात होने पर इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है। जलोदर में इसकी जड़ को पीस कर उसका लेप पेट पर लगाया जाता है। इसका टुकड़ा कलाई पर बांधने के काम में भी लिया जाता है। इसके बीज बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लगाये जाते हैं।

वेस्ट इंडीज में इसकी जड़ का काढ़ा तेज मूत्रल माना जाता है। यह मूत्राशय को साफ करता है। श्लीपद रोग में इसका लेप बना कर लगाया जाता है। इसकी फलियों का शीत निर्यास जलोदर रोग की एक निश्चित दवा मानी जाती है।

डायमाक के मतानुसार इसके बीज उत्तम कामोद्दीपक हैं। इसकी जड़ स्नायु मंडल को पुष्ट करने वाली होती है। इसे पक्षाघात की बीमारी में काम में लेते हैं। टामील के वैद्य इसकी जड़ का शीत निर्यास शहद के साथ हैजे में देते हैं।

दत्त के मतानुसार इसकी जड़ स्नायुमंडल की तकलीफों मे बड़ी लाभदायक है। यह मुँह के पक्षाघात और अर्द्धांग मे भी लाभदायक है।

रस रत्नाकर, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन ग्रंथकारों के मतानुसार इसके बीज दूसरी औषधियों के साथ में सांप और बिच्छू के जहर पर दिये जाते हैं, मगर केस और महस्कर के मतानुसार सांप के विष में इसका हर एक हिस्सा निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज कामोद्दीपक, कृमिनाशक, और वृश्चिक दंश में उपयोगी होते हैं।

वनावटें—

वानरी वटिका—कौंच बीजों को दूध में अच्छी तरह से उबालकर उनके छिलके अलग कर देना चाहिये। उसके बाद उन बीजों को अच्छी तरह से पोस कर फिर उसको गाय के दूध में वेसन की तरह गाढ़ा २ सान लेना चाहिये और पकोड़ी बनाने लायक ढीला रखना चाहिये। फिर कढ़ाई में घी डाल कर मन्दी २ आंचपर चढाना चाहिये। जब घी अच्छा गरम हो जाय तब उस घी में उसकी पकोड़िया बनाना चाहिये। उन पकोड़ियों को निकालकर मिश्री की गाढ़ी २ चाशनी में डाल देना चाहिये। जब पकोड़ियें खूब चाशनी पीलें तब उनको निकालकर शहद से भरे हुए बरतन मे भर देना चाहिये और बरतन का मुंह बांधकर रख देना चाहिये। इस औषधि की मात्रा दो तोले की है। सबेरे और शाम एक एक मात्रा खाने से नपुंसकता नष्ट होकर प्रबल काम शक्ति पैदा होती है। यह उत्तम वाजीकरण योग है।

कौंच पाक—कौच के बीजों का मग़ज एक सेर लेकर ५ सेर गाय के दूध में कलई के बरतन में कीटी बनाना चाहिये। फिर एक कलईदार कढ़ाई में आध सेर गाय का घी डालकर उसमे खोए (मावे) को भूनना चाहिये। जब खोआ लाल हो जाय तब उसे दो सेर मिश्री की चाशनी में मिलाकर जायफल, जायपत्री, ककोल, नागकेशर, लौंग, अजवायन, अकरकरा, समन्दरशोष, सोंठ, मिर्च, पीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, सफेदजीरा, प्रियगु और गजपीपल इन सब औषधियों को एक २ तोला लेकर कूट पीस छानकर इस पाक में मिला देना चाहिये और २॥ तोले के लड्डू बांध लेना चाहिये। इस पाक के सेवन से भी काम शक्ति बहुत बढ़ती है और नपुंसकता का नाश होता है।

वानरी चूर्ण—कौंच के बीज, तालमखाना, सफेद मूसली, उटगन के बीज, मोचरस, ऊँट कटारे की जड़ की छाल, बीजबन्द, कमरकस, शतावरी, समन्दरशोष, सूखेसिंघाडे, इन सब चीजों को कूट पीस छानकर चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिये। इसमें से ६ माशा चूर्ण, ६ माशा मिश्री मिलाकर खाने से और ऊपर गाय का दूध पीने से काम शक्ति बहुत बढ़ती है।

योनि सकोचन-योग—कौंच की जड़ों का काढ़ा बनाकर उसमे कपड़े के टुकड़े को तर करके योनि मार्ग में रखने से ढीला पड़ा हुआ भाग संकुचित होता है।
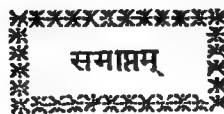
श्रीमान गोवर्द्धनदासजी छांगाणी भिषक् केशरी, प्राणाचार्य्य, विद्यावाचस्पति भूतपूर्व सभापति अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल

"मैंने श्री चन्द्रराज भण्डारी "विशारद" द्वारा सम्पादित वनौषधि चन्द्रोदय भली भांति देखा। मुझे निःसंकोच कहना चाहिये कि आज तक के आयुर्वेदिक और यूनानी के प्रकाशित कोषों में इस वनौषधि चन्द्रोदय का आसन सब से ऊँचा है। ग्रंथ का संपादन बड़ी छानबीन के साथ किया गया है। वनौषधि विषय की कोई भी बात ऐसी नहीं है जो इससे छूट गई है। विशेषता यह है कि इस कोष में आधुनिक वैज्ञानिकों की वनौषधि विषय की की हुई खोजों का निचोड़ दे दिया गया है। यूनानी मत को भी पर्य्याप्त स्थान दिया गया है। वनौषधियों द्वारा बनने वाले सिद्ध प्रयोगों को पूर्णतः लिख दिया है। इतना ही नहीं प्रत्येक औषध के संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, अरबी, बंगाली, लेटिन आदि भाषाओं के पर्य्याय नाम देकर आयुर्वेद एवं यूनानी मत से उस औषधि का गुण वर्णन, उत्पत्ति स्थान, पहचान, किन २ रोगों में वह औषधि किस प्रकार व्यवहार होती है, यह भी लिख दिया गया है.. ....

............यह पुस्तक आयुर्वेदज्ञों और हकीमों के अतिरिक्त ऐलोपैथिक के आधुनिक चिकित्सकों के लिये भी बड़े काम की चीज होगई है। भाषा भी इसकी सरल और सुन्दर है। प्रत्येक चिकित्सक को चाहिये कि वह इस ग्रंथ रत्न की एक २ प्रति को अवश्य अपने घर रक्खें क्योंकि समय पर वह बड़े काम की चीज साबित होगी"

RAO BAHADUR VIDYASHAKAR
Chief Medical Officer,
KOTAH-STATE.

"I have gone through part 1 of the Vanaushadhi Chandrodaya written by Babu Chandraraj Bhandari Visharad and I am glad to say that it has impressed me as a very comprehensive treatise on the chemistry of Aurvedic drugs, dealing in detail with their properties and uses in relation to diseases The lucid style and the vivid exposition that characterise the book render it eminently suited as a reference book on Aurvedic Pharmacology both to the practitioner and the student

The study of Aurved and adopting it to present day needs is very commandable enterprise and I very warmly congratulate the learned author for the degree of success he has achieved therein."

Doctor H. L. Vaidya M. B. L.
R. C. P. (London)
M. R. C. S. (England) D. L. O.
(London)
F. R. C. S. (Edin.)
Chief Medical Officer,
Bhavnagar-State

"I have been very much impressed by the effort involved and I feel confident that when the work is over it will fill up a long felt need of a complete authoratitive book on Materia Medica and Pharmacopia of Indian drugs. I have every hope that it will be a valuable work of reference for both Allopathic and Aurvedic Medical men.

देशपूज्य पं० जवाहरलाल नेहरू के प्राइवेट सेक्रेटरी लिखते हैं:—

"पण्डितजी को आपकी पुस्तक बहुत पसन्द आई है। वे कहते हैं कि आपने इस पर खूब परिश्रम किया है। वे आशा करते हैं कि यह पुस्तक वैद्यों और जनता के बहुत काम आवेगी।"

महामहोपाध्याय रसायन शास्त्री श्री भागीरथ स्वामी, कलकत्ता लिखते हैं:—

"हिन्दी में यह वनस्पतियों के सम्बन्ध में प्रथम पुस्तक है। ... "इस पुस्तक को देख कर विदित होता है कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये लेखक ने बड़ी दक्षता से काम लिया है।"

मध्यभारत के प्रसिद्ध वैद्य आयुर्वेद मार्तण्ड, चिकित्सक चूड़ामणि पण्डित खुशालीरामजी द्विवेदी लिखते हैं:—

"...............मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी भाषाओं में अब तक कितने ही ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु वे अपने विषय के आंशिक रूप से प्रतिपादक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में अब तक के प्राप्त हुए औषधि साहित्य का सार पदार्थ सब प्रकार से ग्रहण करके एकत्रित किया गया है। इसके लिये यह ग्रन्थ सब के लिये आदरणीय है। यह ग्रंथ आधुनिक औषधि ग्रंन्थों में शिरोमणि है।"

पंडित विश्वनाथजी शास्त्री आयुर्वेद शास्त्राचार्य्य प्रिंसिपल ललित हरि आयुर्वैदिक कालेज, पीलीभीत लिखते हैं:—

"यह पुस्तक वनस्पतियों के गुण दोष और प्रभाव को उल्लेख करने वाली अपने तरह की प्रथम पुस्तक है। लेखक ने बहुत परिश्रम और खोज के पश्चात् इसे संकलन किया है।.........केवल एक इसी पुस्तक को साथ में रखने से वनस्पति सम्बन्धी ज्ञान के लिये अन्यत्र भटकना नहीं पड़ेगा।

ज्ञान मन्दिर, भानपुरा (इन्दौर स्टेट)

नियम

१—ज्ञान मन्दिर का पहला ग्रंथ "वनौषधि-चन्द्रोदय" है जो करीब चार २ सौ पृष्ठ के १० भागों में प्रकाशित होगा।

२—प्रत्येक सजिल्द भाग का मूल्य ३॥) और अजिल्द का ३) होगा। डाक महसूल अलग होगा।

३—जो सज्जन १) प्रवेश फीस देकर इसके स्थायी ग्राहक बन जावेंगे उनको प्रत्येक भाग ॥) कम में मिलेगा। डाक महसूल अलग होगा।

४—जो सज्जन पूरे सजिल्द ग्रंथ के ३०) पेशगी और अजिल्द के २५) देकर हमारे सहायक बनेंगे, उनसे डाक महसूल अलग नहीं लिया जावेगा।

५—इस ग्रंथ के रायल एडीशन का मूल्य प्रति भाग ५) होगा।

६—जो सज्जन एक साथ ४०) पेशगी देंगे वे हमारे संरक्षक समझे जावेंगे और उनके नाम ग्रंथ के प्रारम्भ में धन्यवाद सहित प्रकाशित किये जावेंगे। ऐसे सज्जनों को इस ग्रंथ का रॉयल-एडीशन बिना मूल्य और बिना डाक महसूल के दिया जावेगा।